[दीनबन्धुस्मृतिग्रन्थः]

# दीनबन्धुस्मृतिग्रन्थ

महावैयाकरण दीनबन्धुझाक शताब्दी-समारोहक
अवसरपर प्रकाशित

सूत्रं धातुर्गणो भाष्यं कोषश्चेत्यङ्गपञ्चकम् ।
मैथिल्याः कृतवान् यस्तमपरं पाणिनिं भजे ।।

सम्पादक
डा० शशिनाथ झा, विद्यावारिधि

शाके १९००

प्रकाशक :

दीनबन्धु झा-शताब्दी-समारोह-समिति
इसहपुर, डा० सोनकोर्थु, जिला मधुबनी



सम्पादक :

डा० शशिनाथ झा, विद्यावारिधि
दीप, जिला मधुबनी

आवरण-शिल्प :

श्री मिलिन्द कुमार झा
(म० वै० दीनबन्धु झाक पौत्र)



संस्करण :

प्रथम : केवल ५०० प्रति
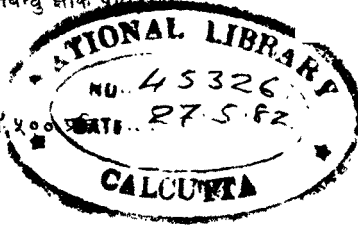
मूल्य :

साधारण २० टाका
सजिल्द २५ टाका

प्राप्तिस्थान :

१. डा० माधव झा प्राचार्य,
संस्कृत महाविद्यालय,
इसहपुर, डा० सनकोर्थु, मधुबनी

२. पं० गोविन्द झा
२१६, राजवंशीनगर, पटना-२३

मुद्रक :

धर्मयुग प्रेस न्यू
पटना-८००००३

# सम्पादकीय

कोनहु 'ग्रन्थ'क अध्ययन ता' धरि पूर्ण नहि मानल जाइछ जा' धरि 'ग्रन्थकार'क अध्ययन नहि कए लेल जाए। हुनक प्रवृत्ति ओ व्यक्तित्व हुनक ग्रन्थक तात्पर्यज्ञानमे बहुत सहायक होइते अछि। अत: ग्रन्थकारक अध्ययनसँ भावी पीढ़ीक ज्ञाने नहि, ओकर क्षमतो बढ़ैत छैक। तेँ प्रत्येक क्षेत्रक लोक अनादि कालसँ अपना क्षेत्रक आदर्श पुरुषक चरितकेँ गबैत आबि रहल अछि। एही परम्पराक वर्तमान रूप थिक अभिनन्दन-ग्रन्थ, स्मृतिग्रन्थ, स्मारिका जीवनी आदि।

एक एहने साधक छलाह महावैयाकरण पण्डित दीनबन्धु झा, जे लोकोपकारार्थे साहित्यक सर्जना कएन, आजन्म विद्याक प्रसार कएल ओ परम्परागत शास्त्र-विचारकेँ एक धाप आगाँ बढ़ाओल। हिनक जन्म १८०० शाकेमे भेल। अत: हिनक शताब्दपूर्तिक अवसरपर ई स्मृतिग्रन्थ प्रकाशित करैत हमरा-लोकनिकेँ अपार हर्ष भए रहल अछि। यद्यपि हिनक निधन १९५५ ई०मे भए गेल छल ओ तहिएसँ हिनक कतिपय शिष्य हिनका प्रति किछु कर्तव्य निमाहबाक अभिलाषा रखैत अएलाह तथापि दु:संयोगवशात् आइ धरि किछु नहि भए सकल। होइत कोना? ई काज सभ होइछ अर्थसाध्य, ओ अर्थक अभाव तँ अनर्थे कहाओत।

सामान्यत: मोट-मोट स्मृतिग्रन्थ वा अभिनन्दन-ग्रन्थ सभ मोट-मोट दाता लोकनिक कृपापूर्ण भिक्षासँ प्रकाशित होइत आएल अछि। परन्तु यथार्थत: सौभाग्यवश वा दुर्भाग्यवश ई स्मृतिग्रन्थ महावैयाकरणक कतिपय शास्त्ररसिक भक्तलोकनिक दसटकही-पँचटकही चन्दासँ बहाराएल ओ जे महापुरुष विद्याक आगाँ धनकेँ सदा गौण बुझलन्हि तनिक वास्तविक श्रद्धांजलि एहिना होएब उचितो छल। हमरालोकनि एतबहिमे कृतकृत्य छी ओ एहि हेतु स्वल्पकायो ई स्मृतिग्रन्थ सन्तोष दैत अछि।

वस्तुत: एहि कार्यक एक संयोग आबि गेलैक। दू वर्ष भेल होएत, माननीय 'किरण'जी, स्व० पं० जीवनाथ झा, पं० श्री भवनाथ झा 'दीपक' ओ आओर कतिपय व्यक्तिक जुटानमे हमरालोकनि एहि विषयक चर्चा चलाओल ओ तत्क्षण स्मृतिग्रन्थक प्रकाशनक निर्णय भए गेल। समिति बनल! मुदा''',

मुदा एक टा बड़का दैवदुर्विपाक भए गेल। पं० जीवनाथ झा स्वर्गीय भए गेलाह। किछु दिन शोकवश कार्य रुकि गेल। पुनः 'प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति' एहि नीतिक अनुसरण कए अग्रसर होइत गेलहुँ। वर्षाभ्यन्तरहि सभ कार्य सफल-सम्पन्न भए गेल आ' से हमरालोकनिक श्रेय नहि, स्मरणीय महापुरुषक पुण्यक प्रभाव थिक।

लेख-विन्यासमे बड़ व्युत्क्रम भेल। समयपर सभ लेख नहि जुटल। जे जेना पहुँचैत गेल से तहिना छपबैत गेलहुँ। तेँ आब वर्गीकरण कए विषय-सूची लगाओल अछि।

किछु आओर चित्र ओ लेख प्राप्त छल मुदा, समयाभावेँ ओ अर्थाभावेँ तकर समावेश नहि भए सकल; तदर्थ क्षमा-याचना करैत छी।

आशा जे सुधी-समाज एहि स्मृतिग्रन्थकेँ महावैयाकरणक अर्चनामात्र मानि एकर सकल त्रुटिकेँ क्षमा करताह।

दीप — शशिनाथ झा

फाल्गुनी पूर्णिमा शाके १९००

# विषय-सूची



## संस्मरण-श्रद्धाञ्जलि

### (क) संस्कृतम्

## (ख) English



## (ग) मैथिली

## निबन्ध-कविता

### (क) संस्कृतम्



### (ख) मैथिली

❀

महावैयाकरण दीनबन्धु झा
[शाके १८००-१८७७]

म० वै० दीनबन्धु झाक धर्मपत्नी

म० वै० दीनबन्धु झा दूनू पुत्रक संग

[ १९३४ ई० ]

# महावैयाकरण दीनबन्धु झाक संक्षिप्त जीवनवृत्त

—पण्डित श्री शशिनाथ झा, विद्यावारिधि

भारतमे, विशेष कए मिथिलामे, पण्डितक अर्थ होइत छल प्राचीन गहन वैदुष्य ओ उज्ज्वल आदर्शक प्रतीक, त्याग ओ तपस्याक प्रतिमूर्ति, तथा सामाजिक सद्व्यवस्थाक प्रौढ़ प्रहरी। एही स्पृहणीय गुणगणक आधारपर समाजमे पण्डित लोकनिक अपार प्रतिष्ठा छल ओ इएह छल हिनका लोकनिक एकमात्र जीवन-संबल। ई सभ देशीय ज्ञान-विज्ञानक विकास ओ शिक्षाक प्रसारक स्वयं एक संस्था होइत छलाह ओ एहि रूपें भारतक कोन-कोनसँ साक्षात् वा परम्परया सम्पर्क-सूत्र रखने रहैत छलाह। मिथिला मध्य पण्डित लोकनिक एहि परम्पराक अवसान हालहिमे भेल अछि। हमर चरितनायक महावैयाकरण दीनबन्धु झामे ओहि उज्ज्वल परम्पराक अन्तिम दर्शन होइत अछि।

महावैयाकरण दीनबन्धु झाक जन्म शाके १८०० (१८७८ ई०) मे आश्विन शुक्ल चतुर्दशी बृहस्पतिकें दड़िभङ्गा (आब मधुवनी) जिलाक इसहपुर गाममे भेलन्हि। ई गाम सोतिपुरामध्य पड़ैत अछि, जकर समीप सरिसव, भौर ,लोहना, लालगंज, उजान, आदि विख्यात गामसभ पड़ैत अछि। एहि परिसरकें म० म० शङ्कर मिश्र, म० म० पक्षधर मिश्र, म० म० भगीरथ ठाकुर, कवीन्द्र गङ्गानन्द आदि प्राचीन विद्वान् तथा म० म० श्रीकृष्ण सिंह ठाकुर, म० म० सर गङ्गानाथ झा, म० म० बालकृष्ण मिश्र आदि नवीन प्रकाण्ड विद्वानक जन्मस्थली होएबाक गौरव प्राप्त छैक। खास इसहपुरमे एक भानुमती नामक पोखरि अछि जतए रसमंजरीकार भानुदत्तक निवास छल।

हिनक जन्म मड़रए-सिहौलि मूलक काण्यपगोत्रीय मैथिल ब्राह्मणक एक प्रतिष्ठित परिवारमे भेल। हिनक पितामहक नाम छल रघुवर झा ओ पिताक नाम फेकू प्रसिद्ध विद्यानाथ झा। तत्कालीन सामाजिक मान्यताक अनुसार ई प्रथम श्रेणीक श्रोत्रिय ब्राह्मण छलाह। हिनक मातामह छलथिन्ह समीपवर्ती

पाहीटोल गामक निवासी हरिअम्बे मूलक पण्डित मुरली मिश्र, जे खण्डवला-कुलक महाराज छत्र सिंहक दौहित्र ओ म० म० सचल मिश्रक पौत्र छलाह। हिनक माम छलाह पं० केशी मिश्र, बी० ए० जे दड़िभङ्गा राजक सर्कल मनेजर रहथि ओ जनिक योगदान मैथिलीक प्रथम उत्थानकालमे प्रशंसनीय छल (देखू मिथिलामोद, १९१६ ई०, अंक-११२)। हिनक माताक नाम जीवछ देवी छलन्हि। जन्मसँ मासो नहि पुरल रहन्हि कि माए बताहि भए गेलथिन्ह। एक दिन ओ अपन नवजात शिशु दीनबन्धुकेँ आगिमे फेकए लगलीह, किन्तु भाग्यवशात् लोकसभ बचाए लेलकन्हि। एहि परिस्थितिमे पितामह रघुवर झा हुनका नैहर पठाए देलथिन्ह। अतः बाल्यकालहिसँ हिनक पालन-पोषण पितामह-पितामही सएह कएलथिन्ह। हिनक पिता फेकू झा पूजा-पाठ, पुराण-वाचन, पुस्तक-प्रतिलेखन एही सभमे मग्न रहैत छलाह ओ पारिवारिक समस्त कार्य हिनक पितामह रघुवर झा सएह चलबैत रहथिन्ह। अतः महावैया-करण दीनबन्धु झा पिताक दुलारसँ बेसी पितामहक दुलार पओलन्हि। हिनक दुलारक नाम लालजी राखल गेल ओ मुख्य नाम पड़ल दीनबन्धु।

हिनक पितामह पं० रघुवर झा पूर्वमे झंझारपुरक समीप दीप गाममे बसैत छलाह, जतए हिनक गृह-समीपवर्ती जलाशय एखनहु रघुवर बाबूक चभच्चा कहाए प्रसिद्ध अछि। प्रायः १८४० ई०क आसपास ई एतएसँ उपटि अपन मातृक इसहपुर आबि एक जन परम पराक्रमी जमीदार नन्दन झाक आश्रयमे बसलाह। रघुवर झाक एक बहिनिक विवाह छल खण्डवला कुलक महाराज रुद्रसिंहक वैमात्रेय भ्राता महाराजकुमार बाबू वासुदेव सिंहसँ जे गन्धवारिमे डेओढी बनबओने छलाह। हिनक नैहरक नाम छल लक्ष्मीदाइ ओ सासुरक नाम चन्द्रवती बौआसिनि। म० म० सर गङ्गानाथ झा हिनक दौहित्र छलाह आ दोसरि कन्यामे हिनक दौहित्र छलथिन्ह सरिसवे गामक बाबू बलदेव झा जनिक सुपुत्र प्रो० हेतुकर झा सम्प्रति पटना विश्वविद्यालय-मे प्राध्यापक छथि ओ परम भविष्णु विद्वान् छथि। हिनक एक कन्याक विवाह महाराज महेश्वर सिंहक पौत्र बाबू सुरेश्वर सिंहसँ, जनिक डेओढ़ी दड़िभङ्गा-सँ पश्चिम मब्बीमे छल। रघुवर झा पूर्वमे उक्त गन्धवारि डेओढ़ीसँ तथा पश्चाति मब्बी डेओढ़ीसँ समुचित परवरिश पबैत सुखसँ सात्विक जीवन-निर्वाह करैत छलाह।

पाँचम वर्षक अवस्थामे अक्षरारम्भ भेलन्हि। केवल तिरहुता सिखाओल देलन्हि। देवाक्षरक प्रचार ओहि समयमे नाममात्रे छल, अतः ओ पश्चाति

सिखलन्हि। बाल्यकालमे पितामहक कोरमे बैसि अनेक श्लोक, स्तोत्र ओ अमरकोषके कण्ठस्थ कएलन्हि। आठम वर्षमे उपनयन भेलन्हि। ततःपर सन्ध्यावन्दनादि नित्यकर्म सिखलन्हि। तहिआ इसहपुर गाममे पढ़ब नहि धारैत छल, तें पितामह ओ पितामही हिनका पढ़एबासँ उदासीन रहथि। तथापि ई स्वेच्छासँ मरिसव ज.ए पण्डित जुडाओन झासँ लघुकौमुदी प्रारम्भ कएलन्हि किन्तु पढ़ब छोड़ाए देल गेलन्हि। मुदा रुचि ओ प्रतिभा हिनका अध्ययनक प्रति दृढ़प्रतिज्ञ बनाए देलक। दोपहरिआके जखन हिनक पिता ओ पितामह सूतल रहथि, ई नित्य हनुमान नगर जाए पण्डित महेश झासँ लघु-कौमुदी पढथि, ओ जा पितामह जागि बेर खन पुराण बाँचए बैसथि ता हुनका समक्ष उपस्थित भए जाथि। रघुवर झाके जहिआ ई बात ज्ञात भेलन्हि, ता धरि ई लघुकौमुदी समाप्त कए संस्कृतमे व्युत्पन्न भए चुकल छलाह। हिनक अपूर्व विद्यानुराग देखि बाध्य भए ओ हिनका कर्मकाण्डावतार बाबू गुणेश्वर सिंहक ओहि ठाम शुभङ्करपुर डेओढ़ी लए गेलथिन्ह, जनिक आश्रयमे अनेक पण्डित लोकनि अध्यापन ओ ग्रन्थलेखन करैत छलाह। ओतए ई टटुआर-ग्रामवासी पण्डितधुरन्धर धनुर्द्धर झासँ पढब आरम्भ कएलन्हि। ई धनुर्धर झा सखवाडनिवासी प्रख्यात वैयाकरण जुडाओन झाक शिष्य छलाह। हिनक रचित नित्यकृत्यार्णव, पूजापङ्कजभास्कर, गयापद्धति आदि अनेक विशाल ग्रन्थ सभ प्रकाशित अछि। हिनक पुत्र वैयाकरण श्री लक्ष्मीनारायण झा सम्प्रति विद्यमान छथि। शुभङ्करपुर डेओढ़ी (दरभङ्गा)मे दीनबन्धु झा परम्परानुसार समग्र सिद्धान्तकौमुदी, मुक्तावली, चन्द्रालोक ओ ५ सर्ग धरि रघुवंश पढलन्हि। ओतए हिनक सगीमे बाबू मोदेश्वर सिंह, भोटू झा, रामभद्र झा, मार्कण्डेय मिश्र आदि छलाह। छात्रावस्थहिसँ हिनक प्रतिभाक यश पसरए लागल। ई विलक्षण गद्य-पद्य लिखए लगलाह ओ शास्त्रार्थमे विजय पाबए लगलाह। अन्त्याक्षरी तथा भाषणमे सेहो ई अपन प्रतिभा देखओलन्हि। एही बीच हिनक विक्षिप्ता माताक स्वर्गवास भेल।

प्रतिभावान् देखि मामा श्रीभोला मिश्र महाराज लक्ष्मीश्वर सिंहक दरबारमे हिनक प्रवेश कराओल। महाराज साहेब हिनक प्रतिभापर मुग्ध भए हिनका छात्रवृत्ति दए उच्चतर अध्ययनार्थ काशी पठाओल। १८९३ ई०मे १६ वर्षक अवस्थामे काशी मध्य दरभङ्गा-महाराजक पाठशालामे जगद्गुरु, महामहोपाध्याय शिवकुमार मिश्र विद्याध्ययन आरम्भ कएलन्हि। एतए सात वर्ष रहि सकोड़ समस्त व्याकरण ग्रन्थ, शब्दखण्ड ग्रन्थ, दर्शन सबक

मुख्य-मुख्य ग्रन्थ सपरिष्कार कोडपत्रलेखनपूर्वक सपरिश्रम पढ़लन्हि ओ काशीक महापण्डित लोकनिक हस्ताक्षरसँ विशिष्ट पण्डित होएबाक प्रतिष्ठापत्र पओलन्हि। एहि प्रतिष्ठापत्रक प्रतिलिपि आगाँ देल गेल अछि। एतए हिनक सहपाठी लोकनिमध्य विशेष रूपेँ उल्लेखनीय छथि– वंगदेशीय म० म० हाराणचन्द्र भट्टाचार्य, उजाननिवासी पण्डितप्रवर रघुनाथ झा, कोकन ग्राम-वासी म० म० बालबोध मिश्र, भागलपुरक पण्डितप्रकाण्ड कन्तलाल चौधरी, सारन जिलाक हरिशङ्कर पाण्डेय, सरिसव निवासी सर्वतन्त्रस्वतन्त्र मार्कण्डेय मिश्र, महरैलवासी पण्डित मथुरानाथ झा, बटुरीनिवासी पं० रामभद्र झा, उजाननिवासी पं० तारानाथ झा, नागदहनिवासी ज्योतिषी कुंजी झा, म० म० गणपतिशास्त्री मोकाटे, कोइलख-निवासी ज्योतिर्विद् बबुआजी मिश्र, एकडारा निवासी पं० सरयूरमण झा इत्यादि।

ई अपन गुरु म० म० शिवकुमार मिश्रक विशेष कृपापात्र ओ स्नेहभाजन रहथि। ओ वामण्डा, पटियाला आदि रजवाड़ा सभमे शास्त्रार्थक हेतु हिनका अपना संग लए जाथि; शास्त्रार्थमे हिनका विजयी देखि स्वयं प्रसन्न होथि। एक बेर विशुद्धानन्द सरस्वती छात्र-वृत्ति देबाक अभिप्रायसँ कतोक मेधावी छात्र सभकेँ बजओलथिन्ह। संगी सभ हिनका सिखओलकन्हि जे महाराज लक्ष्मीश्वर सिंहसँ छात्रवृत्ति भेटैत अछि से नहि बाजब। ई हुनकालोकनिक उपदेश नहि मानि सत्य-सत्य कहिए देलथिन्ह। विशुद्धानन्द सरस्वती ताहिपर कहलथिन्ह 'जखन लक्ष्मीश्वर सिंह छात्रवृत्ति दैत छथि तँ अहाँ अवश्य प्रतिभावान् छात्र छी, ओतबा छात्रवृत्ति हमहूँ अहाँकेँ देब।' एहि दुनू छात्रवृत्तिसँ काशीमे सुविधापूर्वक स्वाध्याय करैत रहलाह ओ बँचल द्रव्यसँ पुस्तक किनैत गेलाह।

ई निरन्तर सात वर्ष धरि काशी रहि गेलाह, ताहिसँ हिनक पिता, विशेष कए पितामह, विकल रहथि। एक दिन तार दए गाम बजाए लेलथिन्ह। गाम अएलापर ओही वर्ष प्रायः १९०० ई०मे बाइस वर्षक अवस्थामे लखनौर निवासी करमहे-झंझारपुर मूलक पं० जयानन्द झाक कन्यासँ विवाह कएलन्हि, जनिक नैहरक नाम महेश्वरी दाइ ओ सासुरक नाम यागेश्वरी बौआसिनि छलन्हि। एही समयमे हिनका पिलही भए गेलन्हि। तहिआ ई रोग असाध्य बूझल जाइत छल। ई घबड़ाए जीवनसँ निराश-जकाँ होइत झटपट स्व-रचित रमेश्वरप्रतापोदय काव्य छपओलन्हि। मुदा अपन पित्ती मन्नू झाक आयुर्वेदिक औषधसँ स्वस्थ भए गेलाह।

ओहि समय सरकारी परीक्षा पास कए डिग्री प्राप्त करब प्राचीन परम्पराक पण्डित लोकनि वृथाऽडम्बर बूझैत छलाह, तेँ ई बहुत दिन धरि परीक्षासँ विरत रहलाह। पश्चाति मित्र-मण्डलक आग्रहेँ कलकत्तासँ व्याकरणतीर्थ परीक्षा देलन्हि ओ ताहिमे प्रथम श्रेणीमे प्रथम स्थान पओलन्हि। ओहि समय 'विद्यावतां भागवते परीक्षा' ई कहबी केवल कहबी नहि, यथार्थ बात छल; अर्थात् जे पण्डित-समाजकेँ भागवत सुनाए सन्तुष्ट करैत छलाह सएह समाजमे पण्डित मानल जाइत छलाह। ई बिचारि दीनबन्धु झा गामहिमे पण्डित सभकेँ भागवत सुनाए समाज मध्य वास्तविक पण्डितक प्रतिष्ठा पओलन्हि। हिनका समय धरि निःशुल्क विद्यादानक परम्परा मिथिलामे कतहु-कतहु विद्यमान छल। ई अनेक ठामसँ आएल नोकरीक प्रस्तावकेँ अस्वीकार कए देलन्हि, कारण जे तहिआ भृतकाध्यापन (पाइ लए पढ़ओनाइ) हेय मानल जाइत छल। अतः ई प्राचीन परम्पराक रक्षा कए येनकेनोपायेन जीवन-निर्वाह करैत घरपर चौपाड़ि खोलि निःशुल्क अध्यापन आरम्भ कएलन्हि, ओ १९०० ई०सँ १९१० ई० धरि चौपाड़ि चलबैत रहलाह। एहि अवधिमे हिनक पुत्रवत् प्रिय शिष्यलोकनिमे उल्लेखनीय छथि पण्डित राधाकृष्ण झा, पं० दीनानाथ झा, पं० इन्द्रकान्त मिश्र, पं० माधव चौधरी, ओ पण्डित श्री यदुपति मिश्र। आइ एहिमे सौभाग्यवश केवल अन्तिम व्यक्ति जीवित छथि।

एही बीच १९६५ बिक्रमाब्द (१९०८ ई०)मे फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी शुक्रकेँ महाराजकुमार कामेश्वरसिंहक जन्मक उपलक्षमे धौत-परीक्षा भेल छल। ताहिमे ई व्याकरणशास्त्रमे प्रथम श्रेणीमे प्रथम स्थान प्राप्त कएलन्हि। एहिँ हिनक ख्याति समस्त मिथिलामे जगजगाए गेल। चौपाड़िमे छात्रसंख्या आओर बढ़ए लागल। हिनका शरणमे जे मेधावी छात्र आबथि तनिका ई अपन परिवारमे राखि पुत्रवत् पालन-पोषण करथि ओ पढ़ाबथि। एहि प्रकारेँ दस वर्ष बितैत-बितैत हिनक आर्थिक स्थिति बिगड़ि गेलन्हि। तखन ई अगत्या निःशुल्क विद्यादानक संकल्प तोड़ि १९११ ई०मे वैद्यनाथ धाम, देवघरक एक संस्कृत-विद्यालयमे सवैतनिक प्रधानाध्यापक भेलाह ओ ओतए एक वर्ष सपरिवार रहलाह। एतहि ओ मैथिलीक अपन प्रख्यात व्याकरण मिथिला-भाषा-विद्योतनक रचना आरम्भ कएलन्हि।

१९१२ ई०मे महाराज लक्ष्मीश्वर सिंहक धर्मपत्नी महारानी लक्ष्मीश्वरी साहिबा लक्ष्मीपुरमे एक विद्यालय स्थापित कएलन्हि ओ तकर प्रधानाध्यापक

पद पर हिनका बजाए लेल। ओतए ई नओ वर्ष धरि निरन्तर अध्यापन कएलन्हि ओ शतशः छात्रकें योग्य विद्वान् बनओलन्हि। ओतए कोनो दिन हिनक सम्मानमे किछु त्रुटि भेल। ई सद्यः नोकरी छाड़ि घर चल अएलाह ओ पुनः घरपर निःशुल्क विद्यादान आरम्भ कएलन्हि। परन्तु प्रश्न छल जीविकाक। ताहि हेतु ई अनेक तारतम्य करैत अन्तमे गामहिपर एक कपड़ाक दोकान खोलि देलन्हि जे जीविको चलैत रहए ओ निःशुल्क अध्यापन सेहो। समाजमे हिनक एहि साहसिक कार्यपर बहुत टीका-टिप्पणी भेल, परन्तु ई तकर परबाहि नहि कए अपन कर्म पर दृढ़ रहलाह ओ एक-डेढ़ वर्ष धरि दोकान ओ चौपाड़ि दुनू चलबैत रहलाह।

पुनः स्थिति बदलल। प्रायः १९२२ ई०मे अपन घरक अतिनिकट सरिसव गाममे मिथिलेश लक्ष्मीश्वर सिंहक धर्मपत्नी महारानी लक्ष्मीवतीक स्थापित लक्ष्मीवती-विद्यालयमे प्रधानाध्यापक भेलाह ओ तहिआसँ १९५३ ई० धरि अर्थात् ३० वर्ष ओतए निरन्तर अध्यापन करैत रहलाह। वेतन थोड़ छलन्हि, तथापि सन्तोष ओ संयमक बलें प्रसन्नतापूर्वक गामक ओ समाजक सेवा करैत रहलाह। एहि बीचमे अनेक दूर-दूर स्थानसँ उच्च वेतनक प्रलोभन दए आह्वान होइत रहलन्हि, परन्तु ओ गामहिमे रहि समाजकें शिक्षित बनएबाक पथपर डटल रहलाह। पुनः १९५३ ई०मे जखन दरभङ्गामे मिथिला-संस्कृत विद्यापीठ स्थापित भेल तखन ई बिहार सरकार द्वारा अनुसन्धान-कार्यमे मार्गदर्शनार्थ प्राचीन पण्डितक पदपर बजाओल गेलाह आ ओतए जीवनक अन्तिम दिन धरि विद्याव्यवसाय करैत रहलाह।

१९५५ ई०क २६ जनवरी माघ शुक्ल तृतीया बुधकें तीन बजैत दिनमे ७७ वर्षक अवस्थामे अपन निवासस्थानपर सकल सन्ततिवर्गक समक्ष स्वर्गारोहण कएलन्हि ओ हिनका सङ्गहि मैथिल पण्डितक एक महनीय परम्पराक अन्त भए गेल। एहि प्रकारें हिनक जीवनक ८ वर्ष बाल्यमे, १५ वर्ष अध्ययनमे, ओ लगभग ५५ वर्ष अध्यापन ओ ग्रन्थलेखनमे बितल। ई अपन जीवनक जे लक्ष्य रखलन्हि ताहिसँ कहिओ विचलित नहि भेलाह ओ अपनाकें सतत पूर्ण सफल मानलन्हि। वित्त-संचय दिस ई कहिओ ध्यान नहि देलन्हि। पण्डित-परम्परामे जे कहबी छैक अधीतमध्यापितमर्जितं यशो न शोचनीयं किमपीह भूतले से हिनकामे अक्षरशः चरितार्थ भेल।

महावैयाकरण दीनबन्धु झाक प्रतिष्ठा अपन देश मिथिलामे अत्यधिक

छलन्हि। काशी आदिमे सेहो ई पर्याप्त प्रतिष्ठा पओने छलाह। मिथिलाक सामान्य लोकसँ लए विद्वान् धरि हिनक धर्मशास्त्रीय ओ शब्दशास्त्रीय निर्णय-केँ स्वीकार करैत छलाह। ई भारतक शीर्षस्थ विद्वान् सबहुमे गनल जाइत छलाह। हिनक प्रतिभा बहुमुखी छल; ई जेहने व्याकरणमर्मज्ञ छलाह तेहने धर्मशास्त्रनिष्णात, जेहने नीतिज्ञ तेहने दार्शनिक, जेहने कवि तेहने हस्तकला-प्रवीण, जेहने लेखनपटु तेहने वक्ता सेहो। एवं प्रकारेँ हिनक सर्वतन्त्रोन्मुखी पाण्डित्य देखि हिनका समक्ष सभ श्रद्धावनत भए जाइत छल।

ऊपर संक्षेपमे हिनक जीवनक धारा तिथिक्रमेँ प्रदर्शित कएल गेल अछि। आब हिनक जीवनक एक-एक पक्षपर किछु-किछु प्रकाश देल जाइत अछि जाहिसँ हिनक सर्वांगीण व्यक्तित्वक आभास भेटत।

मैथिली-साहित्यमे योगदान—आधुनिक मैथिली-साहित्यक इतिहासमे १९१० ई०क आसपासक समय प्रथम उत्थानकाल मानल जाइत अछि ओ महावैयाकरण दीनबन्धु झा ताही समयसँ मैथिलीक सेवा आरम्भ कएलन्हि। ई १९१० ई०मे वैद्यनाथ धाममे अपन प्रख्यात मैथिली-व्याकरण मिथिला-भाषा-विद्योतन लिखब प्रारम्भ कएलन्हि, ओ सोलह वर्ष धरि एकरा परिपूर्ण बनएबाक प्रयास करैत रहलाह। १९२५ ई०मे अपन खर्चसँ एकर प्रथम खंड छपओलन्हि, किन्तु दुर्भाग्यवश शेष भाग बहुत दिन धरि अप्रकाशित रहल, अतः वस्तुतः तकरा बादो १९४५ ई० धरि एहिमे अनेक संशोधन ओ परिवर्धन करैत रहलाह। १९४५ ई०मे ई मैथिली-साहित्य-परिषद्, दड़िभङ्गासँ प्रकाशित भेल। डा० सुनीति कुमार चटर्जी, डा० आर० एल० टर्नर आदि अनेक देशी ओ विदेशी भाषाशास्त्री लोकनि एहि व्याकरणक मुक्तकण्ठे प्रशंसा कएने छथि। एकर असामान्य विशेषता ई अछि जे ई आधुनिक भारतीय भाषाक अन्य सकल व्याकरण जेकाँ अँगरेजी भाषाक व्याकरणक नकल नहि कए शुद्ध भारतीय व्याकरणक सरणि पर लिखल गेल अछि। मैथिली-साहित्य-परिषद् १९४१ ई०क मधुबनी अधिवेशनमे लेखककेँ एहि कृति पर महावैयाकरण-क उपाधि प्रदान कएलक। एहि ग्रन्थ पर ओहि अधिवेशन मध्य राघोपुरक हरिनन्दन सिंह मेमोरियल ट्रस्टसँ पुरस्कार सेहो देल गेल।

व्याकरण सम्पन्न भेला पर ई करीब १९२५ ई०मे मिथिला-भाषा-कोष लिखब आरम्भ कएलन्हि। पहिने वर्गशः शब्दचयन कएलन्हि; जेना अन्न-वर्ग, वृक्ष-वर्ग, जाति-वर्ग इत्यादि, पाछाँ सभकेँ वर्णक्रममे एकत्र कएलन्हि ओ मुद्रण-

समय १९५० धरि एहिमे निरन्तर नव-नव शब्द जोड़ैत गेलाह। अतः एकर संकलनमे २५ वर्षक समय लगओलन्हि। ई कोष १९५० ई०मे राघोपुरक बाबू श्रीकृष्णनन्दन सिंहक अनुग्रहेँ प्रकाशित भेल।

१९३५ ई०क आस-पास जखन स्व० रमानाथ झाक नेतृत्वमे साहित्यपत्र नामक त्रैमासिक ग्रन्थमालाक प्रकाशनक ओरिआओन भए रहल छल तखन नवटोलक सरसकवि ईशनाथ झा, हाटीक श्रीवल्लभ झा ओ बिट्ठोक श्री बदरीनाथ झा तीन जन नवयुवक मैथिलीमे संस्कृत नाटकक अनुवाद करबाक संकल्प कएलन्हि। ईशनाथ झा अभिज्ञानशाकुन्तलक अनुवाद आरम्भ कएलन्हि, श्रीवल्लभ झा रत्नावलीक ओ श्रीबदरीनाथ झा मृच्छकटिकक। ई लोकनि प्रति दिन प्रातः काल महावैयाकरणजीक ओतए आबथि ओ अपन-अपन अनुवादक जाँच कराबथि। एहि तरहेँ सम्पूर्ण शकुन्तला नाटकक मजाइ भेल ओ एही कारणेँ ई अनुवाद एतेक सुन्दर भए सकल। एहिमे एक-दू पद्य तँ महावैयाकरण स्वयं बनाइओ देने छलथिन्ह। प्रसंगवश इहो ज्ञातव्य जे एहिसँ बहुत दिन पूर्व महावैयाकरण जी स्वयं शकुन्तला नाटकक मैथिली अनुवाद आरम्भ कएने छलाह, जकर साक्षी हुनक हस्तलेखमे केवल दू पात बँचल अछि। पुनः साहित्यपत्रमे लेखनशैली निर्धारित करबाक जे आचार्य रमानाथ झा ओ डा० सुभद्र झा समारम्भ कएलन्हि ताहिमे महावैयाकरणक बहुत पैघ योगदान छलन्हि ओ रमानाथ झा जे शैली निर्धारित कएलन्हि से पूर्णतः हिनके मतक अनुरूप छल। अतः उक्त शैलीकेँ जँ रमानाथ झाक शैली नहि कहि म० वै० दीनबन्धु झाक कही तँ अनुचित नहि होएत।

मैथिलीमे हिनक तेसर ग्रन्थ थिक अलंकार-सागर। एकर रचना महावैयाकरण जी आचार्य रमानाथ झाक अनुरोधसँ १९५३ ई०मे आरम्भ कएलन्हि जखन ओ मिथिला-विद्यापीठ, दड़िभङ्गामे छलाह। १९५४क जनवरीमे स्वर्गवासी भए गेलाह, तेँ ई ग्रन्थ रसगङ्गाधर ओ कादम्बरी जेकाँ रहल तँ अपूर्ण, परन्तु जतबे लिखल गेल से मैथिलीक हेतु अमूल्य निधि मानल जाइत अछि। ई रमानाथ झाक सत्प्रयासेँ १९६७ ई०मे प्रकाशित भेल।

मैथिलीक प्रचार-प्रसारमे सेहो महावैयाकरण जीक योगदान अविस्मरणीय अछि। मैथिलीक समस्यापर ई अनेक लेख पत्र-पत्रिका सभमे लिखने छथि। विद्यामे ओ वयसमे श्रेष्ठ रहितहुँ ई उत्साहवश मैथिली-साहित्य-परिषदक परीक्षा-मन्त्री भए युवकवर्गक संग काज कएलन्हि। सरिसबमे डा० काञ्चीनाथ

झा 'किरण'क दुर्धर्ष नेतृत्वमे जे मैथिली-प्रकाशन-समिति ओ विद्यापति-गोष्ठी प्रचारात्मक काज करैत छल ताहिमे ई वृद्धावस्थहुमे सक्रिय रहैत छलाह्।

संस्कृत-जगत्मे हिनक सेवा अनुपम अछि। हिनक समकालीन प्रायः केओ पण्डित एहन नहि होएताह जे धनार्जनकें गौण बूझि दीर्घकाल धरि निःशुल्क विद्यादान कएने होथि। अध्यापनक अतिरिक्त हिनक लेखनी सेहो निरन्तर सक्रिय रहल। छात्रावस्थहिमे ई विलक्षण विरुदकाव्य रमेश्वरप्रतापोदय लिखलन्हि ओ यौवनकालमे शृङ्गाररसक श्लोकसंग्रह रसिकमनोरञ्जनी नामसँ प्रकाशित कएलन्हि जकर अनेक श्लोक पण्डितमण्डलक कण्ठमे मिथिला भरि प्रख्यात अछि। व्याकरण, धर्मशास्त्र, अलङ्कारशास्त्र आदिमे हिनक योग-दानक साक्षी हिनक लिखल ग्रन्थ सभ अछि जकर सूची आगाँ देल गेल अछि। प्राच्य-विद्यासम्मेलन (ओरिएंटल कान्फरेन्स)क चौदहम अधिवेशन जे दड़िभङ्गामे भेल रहए ताहिमे ई शब्दखण्डक अध्यक्ष बनाओल गेल छलाह्।

सामाजिक संघटनमे सेहो हिनका बड़ रुचि छलन्हि। अध्ययनक समयमे निरन्तर छात्र-सभा चलबैत छलाह्। अध्यापनकालमे अपन छात्रलोकनिमध्य वाक्पटुता बढ़एबाक हेतु व्याख्यान-गोष्ठी चलबथि। १९२३ ई०मे सरिसबमे मिथिला-पण्डित-सभा स्थापित कएलन्हि। अनेक वर्ष धरि स्वयं एकर मन्त्री रहलाह्। प्रतिवर्ष विभिन्न स्थानमे एकर अधिवेशन होइत छल। ई अधिवेशन क्रमशः सरिसब, लोहना, नवानी, दड़िभङ्गा, मधुबनी, सीतामढ़ी ओ सौराठमे भेल जाहिमे क्रमशः म० म० सर गङ्गानाथ झा, महावैयाकरण शिवशङ्कर झा, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र बच्चा झा, म० म० शशिनाथ झा, पं० सत्यदेव मिश्र, पं० घूटर झा शास्त्री, तथा पं०देवीकान्त ठाकुर अध्यक्ष भेलाह्। एहिमे शास्त्रार्थ होइत छल। एहि शास्त्रार्थमे पुरस्कृत विद्वान् सभमे रमेश झा, विहारी मिश्र, रामचन्द्र मिश्र, कुलानन्द मिश्र, काशीकान्त मिश्र 'मधुप', नमोनारायण झा आदि उल्लेखनीय छथि।

सामाजिक कार्यमे सेहो महावैयाकरणजी सक्रिय रहैत छलाह्। मैथिल ब्राह्मणमे खास कए श्रोत्रिय समाजमे विवाहादि-कार्यमे सामाजिक रूढ़िक नाम पर अत्यधिक अपव्यय करबाक कुरीति बड़ घातक छल। महावैयाकरणजी तीव्र आन्दोलन कए एहि कुरीतिक निवारण कएलन्हि ओ एक आदर्श नियम बनाए देलन्हि जे एतबासँ बेसी आडम्बर नहि कएल जाए। ई नियम आइ धरि सोतिपुरामे 'नवका व्यवहार' कहि प्रचलित अछि, ओ पुरना व्यवहार तँ आब

मानू लुप्ते भए गेल। एहिसँ गरीब सोतिलोकनिकेँ बड़ लाभ भेलन्हि।

व्यवहारमे ई परम स्पष्टवादी ओ निर्भीक छलाह। अनुशासनमे कठोर छलाह। परन्तु मिलनसार सेहो तेहने छलाह। हिनका लग नाना वर्गक लोक सतत जुटले रहैत छल। ई शतरंजक प्रेमिए टा नहि, मिथिला मध्य एक विशिष्ट खेलाड़ी मानल जाइत छलाह। अनेक बेरि शतरंजक प्रतियोगिता सोतिपुरामध्य करओलन्हि। ई नेना-बूढ़ सभक संग खेलाइत छलाह। तासक सदृश एक प्राचीन खेल गजीफा जे हिनका समयमे लुप्त भए गेल छल, तकरा ई पुन: चलओलन्हि। चौपड़ि सेहो हिनक प्रिय खेल छल। पचास वर्षक अवस्थामे साइकिल चढब सिखलन्हि।

ई कर्मठताक आदर्श छलाह। कखनहु निष्क्रिय नहि बैसथि। एतेक धरि जे गप्पक कालहुमे हाथसँ कोनो-कोनो काज करैत रहथि। ई कोनहु काजकेँ हीन कर्म नहि मानैत छलाह। टेरुआ पर सुतरी काटथि। पटिआ बीनथि। कलात्मक चीक बनाबथि। एक गोट चीक चन्द्रधारी सग्रहालय, दडिभंगामे प्रदर्शित अछि। टुकरी बनाबथि। आँगी-टोपी सीअथि। पोथीमे गत्ता लगबथि। घरहठमे कारीगर मानल जाथि। कतेक गनाओल जाए। सुन्दर लेखनमे नामी रहथि। दिन भरि अध्यापन ओ अन्यान्य कार्य करथि ओ रातिमे भोजनोपरान्त ओ भोरमे ग्रन्थ लिखथि। कतोक गृहोपयोगी आयुर्वेदिक औषध अपना हाथेँ बनावथि ओ नि शुल्क बाँटथि। गाममे केओ दुखित पड़ए तँ ओकरा देखि चिकित्साक हेतु परामर्श देथिन्ह ओ पथ्य-पानिक व्यवस्था करथिन्ह। गाममे ककरहु कोनो बेर-विपत्ति होइक तँ ओतए अग्रसर भए सहायतार्थ उपस्थित भए जाथि। एहि सभसँ गाममे अपार आदर पबैत छलाह।

विचारमे विशुद्ध सनातनी ओ धर्मनिष्ठ रहथि। विष्णु मुख्य आराध्यदेव रहथिन्ह। पूजा-पाठमे आडम्बर नहि करथि ओ उपासनाक समय बड़ सीमित राखथि। परन्तु सामाजिक विषयमे रूढिवादक घोर विरोधी ओ परम उदार विचारक रहथि। शास्त्रीय विषयमे सेहो नव-नव मतक स्थापन ओ समर्थन करथि तथा प्राचीन विचारधाराक अन्धभक्त नहि रहथि।

एहि प्रकारेँ महावैयाकरण दीनबन्धु झा प्रगाढ पाण्डित्य, निष्कलुष ओ प्रौढ़ व्यक्तित्व तथा स्निग्ध सामाजिकताक आदर्श प्रतिमूर्ति छलाह। हुनका सङ्गहि मैथिल पण्डितक एक उज्ज्वल परम्पराक अन्त भेल अछि।

**महावैयाकरणजी पर शोध-कार्य**—राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दिल्लीसँ छात्र-वृत्ति पाबि पं० श्री शशिनाथ झा व्याकरण-साहित्याचार्य महावैयाकरणजीपर शोधकार्य कए कामेश्वर सिंह दरभङ्गा संस्कृत विश्वविद्यालयसँ १९७७ ई०मे पी-एच० डी० (विद्यावारिधि)उपाधि प्राप्त कएलन्हि। हिनक शोध-प्रबन्धक विषय छल मिथिलाया व्याकरण-प्रणयन-परम्परायां महावैयाकरणदीनबन्धुः। संस्कृतमे लिखित एहि प्रबन्धमे सात अध्याय अछि—मैथिल वैयाकरण, दीनबन्धु झाक पूर्ण परिचय, हुनक वैदुष्य ओ कृतित्व, मैथिली-व्याकरण-समीक्षा, दीनबन्धुकृत संस्कृत व्याकरणग्रन्थ-परिशीलन, काव्यपरिशीलन ओ कोष-परिशीलन।

**म० वै० दीनबन्धु झाक परिवार**—एतए महावैयाकरणजीक पितामहसँ आरम्भ कए वंशजक पंजी देल जाइत अछि। एहिमे कन्याक नामक आगाँ कोष्ठमे हुनक पतिक नाम देल गेल अछि। माण्डर सं० रघुवर झाकेँ दू पुत्र—(१) फेकू प्रसिद्ध धर्मनाथ ओ (२) मन्नू, तथा एक (३) कन्या (बाबू सुरेश्वर सिंह, मब्बी डेओढ़ी)।

फेकू झाकेँ तीनि पुत्र दीनबन्धु, गङ्गानाथ ओ मुक्तिनाथ; तथा छओ कन्या शङ्करी (बलदेव झा, बेहट), दुर्गा (बुद्धिनाथ झा, रुपौली), ललिता (दु:खहरण झा, हाटी), सुमित्रा (मुकुन्द झा, महरैल), जगदम्बा (कण्टीर झा, बिट्ठो), ओ पुष्पी (लेखदत्त झा, उजान)। एहिमे शङ्करी ओ दीनबन्धु पाहीटोलक हरिअम्बे मुरली मिश्रक दौहित्र ओ शेष धनेरामपुरकहर्षनाथझाक। पाँच कन्या-क १८ दौहित्र—रुपौलीमे शाक्तनाथ, पं० ललितनाथ ओ पं० श्री अमरनाथ संस्कृतोच्चविद्यालयमे प्रधानाध्यापक), हाटीमे पं० श्रीवल्लभ (मैथिलीक कबि ओ कथाकार), जयवल्लभ, रामवल्लभ ओ पं० श्रीकृष्णवल्लभ; महरैलमे ...यनाथ, यशीनाथ, श्री अमृतनाथ ओ श्री नित्यनाथ; बिट्ठोमे श्री पीताम्बर तथा उजानमे श्री रामशङ्कर ओ श्री शिवशङ्कर, बी० ए० आनर्स, स्टेट बैंक, ...ड कैशियर।

दीनबन्धु झाकेँ तीन बालक ओ तीन कन्या—श्री भागेश्वरी, पं० जीवनाथ, ...ी अभेला, पं० श्री गोविन्द, पं० श्री माधव ओ श्री चिन्ता।

१. श्रीमती भागेश्वरीक विवाह पचहीनिवासी खंडवलासं० बाबू ...लापति सिंहक बालक बाबू चन्द्रपति सिंह, एफ० ए० (सब-रजिस्ट्रार)सँ। ...निका तीन पुत्र ओ पाँच कन्या—(१) श्री उमापति सिंह, एम० ए, प्रखंड

शिक्षा पदाधिकारी, (२) श्री छत्रपति सिंह, बी० ए, अध्यापक, मूकबधिर विद्यालय, पटना, (३) डा० श्री श्रीपति सिंह, प्रखंड पशुचिकित्सा-पदाधिकारी, (४) भामा (श्री बलदेव झा, कमरैल), (५) श्री रामा (श्री कलानाथ झा, कमरैल), (६) श्री श्यामा (पं० श्री मतिनाथ मिश्र, साहित्याचार्य, सेवा-निवृत्त अध्यापक ओ मैथिलीक कवि जनिक बालक श्री रामनाथ मिश्र, बी० ए० सम्प्रति सब-रजिस्ट्रार छथि, जमुथरि), (७) श्री वीणा (दुर्गागंजक श्री पञ्चानन झा, बी० ए०, बिहार राज्यपालक वरीय निजी सचिव), (८) श्री प्रभा (दुर्गागंजक श्री सच्चिदानन्द झा, वरीय निजी सहायक, बिहार सरकार)। श्री उमापति सिंहक बालक श्री नीतीश्वर सिंह, मधेपुर उच्च विद्यालयमे अध्यापक; श्री भूपाल ओ श्री श्रीपाल छात्र छथि।

२ श्री अभेलाक विवाह दीपक पं० श्री गङ्गानाथ झा वैदिकसँ। हिनका चारि पुत्र ओ चारि कन्या—(१) तीर्थनाथ झा, (२) पं० श्री हरिहर झा, अध्यापक, (३) डा० विश्वनाथ झा, एम० ए०, आचार्य, दीपक संस्कृत कालेज-मे प्राध्यापक, (४) डा० शशिनाथ झा, व्याकरणाचार्य, साहित्याचार्य, विद्या-वारिधि, सम्प्रति संस्कृत-विश्वविद्यालय, दरभंगामे गवेषक, (५) श्री द्रौपदी (लखनौरक बाबू श्री लोकपति सिंह, मैथिलीक कवि), (६) श्री यमुना, (७) स्व० उमा, ओ (७) श्री सेवी। पौत्रादिसँ भरल-पुरल छथि।

३. पं० जीवनाथ झा (१९१०-१९७७ ई०)—व्याकरण-साहित्याचार्य, काव्यतीर्थ, प्राप्तस्वर्णपदक, संस्कृत, मैथिली, नेपाली ओ हिन्दीक गोट २९ ग्रन्थक लेखक; रीगामे, नेपाल राजकीय महाविद्यालयमे, तथा दरभङ्गा संस्कृत विश्वविद्यालयक स्नातकोत्तर विभागमे अध्यापन। दुइ पुत्र ओ पाँच कन्या—(१) पं० श्री शम्भुनाथ झा, साहित्याचार्य, राजकीय उच्च विद्यालयक अध्यापक; (२) पं० श्री हीरानाथ झा, एम० ए०, आयोगक शोधछात्र, (३) श्री कामाख्या, (बेहटक श्रीयुगधर मिश्र) (४) श्री गुना, (श्री कुलानाथ झा, लखनौर) (५) श्री माना (लालगज निवासी श्री रेवानाथ मिश्र, एम० ए० राजस्थान सरकारक शिक्षक) (६) श्री शान्ति (पिँड़ारुछक श्री आर० एन० चौधरी, कनीय अभियन्ता, भारत सरकार), ओ (७) श्री मालती।

४. पं० श्री गोविन्द झा, व्याकरणाचार्य (स्वर्णपदक), साहित्याचार्य (स्वर्णपदक), भाषावैज्ञानिक, मैथिलीक प्रसिद्ध लेखक, बिहार सरकारक राजभाषा-विभागमे सहायक निदेशक, गोट बारहेक ग्रन्थक लेखक। हिनका

तीन बालक ओ दुइ कन्या—(१) श्री अरविन्द कुमार, बी० ए० आनर्स, स्नातकोत्तर छात्र, पटना विश्वविद्यालय, (२) श्री मिलिन्द कुमार, पटना कालेजक छात्र, (३) श्री निर्मलेन्दु कुमार, (४) श्री शीतला (दुर्गागंजक श्री घनानन्द झा, बिहार सरकारक कनीय अभियन्ता), (५) श्री अम्बिका (श्री धर्मनाथ झा,बी० ए० आनर्स, राजभाषा-सहायक, बिहार सरकार)।

५. डा० श्री माधव झा, व्याकरण-साहित्याचार्य, विद्यावारिधि; इसहपुर-संस्कृत कालेजमे प्राधानाचार्य; संस्कृत ओ मैथिलीक कवि। हिनका चारि बालक ओ तीन कन्या—(१) श्री अनन्त, बी० ए०, (२) श्री भुवन, (३) श्री सुमन, (४) श्री अर्जुन, (५) श्री सरस्वती, (श्री सुबोध झा, नडुआर) (६) श्री अनास्था, (श्री शुभानन्द झा, दुर्गागंज) ओ (७) श्री अभीता।

६. श्री चिन्ता (पं० श्री बुद्धिनाथ मिश्र, साहित्याचार्य, मैथिलीक कवि, भटपुरा; सरिसवक लक्ष्मीवती-विद्यालयमे प्रधानाध्यापक)। हिनका दुइ बालक ओ एक कन्या—(१) श्री पुरुषोत्तम मिश्र, बी० ए०; (२) श्री नरोत्तम मिश्र, मेडिकल छात्र, तृतीय वर्ष; (३) श्री सुमति (कोइलखक श्री सुरपति झा, बी० ए०)।

गङ्गानाथ झा बनैलीक राजा कीर्त्यानन्दसिंहक जमाए छलाह। बनैली एस्टेटक कुशल प्रबन्धक ओ उच्च श्रेणीक कृषक छलाह। पुरनिञा जिलाक चनका गाममे डेओढ़ी बनवओलन्हि। सोनबरिसामे एक संस्कृत विद्यालय स्थापित कएलन्हि। हिनका द्वितीय प्रस्थितिमे तीन बालक ओ दुइ कन्या—(१) श्रीगौरीनाथ झा, (२) श्री शङ्कर, (३) श्री शुभङ्कर, (४) श्री उमा (श्रीअमृतनाथ झा, पाही टोल), ओ (५) श्री कामा (श्री आनन्द मिश्र, भटपुरा)।

मन्नू झा (महावैयाकरणक पित्ती)कें एक बालक ओ तीन कन्या—(१) श्री राधारमण झा, सहरसा; हिनका दू पुत्र, श्री रेवतीरमण झा, एम० ए०, भारत सरकारक आय-कर उपायुक्त; ओ श्री उषारमण झा; (२) जानकी (मैथिलीक प्रख्यात लेखक भुवनेश्वर सिंह 'भुवन'क माता), (३) बुच्ची (कण्टीर ठाकुर, सर्वसीमा), (४) जयन्ती (महादेव ठाकुर, सर्वसीमा)।

# दीनबन्धुस्तुतिः

—पं० श्रीकृष्णमाधवझाः, महामहिमोपाध्यायः

आसीत् कुलकमल-दिनबन्धुरिव दीनबन्धुश्चन्द्र इव माण्डरवंशोदधेः समु-
त्पन्न आश्विनशुक्लचतुर्दश्यां गुरुवासरे १८०० तमशाकवर्षे (१८७८ खीष्टाब्दे)
लब्धजन्मा फेकू(धर्मनाथ झा)शर्मात्मजो मिथिलामहीमण्डलान्तर्गतेसहपुर
ग्रामनिवासी श्रोत्रियो महान् वैयाकरणः; यो हि जन्मतो मासाभ्यन्तर एव
मातृविहीनः, पितामह्या लब्धमातृस्नेहः, पितामहाङ्केऽभ्यस्तसमस्तामरकोषः,
विशेषाध्ययनमपशकुनमिति तद्ग्रामीणैतिह्यवशात् पितामह्या निवारितोऽपि
मेघाच्छन्नसूर्य इव अचिरप्रकटितप्रतिमः देशे टट्आरग्रामनिवासिनो महतो
वैयाकरणाद् धनुर्धर(झा)शर्मणो व्याकरणादिकमधीत्य षोडशवर्षदेशीयः
काश्यां महामहोपाध्यायपदभाजः शिवकुमारशास्त्रिणः गणपतिशास्त्री मोकाटे-
हरिशङ्कर पाण्डेय-बालबोध मिश्र-मार्कण्डेय मिश्र प्रभृतिभिः सह विशिष्ट पाठं
श्रुत्वा विवेचनाञ्चाधीत्य सभायाञ्च विचारं कृत्वा विजयं प्रतिष्ठाञ्च प्राप्य
सन्तोषादनुत्तमसुखलाभ इति चरितार्थयन् तत आगत्य १९०० तमे खीष्टाब्दे
स्वगृहे छात्रान् अध्यापयन् कालं यापयन् १९०८ खीष्टाब्दे मिथिलेशप्रवर्त्तितायां
घोतपरीक्षायां व्याकरणशास्त्रे प्रथमो भूत्वा श्रीमत्या लक्ष्मीवतीदेव्या महा-
राज्ञ्या अनुनयेन सरिसबस्थ-लक्ष्मीवतीविद्यालये प्रधानपदमलञ्चकार। तत्र
चानेकान् वत्सरान् अध्याप्य काव्ये रसिकमनोरञ्जिनीप्रभृतीन् व्याकरणे च
कौमुदीमूलार्थविद्योतिनी-भूषणसारदीपिका-बकारविवेक-मिथिलाभाषाविद्योतन-
प्रभृतीन् ग्रन्थान् निर्माय परस्सहस्र-शिष्योपशिष्यदर्शनेन आत्मानं धन्यं मन्यमानः
१९४१ तमे खीष्टाब्दे मैथिली-साहित्य-परिषदा मधुबन्यां महावैयाकरण इत्युपा-
धिमाससाद। एवं गच्छत्सु दिनेषु १९५३ तमे वर्षे दरभङ्गास्थ-मिथिला-संस्कृत-
विद्यापीठे विदुषां संशयं निवारयितुं नियुक्तोऽभूत्। तत्रापि लिङ्गवचनविचार
प्रभृतीन् ग्रन्थान् निर्माय प्रकाशयित्वा च यशो भजन् कीर्तिर्यस्य स जीवतीति
जीवन् जनान् उपाकरोत्।

महावैयाकरणो दीनबन्धुर्मे गुरुः, मिथिलायां सदैव गुरुरिव मान्यः, सभायां
मुख्यः, निर्भयः, स्पष्टवादी, लग्नशीलः, मनस्वी, शास्त्रार्थप्रचारकश्चासीत्।
कला-नैपुण्यमस्य परमं वैशिष्ट्यम्। वस्त्रसीवनं, यष्टि-लेखनी-कट-काष्ठमञ्ज-
षादिनिर्माणमपि स्वहस्तेन करोति स्मेति महत आश्चर्यस्य विषयः। अक्षर-

विन्यासोऽप्यस्य सुन्दर आसीत् । घटार्थी मृत्तिकामेवोपादत्ते नान्यं क्षीरादिक-मित्यादियुक्त्या सत्कार्यवादो वैयाकरणसिद्धान्त इति शिक्षयन् गृहे वर्षपर्यन्तं शब्देन्दुशेखरं मामध्यापयत् । पुत्रान् कन्यकापुत्रांश्च पाठयित्वा तान् अध्यापयतो दृष्ट्वा मुदमलभत । एतस्य त्रिषु पुत्रेषु ज्येष्ठः स्व० जीवनाथशर्मा जनकपुरे प्रधानाचार्यपदावकाशमासाद्य दरभंगासंस्कृतविश्वविद्यालये साहित्याध्यापकः, विविधग्रन्थनिर्माता, निविष्टपण्डितः, विशिष्टः कविश्चासीत् । एतत्पुत्रौ शम्भुनाथ-हीरानाथौ आचार्यपरीक्षोत्तीर्णौ स्तः । तत्पुत्रावपि बालौ स्तः । दीनबन्धोर्द्वितीयः पुत्रो गोविन्दः पाटलिपुत्रसचिवालये राजभाषाविभागे सहायकनिदेशकरूपेण कार्यरतः नानाग्रन्थनिर्माता व्याकरण-साहित्य-ऋग्वेदा-चार्यं आङ्ग्लप्रकाण्डोऽस्ति । एतत्पुत्राः अरविन्द-मिलिन्द-निर्मलेन्दवः सन्ति । तृतीयो डा० माधवः व्याकरण-साहित्याचार्यो विद्यावारिधिः इसहपुरस्थ-संस्कृत महाविद्यालये प्राचार्योऽस्ति । एतत्पुत्राः अनन्त-भुवन-सुमन-अर्जुनाः सन्ति । एवं दीनबन्धोः त्रयः पुत्राः, तिस्रः पुत्र्यः, अनेके पौत्र-दौहित्रादयः तत्सन्ततयश्च सुयोग्याः राजन्ते ।

एवं गुरुर्महावैयाकरणो दीनबन्धुः तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय, ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवतीति निश्चिन्वन् स्वगृहे २५।१।१९५५ खीष्टतिथौ मोक्षं प्राप्तवान् ।

तमो भेत्तुं जातः सुरगुरुसमो बुद्धिविभवः
सदाचारे लोके मुनिरिव सदा गौरवयुतः ।
समाजे सद्विद्यां वितरति च सत्कार्यकुशलं
सदा दीने बन्धुस्तदनुगुणकार्यं च कुरुते ॥१॥

विभूतिं प्राप्य लोकेऽस्मिन् परलोकं गतोऽपि सन् ।
दीने च बन्धुतां कृत्वा 'दीनबन्धु' विराजते ॥२॥

दीने बन्धुः सुरे बन्धुर्लोकबन्धुः सदा प्रियः ।
दीनबन्धुः सभाजेता स्तूयमानः सदा बुधैः ॥३॥

अयोध्या - मथुराकाश तीर्थमीशपुर शुभम् ।
दीनबन्धु - प्रसादेन व्याप्तं भुवनमण्डले ॥४॥

पिता च धन्यो जननी सुधन्या सुदीनबन्धुं पुरतो विलोक्य ।
गुणी च पुत्रो भविता सदा वै मनोरथो मे जगतीतलेऽस्मिन् ॥५॥

●

# महामहिमशालिनां विद्यावदातहृदयानां विद्वद्वराणां गुरूणां महावैयाकरणानां श्रीदीनबन्धुशर्म्मणां स्मरणम्

—पं० श्री तुलानन्द (नारायण) झा.

शास्त्रे व्याकरणे पतञ्जलिसमः साहित्यपाथोनिधिः
शब्दन्यायविचारधीरधिषणो योगे च साङ्ख्ये सुधीः ।
मीमांसानिपुणो विधाय बहुधा ग्रन्थाननेकान् कवि-
र्योऽभूत् पण्डितमण्डिताङ्घ्रियुगलः श्रीदीनबन्धुर्गुरुः ॥१॥

शालग्राम - शिलार्चनं प्रतिदिनं कुर्वन् स्वधर्मे स्थितः
साफल्यो समवात् प्रलोभवशतः सत्यप्रतिष्ठः सदा ।
तीर्थेषु भ्रमणं चकार कठिनं सद्धर्मसम्पादकं
शिष्यं पुत्रमिवाचरत् सुनियतं धन्यो महान् मे गुरुः ॥२॥

सदाचारे दक्षो बुधजन - सुदीक्षा - सुनिपुणो
न दैन्यं कुत्रापि प्रकटितमहो तेन गुरुणा ।
सदा विद्याभ्यासे विकसितमनाः शुभ्रसुयशाः
सतां शिक्षादाता प्रखरतरपाण्डित्यलसितः ॥३॥

अध्याप्य शिष्यनिवहान् बहुशः सुमान्यः
श्रीवैद्यनाथ - निकटे वरपाठशाले ।
लक्ष्मीश्वरीरचितसंस्कृतपाठगेहे
प्राध्यापयत् पुनरसौ सुकृती प्रधानः ॥४॥

वरसरिसबमध्ये पाठशाले विशाले
सरसगुणिसनाथेऽपाठयद् यः प्रधानः ।
तदनु दरिभंगायां प्राज्ञतुल्यान् सुशिष्यान्
बुधजननुतपादोऽध्यापयामास धन्यः ॥५॥

रमेश्वरस्य प्रतापोऽयं भूपस्य धीमतः ।
रचयामास रसिकमनोरञ्जनिकां पुनः ॥६॥

भूपवत्स्य च यो ज्यायान् [illegible] मनोहरम् ।
व्यधात् व्याकरणं दिव्यं मैथिलाः सुप्रबोधनम् ॥७॥

मिथिलायां लब्धजन्मा प्राचार्यो यो धनुर्द्धरः ।
तस्मादधीत्य व्याकरणं पश्चाद्वाराणसीं गतः ॥८॥

पूज्यः शिवकुमाराख्यः सर्वशास्त्रे धुरन्धरः ।
तस्मादधीत्य काश्यां स स्वदेशं पुनरागमत् ॥९॥

त्रयः पुत्रास्तथा पुत्र्यस्तिस्र आसन् महात्मनः ।
पौत्रा अनेके दौहित्रास्तान् विहाय दिवङ्गतः ॥१०॥

दीनबन्धुं गुरुं नौमि सर्वशास्त्रविशारदम् ।
यत्कृपालेशतः प्राप्ता मया विद्याऽतिदुर्लभा ॥११॥

●

# गुरुस्मरणम्

—पंडित श्री श्यामसुन्दर झा:

त्रयीमुखमरण्यानी यत्र शब्दार्णवे श्रमः ।
स्वच्छन्दकेसरी नूनं दीनबन्धुर्बुधां वरः ॥१॥

यद्भयादपशब्दास्तु पलायन्ते मृगा इव ।
शब्दानुशासनं चापं दधानः स कथं भवेत् ॥२॥

मादृशामल्पबुद्धीनां वचनानां नु गोचरः ।
तथापि वाणी-शुद्ध्यर्थं स्मारिकां विदधेऽधुना ॥३॥

अनेककाव्यनिर्माता वैयाकरणभूषणे ।
टीकां तरीमिवातन्वन् नानाभावप्रकाशिकाम् ॥४॥

सर्वतन्त्राटवीसिंहो मिश्रः शिवकुमारकः ।
छात्रमेनं समासाद्य काश्यामध्यापने रत. ॥५॥

वैदुष्यमद्वितीयन्तु शब्दशास्त्रे मुदाऽददात् ।
यत्प्रसादादयं काले स्वकीयेऽनुपमोऽभवत् ॥६॥

तद्वर्णने प्रवृत्तः शाकवणिङ् मादृशो मन्दः ।
तद्गुणमणिमूल्याकुलकर्मणि प्रभुतां कथं यातु ॥७॥

सपर्या पाथोधेः सलिलकणिकाभिर्यदि भवेद्
रवे पूजा यद्वद् घृतवलितदीपैः सुविहिता ।
कथं न स्यादर्चा वचनरचनाभिर्मम पुनः
समग्रा सामग्री यदि न मम गेहे समुचिता ॥८॥

यत्कृपावृष्टितो नूनं काव्यनिर्माणकौशलम् ।
लेशतोऽपि मयाऽऽप्तं तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥९॥

महरैलनिवास्तव्यः शिष्येष्वन्यतमस्त्वहम् ।
काव्यपुष्पाञ्जलिं तस्मै सपर्यार्थं ददे पुनः ॥१०॥

●

# दिवङ्गतानां सर्वतन्त्रस्वतन्त्राणां-पदवाक्यप्रमाणज्ञानां महागुरूणां महावैयाकरण-महाकवि-पण्डित-प्रकाण्ड-दीनबन्धुझाजीशर्म्मणां सार्वभौमं व्यक्तित्वम्

—आचार्य शोभाकान्त जयदेव झा:

इयं मिथिला मही अपूर्वप्रतिभावताराणां समस्तशास्त्रपारङ्गतानां महाविदुषां जन्मस्थली रत्नानां निधिरुदधिरिव विद्यते, अत्र साम्प्रतमपि भारतीयाना संस्कृतविदुषां नास्ति कश्चन विवादः। संस्कृतविद्याश्लाघा मिथिला-कश्मीर-स्मरहर-नगरीषु निवसतां विदुषां कियती आसीदिति विदन्त्येव विद्वांसः। योगिजनक-याज्ञवल्क्यकालादारभ्य अद्यतनकालं यावत् इयं मिथिला मही सर्वदर्शनक्षेत्रेषु वेद-वेदाङ्ग-काव्य-साहित्यक्षेत्रेषु च तादृशो विदुषो महापण्डितान् प्रासूत प्रसूते च येन इदानीमपि निर्विवादं कथयितुं शक्यते यत् यावन्तो महापण्डिताः मिथिलायां साम्प्रतं सन्ति तावन्तः सर्वस्मिन् भारते स्युरिति। इहत्या महाविद्वांसो मैथिलपण्डिताः जीविका-निर्वहणाय भारतवर्षस्य प्रतिप्रान्तं प्रतिकोणं च समाश्रयन्ते। कतिभ्यश्चिद्वर्षेभ्यः मिथिला-संस्कृत-शोध-संस्थान-कामेश्वरसिंह-दरभङ्गा-संस्कृत-विश्वविद्यालययोः संजातयोः केचन मैथिलविद्वांसः स्वनिर्वहणोपायं दर्शं दर्शमत्र समवेता बभूवुः भवन्ति च। किन्तु साम्प्रतमपि मैथिलाः महापण्डिताः कियन्तः तत्तच्छास्त्रविद्याधुरीणाः प्रवासमेवानुभवन्तः स्वजीवनं यापयन्ति। सर्वत्र संस्कृतसंस्थानेषु विश्वविद्यालयेषु च द्वित्राः महापण्डिताः मैथिलाः साम्प्रतमपि अवश्यमेव सन्तीति विज्ञायत एव भवद्भिः। किन्तु केचन मिथिलायामवतीर्ण-महापुरुषा महापण्डिता एतादृशाः प्रादुर्बभूवुः येषां नामापि पुरुषार्थप्रदम् उत्साहावहं च भवितुमर्हति।

तत्रैव स्वनामधन्या महागुरवः झाजी-महाशयाः आसन्। दरभङ्गा-स्थित मिथिला-संस्कृत-शोधसंस्थाने तेषां प्राच्यपण्डिततया, मम च प्राध्यापकतया

नियुक्तिः सहैव समजनि। कियन्तिचन वर्षाणि तेषां सान्निध्यमवाप्य शास्त्रीय-वादविवाद-प्रतियोगितायाः आरभ्य संस्थान-कार्यक्षेत्रेषु अस्माकं मेलनम् आसीत् नितान्तं महत्त्वास्पदम्। तेन मेलनेन यत्किमपि मया तुच्छज्ञानेन अनुभूतं तत् सत्य-मेव समुदाहरामि। अहं मध्यमाया आरभ्य आचार्यपरीक्षां यावत् व्याकरणस्य समस्तान् ग्रन्थान् प्राधान्येन दिवङ्गतेभ्यः व्याकरण-न्याय-तीर्थेभ्यः राधा-कृष्ण झा शर्मभ्योऽधीत्य न्यायस्य विशेषतोऽध्ययनं तदादेशेन विधातुं वाराणसी गतः। तत्र दिवङ्गतमहावैयाकरणरामयशस्त्रिपाठिभ्योऽपि व्याकरणशास्त्रं किञ्चिदधीतवान्। मम विद्यते स्वभावः द्वित्राण्यपि दिनानि तत्तच्छास्त्र-पारङ्गतेभ्यो विद्वद्भ्यः किञ्चिदवश्यमेवाध्ययनवेलायाम् अध्यगीषि। किन्तु मदीयगुरवः दिवङ्गताः राधाकृष्णझा शर्माणः अध्ययनवेलायां मां प्रत्यपि ऊचुः-'अहं लघुकौमुद्या आरभ्य समस्तं व्याकरणशास्त्रं महावैयाकरण श्रीदीनबन्धुझाशर्मभ्य एव अधीतवानस्मि, न्यायशास्त्रं च दिवङ्गतेभ्यः नैयायिकप्रवरेभ्यः यदुनाथमिश्रेभ्यो, महामहोपाध्याय-समस्तदर्शनकानन-पञ्चानन-श्रीबालकृष्णशर्मभ्यश्चाधीतवानस्मि। एकमपि दिनं काश्यां गत्वा व्याकरणशास्त्रं न्यायशास्त्रं वा नाऽधीतवान्, अध्येतुं वा न कामये। किन्तु मम हृदये परमो विश्वासः यत् मया व्याकरणशास्त्रे न्यायशास्त्रे च यज्ज्ञानमु-पार्जितं ततोऽधिकज्ञानं काश्यामधीयानेन मया उपार्जितं स्यात् इति नैव भवितुम-र्हति' इति। मदीयगुरवः सत्यवक्तारः सुयोग्याः न्यायव्याकरणमहापण्डिताः शास्त्रार्थकलाप्रवीणाः प्रतिभावतारा एव आसन्।

किन्तु तेषां गुरुवरेषु पण्डितदीनबन्धुझाशर्मसु यावती श्रद्धा विश्वासश्च आस्तां तौ मया किं वर्णनीयौ भवतः। मम गुरूणां विद्यते वाक्यमेतत् यत् मम गुरूणां पण्डितदीनबन्धुझाशर्म्मणां यादृशम् उत्कटकोटिकं निरतिशयं निष्कलङ्कं ज्ञानं विद्यते तादृशम् अन्यत्र दुर्लभप्रायमेव। महागुरुणा पण्डित दीनबन्धु झा शर्मणा व्युत्पत्तिक्षेत्रे, काव्य-साहित्य-व्याकरण-लेख-पाटव्यविधौ समस्यापूर्त्यादि-क्षेत्रे च स्वविद्यार्थिनो नियमेन तत्र नियुक्ताः अध्यापिताश्च बभूवुः येन तद्विद्यार्थिनः सर्वेऽपि व्युत्पन्नाः सुयोग्याः शास्त्रमर्मभिज्ञा अवश्यं समजनिषत। व्याकरणस्य लघुकौमुद्या आरभ्य महाभाष्यं यावत् तेषु-तेषु ग्रन्थेषु तासु-तासु पंक्तिषु यः कोऽपि आसीद् आवश्यको विचारः स सर्वोऽपि महागुरूणां पण्डित-दीनबन्धु झा शर्मणां कृते हस्तामलकम् एवासीत्। पश्चात् स्वसंशयोऽपि स्व-विद्यार्थ्यानां मदीय-गुरुवरप्रभृतीनामन्तिके एव उपस्थाप्य महागुरुभिः भञ्जित आसीत्। तत्कारणम् इदमेव यत् ते निष्कलङ्कविद्यादृशाः, अनवरतव्याकरण

शास्त्रचिन्तनरताः अभिनवां शङ्काम् उत्पाद्य स्थिरीकृत्य च स्वशिष्यान् बोधयितुं पृच्छन्त आसन्। मदीयगुरुवराः दिवङ्गतश्रीराधाकृष्णझाशर्माणः प्रतिवर्षं ग्रीष्मावकाशे शारदपूजावकाशे च श्रोत्रियपुरान्तर्गतेसहपुरग्रामं गत्वा निज-गुरुभ्योऽवश्यं कामपि अभिनवां शङ्कां समवाप्य तदुत्तरं च तान् श्रावयित्वा तन्मनः सन्तोष्य च विद्यालये समागत्य अस्मान् बोधयन्त आसन्। मदीयगुरुवराणाम् उक्तिः सा मयापि समीचीनैव निर्धार्यते यत् अनेकासु तद्रचितासु टीकासु कस्यामपि पंक्तौ एकोपि शब्दः अनावश्यको नास्ति। लेखन-विधौ भारवि-कलां मल्लिनाथ-कलां वा अनुशील्य महागुरुभिः पण्डितदीनबन्धुझाशर्मभिः स्व-ग्रथितासु वैयाकरण-भूषण-सारप्रभृतिग्रन्थानां टीकासु मौलिकग्रन्थेषु लिङ्ग-वचनविचार-प्रभृतिषु च कुत्रापि लेखनविधौ दारिद्र्यम् अनावश्यकपदजातं च संयोजितं नैव दर्शितं, तत्र तु तेषां प्रकाशिताः प्रकाश्यमाना ग्रन्था एव प्रमाणानि भवितुमर्हन्ति। एभिः महापण्डितैः व्याकरणशास्त्रं न्यायशास्त्रं साहित्य-शास्त्रम् अन्यदर्शनशास्त्रं च सर्वं गुरुमुखात् महता श्रमेण अधीतं स्वयं च परिशीलितम् अत्र न कोऽपि सन्देहः। किन्तु विदुषामयं सिद्धान्तः सर्वशास्त्र-पण्डिता अपि किञ्चिच्छास्त्रविशेषज्ञान् स्वात्मानं प्रथयन्ति। यथा सर्वतन्त्र-स्वतन्त्रा दिवङ्गताः श्रीधर्मदत्त(बच्चा) झा महाशयाः सर्वशास्त्रपण्डिता अपि स्वात्मानं नव्यनैयायिकमूर्द्धन्यतयैव ख्यापयामासुः। तथैव सर्वतन्त्रस्वतन्त्रा म. म. महापण्डितबालकृष्णशर्माणः सर्वशास्त्रपण्डिता अपि नैयायिक-मूर्द्धन्यतयैव स्वात्मानं प्रदर्शयामासुः। एवमेव अमी गुरवो महापण्डित श्री दीनबन्धु शर्माणोऽपि महावैयाकरणतयैव स्वनाम धन्यं चक्रुः। किन्तु ते दर्शनक्षेत्रेषु मैथिलीक्षेत्रे काव्यक्षेत्रे च सर्वत्रापि अपूर्वां प्रतिभां गम्भीरं च पाण्डित्यं प्राप्यैव मिथिलामहीमलङ्कुर्वाणा बभूवुः। अहं तु मन्ये एतादृशानां महामहिमशालिनां या काचन रचना तत्तच्छास्त्रीयस्वतन्त्ररूपा टीकारूपा वा सञ्जाता विद्यते सा सर्वा यदि कामेश्वरसिंहदरभङ्गासंस्कृतविश्वविद्यालीय-प्रकाशनविभागतः ग्रन्थावलीरूपेण प्रकाश्यते तदाऽवश्यमेव एतादृशां महाविदुषां विद्यायाः प्रकाशः स्यात्, अथ च मादृशा विद्वांसो विद्यार्थिनश्चावश्यं बहूप-कृताः स्युः। यद्यपि तेषां कियती रचना प्रकाशिता सञ्जातास्ति, ततः कामपि प्रीतिं मादृशाः विन्दन्त्येव, किन्तु एकत्र ग्रन्थावल्यां सर्वरचना-प्रकाशने तेषां सर्वशास्त्रीयपाण्डित्यं सामस्त्येन भारतीयैः सर्वविद्वद्भिः विज्ञातुम् अध्येतुं च पार्येत। एतेषां महाविदुषां कृते शताब्दी-समारोहमुपलक्ष्य अभिनन्दन-ग्रन्थेन सह तन्मूर्त्ति-प्रतिष्ठापनादि-कार्यं तत्समित्या सम्पाद्यते इति श्रुत्वैव प्रसन्नमना निवेदयामि यद् एतत् समारोहकार्यं विदुषां कृते नितान्तं पावनम् आवश्यक-

ऽन्वेति । सम्पूर्णस्यापि भारतस्य प्रतिष्ठा तत्तच्छास्त्रमर्मज्ञानां विदुषां पाण्डित्य-वैशद्यबलेनैव विद्यते, मिथिलायास्तु का कथा ! सम्पूर्णाऽपि मिथिला साम्प्रत-मपि महाविदुषां जन्मस्थली विद्यते । तत्रापि मिथिलायाः श्रोत्रियपुरभागो म० म० बालकृष्णमिश्र, म० म० गङ्गानाथ झा, महाकवि-कविशेखर बदरीनाथ झा, शास्त्रार्थमहारथि महादार्शनिक महावैयाकरण मार्कण्डेय मिश्र, डा० श्रीमदमरनाथ झा, डा० आदित्यनाथ झा प्रभृतिपरश्शतमहाविदुषां निवास-भूमिरिति मत्वा श्रोत्रियपुरं विद्याक्षेत्रे वाराणसीं मन्यमानोऽहं प्रतिवर्षं तीर्थ-रूपेण तत्तत्स्थानेषु गत्वा कमपि पुण्यचयमुपार्जयामि ।

आशासे च दिवङ्गता अपि ते धन्याः श्रोत्रिया महाविद्वांसो मादृशमपि अवमं जनम् आत्माशीराशिभिः सफलमनोरथं विदध्युरेव इति महागुरूणां महापण्डित महावैयाकरण दीनबन्धु झाशर्मणां चरणारविन्दयोः प्रणतिशतं निवेदयन् विरमामीति दिक् ।

## म०वै० दीनबन्धुशर्मणा प्रणीता ग्रन्था:

### (क) संस्कृत-ग्रन्था:

| काव्यग्रन्था: | | रचना-काल: (ई०) | | प्रकाशन काल: (ई०) | प्रकाशनस्थानम् |
|---|---|---|---|---|---|
| रमेश्वरप्रतापोदयम् | ··· | '९८ | ··· | '०२ | यन्त्रेश्वर प्रेस, काशी |
| रसिकमनोरंजिनी | ··· | '०८ | ··· | '१२ | रमेश्वर प्रेस, दरभङ्गा |
| स्तोत्रावली | ··· | '३६ | ··· | '७७ | 'मनीषा', दरभङ्गा |
| **व्याकरणग्रन्था:** | | | | | |
| मूलार्थविद्योतिनी | ··· | '१५ | ··· | – | – – – |
| समासशक्तिदीपिका | ··· | '२८ | ··· | '७८ | दरभङ्गा-संस्कृत-विश्व-विद्यालय: । |
| उपसृष्टधात्वर्थसंग्रह: | ··· | '३६ | ··· | – | – – |
| बकारविवेक: | ··· | '४१ | ··· | '४१ | ज्योतिष प्रकाश प्रेस, काशी । |
| लिङ्गवचनविचार: | ··· | '४८ | ··· | '५३ | मिथिला-विद्यापीठ, दरभङ्गा । |
| भूषणसारदीपिका | ··· | '५० | ··· | – | – – |
| हरिकारिका-टीका | ··· | '५३ | ··· | – | – – |
| व्याकरणतत्वप्रीप: | ··· | '५४ | ··· | '७६-७८ | मनीषा, दरभङ्गा, (अंशत:) । |
| **धर्मशास्त्रग्रन्था:**— | | | | | |
| स्त्रीव्यवहार: | ··· | '१० | ··· | – | – – |
| जीवित्पुत्रिकाव्रतनिर्णय: | ··· | '३६ | ··· | – | – – |
| श्राद्धाधिकारिनिर्णय: | ··· | '५० | ··· | '७६ | मनीषा १।४, दरभङ्गा |
| गयाश्राद्धपद्धति:(अपूर्णा) | ··· | '५२ | ··· | – | – – |
| विजयदशमीनिर्णय: | ··· | '५३ | ··· | '७७ | मनीषा, दरभङ्गा |

**साहित्यग्रन्थ:—**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| रसगङ्गाधरव्याख्या | ... | '५४ ... | — | — | — |

**शिक्षाशास्त्रग्रन्थ:—**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| बालशिक्षासोपानम् | ... | '५० ... | — | — | — |

## (ख) मैथिली-ग्रन्थ

| | | | |
|---|---|---|---|
| मिथिलाभाषाविद्योतन | ... १९१०-४० ... | '४५ | मैथिली-साहित्य-परिषद्, दरभङ्गा। |
| मिथिलाभाषाधातुपाठ | ... " ... | '४८ | " |
| मिथिलाभाषाकोष | ... १७२५-४५ ... | '५० | रामभजन प्रेस, पटना |
| अलंकारसागर(अपूर्ण) | ... '५४ ... | '६७ | ग्रन्थालय, दरभङ्गा। |
| अक्षरशिक्षा ... ... | ... '५४ ... | — | — — |
| मिथिलाभाषाक प्रसंग ... ... | '३७ ... | — | — — |

## महावैयाकरणजीक शिष्य-मण्डल

महावैयाकरण दीनबन्धु झा ५४-५५ वर्ष अध्यापन कएलन्हि। एहि दीर्घ अवधिमे हिनक सहस्रो शिष्य विद्यासम्पन्न भेलाह। बहुतो विख्यात विद्वान् भेलाह। आइ ओहिमे अधिकांश स्वर्गवासी भए गेलाह। बहुतो निर्मल वैदुष्य-सँ हिनक यशःपताकाकेँ फहराए रहल छथि। हिनक शिष्योपशिष्य-परम्परा मे मिथिलाक अधिकांश संस्कृतसुधी ओ छात्र आबिए जाइत छथि। किछु विशिष्ट शिष्यक सूची एतए प्रस्तुत अछि।

बाँके पाठक।

माधव चौधरी, गन्धबारि, संस्कृत-विद्यालय, समौल।

इन्द्रकान्त मिश्र, संस्कृत-विद्यालय, तरौनी।

राधाकृष्ण झा, संस्कृत-विद्यालय, वाराही।

दीनानाथ झा, माउबेहट, लक्ष्मीपुर-विद्यालय।

देवानन्द झा, संस्कृत-विद्यालय, लखनौर।

श्री यदुपति मिश्र, तरौनी, शारदाभवन सं० विद्यालय, नवानी।

मधुकान्तमिश्र, सं० विद्यालय, रघुनाथपुर।

श्री कृष्णमाधव झा, बिट्ठो, बम्बइ।

श्री श्यामसुन्दर झा, महरैल, संस्कृत-महाविद्यालय, दीप।

श्री नारायण झा, संस्कृत-विद्यालय, लखनौर ।
जीवनाथ झा, राजकीय संस्कृत-महाविद्यालय, जनकपुर ।
श्री लक्ष्मीनारायण झा, सं० विद्यालय, टट्टुआर ।
श्री बुद्धिनाथ झा, गंगौली, लोहना-विद्यापीठ ।
रमेश झा, गंगौली, सं० विद्यालय, पातेपुर ।
अर्कनाथ मिश्र, लालगंज ।
हरिनारायण झा, हाटी, सं० विद्यापीठ, लोहना ।
श्री चन्द्रशेखर झा, सूर्यगढ़ा, मुंगेर ।
श्री सूर्यनारायण झा, सूर्यगढ़ा, मुंगेर ।
लक्ष्मीनारायण झा, हाटी, सं० विद्यालय, रैयाम ।
श्री महीश्वर झा, पाही, सं० विद्यालय, सरिसब ।
हरिनाथ मिश्र, बटुरी, सं० विद्यालय, रीगा ।
बदरीनाथ मिश्र, गोसपुर, सहरसा ।
श्री बदरीनाथ झा, बिट्ठो ।
श्रीवल्लभ झा, हाटी, पुस्तकालयाध्यक्ष, सुलतानगंज ।
ललितनाथ झा, रुपौली, सं० विद्यालय, महरैल ।
रामेश्वरमिश्र, गलमा, सं० विद्यालय, कटिहार ।
सीताराम झा पौराणिक, हैंठीबाली, सं० विद्यालय, भ्रमरपुर ।
जयनन्दन झा, हेड पंडित, पँचगछिया हाइ स्कूल ।
जालेश्वर झा, सं० विद्यालय, साहपुर ।
राजेश्वर झा, सं० विद्यालय, शुम्भा ।
दीर्घनारायण झा, हेड पंडित, हाइ स्कूल, बलौर ।
रघुनन्दन झा, राजपण्डित, काठियाबाड ।
अवध नारायण चौधरी, लखनपट्टी, सं० पाठशाला, बेलमोहन ।
हरदेव झा, सं० विद्यालय, कलिगाम ।
विलट झा, सं० विद्यालय, नरही ।
सूर्यनारायण चौधरी, सं० पाठशाला, सझुआर ।
भुवनेश्वर मिश्र, सं० विद्यालय, चौगमा ।
अच्युतानन्द मिश्र, बड़साम, सं० विद्यालय, चिकना ।
मुकुन्द झा, गंगौली ।
श्री व्रजनन्दन झा, नवानी ।
श्री धर्मनाथ झा, गंगौली ।

राजेश्वर झा, डोकहर।
गङ्गाधर चौधरी, कोर्थु।
नन्दलाल झा, भदोन।
सुधाकर झा, पोखराम।
महावीर मिश्र, भटपुरा।
श्री शशिकान्त पाठक, करियन।
श्री जगदीश पाठक, सं० विद्यालय, करियन।
श्री तेजनाथ मिश्र, जमुथरि, सं० विद्यालय, रैयाम।
श्री केशवनाथ झा, नरुआर।
श्री विश्वेश्वर झा, प्राध्यापक, लक्ष्मीश्वर सिंह कालेज, सरिसव-पाही।
श्रीवीरेन्द्र झा, नरुआर, प्राचार्य, लोहना-विद्यापीठ।
महेश (झा) शर्मा, सरस्वतीस्कूल, लहेरियासराय।
रमानन्द झा, गंगौली, सं० विद्यालय, पातेपुर।
श्री सतीश झा, पाही, सं० विद्यालय, लौफा।
श्री रघुराम झा, पाही, शंकर दर्शन विद्यालय, सरिसव।
डा० श्री तेजनाथ झा विद्यावारिधि, पाही।
श्री चन्द्रमाधव झा, बिट्ठो, सं० विद्यालय, पाही।
श्री मणिनाथ झा, रीडर, लालबादुर केन्द्रीय सं० विद्यालय, दिल्ली।
खगेन्द्र झा, रमेश्वरलता सं० महाविद्यालय, दरभङ्गा।
श्री गोविन्द झा, इसहपुर।
श्री माधव झा, प्राचार्य, सं० महाविद्यालय, इसहपुर।
श्री भवनाथ झा 'दीपक', सं० विद्यालय, इसहपुर।
श्री अमरनाथ झा, रुपौली, सं० विद्यालय, इसहपुर।
श्री व्रजनन्दन झा, रामपुर।
श्री तेजनारायण झा, अवाम।
श्री शिवानन्द झा, करमौली, सनातन धर्म सं० कालेज, मुंगेर।
श्री द्वारिकानाथ झा, सरिसव।
श्री बुद्धिनाथ मिश्र, 'भङ्केर', सं० विद्यालय, सरिसव।
तेजनारायण झा, सं० विद्यालय, पुरनिञा।
श्री गङ्गाधर झा, प्राचार्य, स० महावि०, अहल्यास्थान।
श्री कृष्णवल्लभ झा, हाटी।

**श्री गणेश झा, 'मोहन', सं० विद्यालय, महरैल ।**
**तीर्थनाथ झा, दीप ।**
**श्री झलानाथ झा, इसहपुर ।**
**श्री हरिहर झा, दीप ।**

**उपशिष्यक तँ गणनो कठिन अछि । तथापि कतोक उपशिष्य जे शीर्षस्थ विद्वान् भए गेलाह तनिक चर्चा नीचाँ कएल जाइत अछि—**

(क) राधाकृष्ण झा (संस्कृत-विद्यालय, वाराही)क शिष्य –
- पं० भूपनारायण झा, काशी ।
- प० जटाशङ्कर झा, बिहार शिक्षा सेवा ।
- पं० श्री शोभाकान्त जयदेव झा, भूतपूर्व निदेशक, मिथिला संस्कृत संस्थान, दरभङ्गा ।
- पं० श्री शोभित मिश्र ।
- डा० श्री हरिदेव मिश्र, प्रोफेसर, त्रिभुवन विश्वविद्यालय, नेपाल ।

(ख) श्री यदुपति मिश्र (स० विद्यालय, नवानी)क शिष्य—
- प० श्री कुलानन्द मिश्र, स्नातकोत्तर विभागाध्यक्ष, सस्कृत विश्व-विद्यालय, दरभङ्गा ।
- प० श्री रामचन्द्र मिश्र, स्नातकोत्तर-विभागाध्यक्ष, सस्कृत विश्व-विद्यालय, दरभङ्गा ।
- प० श्री नमोनारायण झा, स० विद्यालय, मधुवनी ।
- प० श्री मदनमोहन झा, प्राचार्य, राजकीय सं० महाविद्यालय, पटना ।

(ग) श्री श्यामसुन्दर झा (सस्कृत विद्यालय, दीप)क शिष्य—
- डा० श्री विश्वनाथ झा, अध्यापक, स० महाविद्यालय, दीप ।
- डा० श्री लक्ष्मीनाथ झा, तत्रैव ।
- डा० श्री शशिनाथ झा, गवेषक, सस्कृत विश्वविद्यालय, दरभङ्गा ।

★

## महावैयाकरणजी ओ हुनक कृतिक प्रसंग

## आचार्य-वाणी।

### १. आचार्य रमानाथ झा :

एहि ग्रन्थक (अलंकार-सागरक) एक गोट इतिहास छैक। ई ग्रन्थ हमहि लिखबाओल अथवा ई कहू जे ई ग्रन्थ पूज्यपाद महावैयाकरणजी हमरहि निमित्त लिखलैन्हि। १९५३ ई०क वर्षा ऋतुक समाचार थिक। महावैयाकरण जी मिथिलाविद्यापीठमे छलाह; राजक पुरना अस्तबल दिशि हुनक डेरा छलैन्हि। हमहु विद्यापीठमे पण्डित-छात्रलोकनिकें अङ्गरेजी पढ़बए साँझकें जाइ ओ प्रायः नित्य जएबाक काल वा अएबाक काल हुनक दर्शन करैत जाइ-आबी। मिथिलाभाषाकोषक भूमिका छपि गेल छल, ताही प्रसङ्ग गप्पक क्रममे एक दिन हुनका ओतए निवेदन कएलिऐन्हि जे अपने व्याकरण ओ कोष तँ देल, अलंकारक सेहो एकटा ग्रन्थ लिखि दिअहुँ तँ भाषाशास्त्रक सर्वाङ्गीण विचार हमरा लोकनिकें अपनेहिक रचित चिरकाल धरि सम्पत्ति रहि जाइत। ओ हमर अनुरोध मानि लेल,·····

किछु दिनक बाद महावैयाकरणजी एक दिन हमरा बजबए पठओलैन्हि जे "सुनू तँ अहाँक 'फरमाइश' जे हम लिखए लगलहुँ अछि।" ओ उपमाक विचार जे प्रायः समाप्त होइत छल, तीनू कक्षा सुनबए लगलाह। हम नँ मन्त्रमुग्ध जकाँ सुनैत रहलहुँ। प्रथम कक्षामे अलंकारक सामान्य लक्षण, मध्यम कक्षामे ओकर विवेचना ओ उत्तम कक्षामे सूक्ष्मशः ओकर परिष्कार ओ ताहि सङ्ग-सङ्ग नाना प्रकारक आनुषङ्गिक विषयक प्रतिपादन; हमरा तृप्त देखि महावैयाकरणजीकें बड़.सन्तोष भेलैन्हि ओ तहिआसँ जखन-जखन एक गोट प्रकरण समाप्त होइन्ह, ओ हमरा सुनाए, हमरा सन्तुष्ट कए तखन आगाँ बढ़थि। वर्षेक ई क्रम चलैत रहल। निर्मल वैदुष्यक दुर्भाग्यसँ १९५४क बड़ा दिनक छुट्टीमे महावैयाकरणजी गाम गेलाह, ओतए दुखित पड़लाह ओ अग्रिम जनवरीक २६ तारीखकें हुनक देहान्त भए गेल। मिथिलामे संस्कृत-शिक्षाक अन्तिम स्तम्भ टूटि गेल। मैथिलीक एकान्त उपासक चल गेलाह। पश्चात् हुनक द्वितीय बालक श्री गोविन्दजी एकर प्रतिलिपि कए हमरा दए

गेलाह। हुनक सभ बालकके ई विषय अवगत छलैन्हि जे एकर रचना ओ हमरा निमित्त करैत छलाह। देखल तँ पता लागल जे अट्ठाइसम अलंकार अनुप्रासक प्रसङ्ग पूर्ण नहि भेल छल तावतहि पण्डितजी स्मर्तव्य भए गेलाह। ······परिणामक दृष्टिसँ प्रायः चतुर्थांश, विषयक दृष्टिएँ भए सकैत अछि तृतीयांश ओ लिखि सकलाह, तीन अंश शेषे रहि गेल।······

शास्त्रीय ग्रन्थ कठिन होइत अछि ओ से कठिनता एहि अलंकार-सागरहुमे बोध होएत। ई मनन करबाक वस्तु थिक। परन्तु तीनि कक्षामे बाँटि महा-वैयाकरणजी एकरा सबहिक हेतु उपादेय बनाए देल अछि। जनिका जतबे बुझबाक शक्ति छैन्हि से एहिसँ ततबे विषय ग्रहण करताह ओ अलंकार विषय तँ महजहि, साहित्यहुक प्रसङ्ग अनेक विषय अवगत कए लेताह। एकहि ग्रन्थमे अधिकारिभेदेँ विषयक उपस्थापन एहि ग्रन्थमे विशेष अछि ओ ताहि दृष्टिएँ ई मिथिलाभाषाक बड़का गौरव थिक। ······यदि ओ एकरा सम्पूर्ण कए सकितथि तखन एकर महत्त्व की होइतैक तकर कल्पनो करब कठिन अछि। मिथिलाभाषाविद्योतन, मिथिलाभाषाक धातुपाठ ओ मिथिलाभाषा-कोष तथा ओकर भूमिकामे महावैयाकरणजी अपन शास्त्रीय संस्कार तथा मिथिलाभाषाक ज्ञानक परिचय देलेँ छथि; एहि अलंकार-सागरमे हुनक शास्त्रीय संस्कारक परिपक्वता पूर्ण रूपेण परिलक्षित होइत अछि; ई ओ कृति थिक जकर भावना ओ रचना करैत ओ शरीरत्याग कएल। तहिँ हम एकरा एहने अपूर्णावस्थामे प्रकाशित कराओल अछि। हमरा तँ आशा नहि अछि जे केओ व्यक्ति एहि रूपेँ एहि शैलीपर शेष अलंकार-विचार लिखि सकैत छथि, तखन भविष्य केओ कहि नहि सकैत अछि। यदि ·····एकर शैलीक अध्ययन कए केओ एकरा पूर्ण करबाक साहस ओ उत्साह करताह तँ ओ मैथिली-जगत्मे अमर भए जएताह।

महावैयाकरणजीकेँ हमरा प्रति असीम स्नेह छलैन्हि। हुनकासँ हमरा कतेक प्रकारक सम्बन्ध। हमर मातामहीक मातृक हुनके ओहि ठाम छल तथा हुनक पिताक मातृक हमरा ओहि ठाम। हमरा पिताक ओ समवयस्क ओ जाहिआसँ ज्ञान भेल, पाठावस्थामे जखन कखनहु भेँट होइत छल संस्कृत-साहित्य पढ़बाक उत्साह दैत रहलाह, प्रत्येक नव उपलब्धिक हेतु प्रोत्साहन दैत रहलाह, तथा मैथिलीक क्षेत्रमे प्रवेश कराए ततेक उपदेश दैत रहलाह जे आइ जँ मैथिली लिखए अबैत अछि तँ से हुनके उपदेशक प्रसादात्। विद्याक अभिरुचि, आत्मविश्वास, वजबा विषय संयम, लिखबाक अभ्यास ओ ताहिमे

यश-अपयशक प्रसङ्ग उदासीनताक भाव—साहित्यिक जीवनमे जे ई कतोक गुण किछु भेल से जाहि-जाहि महापुरुषक आदर्श ओ उपदेशसँ ताहिमे प्रमुख छलाह महावैयाकरण जी। मैथिली कोना लिखब एहि प्र ंग कतेक आदेश हुनकासँ पओने छी। एक दिन ई पुछला उत्तर जे जेना बजैत छी तहिना किएक ने लिखी, महावैयाकरणजी कहने छलाह जे "जँ बजबे अशुद्ध करैत रही; तँ पहिने शुद्ध-शुद्ध बाजब तँ सीखू।" एखनहु धरि कतेको पृष्ठ संगमे अछि जे महावैयाकरण जी लाल मोसिसँ शुद्ध कए देने छलाह। ओही सत्संग ओ सदुपदेशक बलपर तँ गौरव अछि जे हमर भाषा शुद्ध होइत अछि।

[अलंकार-सागरक भूमिकासँ]

## २. म० म० डा० उमेश मिश्र :

The author, Pt. Dinabandhu Jha, is one of the top-ranking grammarians of the present day Mithila. He is also our respected collegue in the Institute. In the present treatise on the problem of gender and number in Sanskrit the author has tried to remove some difficulties which haunt not only the beginners but the learned Pandits as well. A result of long practical experience, extending over more than half a sentury, this book will, we hope, remove a long felt want of the Sanskitists.

[लिङ्गवचनविचारक भूमिकासँ]

## ३. आर० एल० टर्नर, लण्डन विश्वविद्यालय :

अपनेक मिथिला-भाषा-विद्योतन पाबि परम प्रसन्न भेलहुँ। एहि सुन्दर किन्तु कठिन भाषाक परिचय हमरा पहिने अपन वयोवृद्ध गुरु जार्ज ग्रिअर्सन साहेबक ग्रन्थ-सभसँ भेल। ओ एहि भाषाक जटिलताकेँ खास कए धातु-रूपावली-सम्बन्धी जटिलताकेँ सोझराएबाक स्तुत्य प्रयास कयने छलाह, तथापि हुनक प्रयासक बादो बहुत अंश अवशिष्ट रहि गेल छल। मैथिली भाषाक सौभाग्यवश ततःपर अपने एहि क्षेत्रमे अवतीर्ण भेलहुँ ओ अपन एहि ग्रन्थ द्वारा (जाहिमे हमरा जनैत अपने तीस वर्ष समय लगाओल अछि) ओहि अवशिष्ट अंशकेँ बहुत मात्रामे पूर्ण कए देलहुँ अछि जे अपनेक पूर्वाचार्य जार्ज ग्रिअर्सन साहेब नहि कए सकल छलाह।

[एक व्यक्तिगत पत्रसँ अनूदित]

## ४. डा० सुनीति कुमार चटर्जी, कलकत्ता विश्वविद्यालय :

मिथिला-भाषा-विद्योतन अनेक दृष्टिएँ विशिष्ट ग्रन्थ अछि। मैथिलीमे आइ धरि प्रकाशित समस्त व्याकरण-मध्य ई सर्वाधिक साङ्गोपाङ्ग ओ परिपूर्ण अछि। एहिमे एक कोटिसँ अधिक लोक मध्य व्यवहृत मैथिली भाषाक परम जटिलताकेँ पूर्णतः स्पष्ट करबाक प्रयास कएल गेल अछि। यद्यपि ग्रन्थकार सूत्र-पद्धति अपनाए संस्कृतक प्रति श्रद्धा प्रकाश कएलैन्हि अछि, तथापि हम एहि ग्रन्थमे संस्कृतसँ नितान्त भिन्न मैथिलीक जे किछु विलक्षणता छैक से स्पष्ट रूपेँ परिलक्षित पबैत छी। ग्रन्थकार सूत्र-पद्धितिसँ सम्भवतः अपन 'बुद्धिक चमत्कार' देखओलैन्हि अछि, ओ निःसन्देह एहिमे हुनक गहन विद्वत्ता ओ सार-ग्राहिणी बुद्धिक तीव्रता प्रकट होइत अछि, परन्तु नीक होइत जे ओ सूत्र-पद्धति छाड़ि सामान्य प्रणालीसँ आओर अधिक विषयक ग्रह ओ विवेचन करितथि जे (हमरा जनैत) मैथिली व्याकरणक हेतु अधिक सुविधाजनक होइत। आधुनिक मैथिलीक क्रियापदमे जे सर्वनामयोग देखल जाइत अछि तकर एहिमे पूर्ण विश्लेषण कएल गेल अछि, ओ नाम-रूपावली तथा धातु-रूपावलीक जे विविध चक्र-सभ देल गेल अछि से बड़ उपयोगी ओ सुविधाजनक अछि। एहिमे क्रियाक विविध कालक रूप सभ जँ किछु आओर विस्तारसँ देल रहैत तँ से हमरा जनैत नीक होइत। परन्तु ताहि कारणेँ एहि ग्रन्थक मूल्य घटल नहि अछि। एहि प्रकार कोनो बात छूटि गेलासँ कोनो ग्रन्थक उपयोगिता वा महत्त्व कम नहि भए जाइत छैक। ई व्याकरण एक गहन महापण्डितक रचना बूझि पड़ैत अछि जे (यद्यपि ओ केवल संस्कृतक गवाक्षसँ तकैत छथि जे हुनका हेतु नितान्त स्वाभाविक थिक) अपन मातृभाषाक अङ्ग-प्रत्यङ्गक मर्मज्ञ होथि ओ बुद्धिमत्तापूर्वक ओकर वर्णन करबामे प्रवृत्त होथि। हमरा विचारेँ नव्य आर्यभारतीय भाषाक आदर्श व्याकरण से होएत जे तुलनात्मक भाषा-विज्ञानक ऐतिहासिक तथ्यक आधार पर लिखल जाएत, परन्तु से दिन एखन दूर अछि जखन ओहि तरहक वस्तुतः उत्तम ग्रन्थक रचना भए सकत। परन्तु आलोच्य ग्रन्थक सन-सन ग्रन्थहुक कम मूल्य नहि होइत अछि। ग्रन्थकार ओ जे विद्यानुरागी संस्था ई ग्रन्थ प्रकाशित कएल अछि से दुनू नव्य आर्यभारतीय भाषाक अध्ययनमे अभिरुचि रखनिहार सकल व्यक्तिक भूरि-भूरि धन्यवादक पात्र थिकाह।

[गंगानाथ झा इन्सटिच्यूटक जर्नलसँ अनूदित]

**९. म.म.सर गंगानाथ झा :**

**"INDIAN THOUGAT"** **Muir Central College,**
**Allahabad**

Pandit Dinabandhu Jha has been known to me since his boyhood. I have been watching his scholastic career with interest, as early in life he gave evidence of being a keen student. Having studied Sanskrit Vyakarana in the earlier stages at Darbhanga he went over to Benares to finish his studies. There he had the unique advantage of undergoing a thorough training in Vyakarana, in all its branches, Sahitya and cognate Nyaya, under Mahamahopadhyaya Pandit Shivakumara Mishra. He is one of his favourite pupils. After returning from Benares he has devoted his entire time to the work of teaching. His learning and affable manners, coupled with the rare tact and art of teaching, soon collected round him a large number of pupils, and there has scarcely been a year in which several of his pupils have not passed the various examinations of the Bengal Board of Sanskrit Education with credit. The Pandit himself is a distinguished "Vyakaranatirtha" having passed the examination in the first class. Subsequently he appeared at the time-honoured examination of Pandits held by the Darbhanga Raj & there also he proved himself to be by far the best Pandit of the year.

He possesses a facile pen and his Sanskrit poems—some of which he has published--bear eloquent testimony to his command of language and inborn poetic sensibility, which enabled him to avoid the artificiality & bombast that disfigure most of the modern Sanskrit poetry.

Above all, he is a born teacher. He is erudite without being overbearing, polite without undue leniency. He is equally

home in all the most difficult works of Vyakarana and Sahitya, and there is not a single known work which he cannot teach with ease, having himself learnt all that is to be learnt as the first of the most perfect Pandits of the time.

Unfortunately however he has not as yet been able to secure appointment as a paid adhyapaka; for the last ten years he has been carrying on the work of teaching sincerely on the line of the Ancient Teachers —providing not only teaching but also, in many cases, food and lodging to his pupils. The death of his father however now compels him to seek his livelyhood elsewhere. And in the best interests of Sanskrit studies of the best type. .it is my earnest hope that he shall secure service in one or the other of the several Sanskrit colleges that are coming to be started under the auspices of the Government.

June 5, 1915. Ganganatha Jha

# संस्मरण

**प्रो० शीतलनाथ झा**

साठि वर्षसँ पुरान गप्प थिक जाड़ मासक अपराह्णमे पिताक संग कानो भोजमे महाराज रमेश्वर सिंहक सासुर अवाम गेल रही। उपनयन नहि भेल रहए। ओतए सामियानामे ठाढ़ रही। ता हमर पिताक एक जन समवयस्क आबि पएर छूबि प्रणाम कए बड़े आह्लादसँ कुशलादि पूछि गप्प करए लगलाह। ओहि व्यक्तिक आकृति बड़ प्रतिभापन्न। गौर वर्ण, प्रशस्त ललाट, ताहिपर ऊर्ध्वपुण्ड्र, जगजगार त्रिपुण्ड्र ओ सिन्दूरक ठोप, पहिरना मिर्जइ, बन्हुआ पाग, लाल दोशाला ओढ़ने, तीक्ष्ण दृष्टि, उद्दीप्त मुखमण्डल। पिता हमरा इसारासँ प्रणाम करए कहल। हम प्रणाम कएलिऐन्हि। आशीर्वाद दए ओ अन्तर्भेदी दृष्टिएँ हमरा दिशि तकैत नाम पूछि पूछल जे की पढ़ैत छी? हम कहलऐन्हि जे फस्ट बुक अर्धप्राय अछि। ताहि पर विमुख भए हमरा पिताकेँ नामे धए संबोधन कए विखिन्न स्वरेँ कहल—हऔ ई की करैत छह? कौलिक विद्या छन्हि। अंग्रेजी किएक पढबैत छहक? कौमुदी धरि पढ़ाए दितहक। एना नेना संस्कारहीन भए जएतहु।

हमरा पिताकेँ एतबा कहि ओहि खिन्न मुद्रामे ओ हमरा पूछल—"कहू तँ रामचन्द्र कए भाइ छलाह?" हम उत्तर देलिऐन्हि—'सोदर एकसरे छलाह, वैमात्रेय मिलाए चारि भाइ।" ओ पुनः पूछल—" आ कृष्ण?' हम उत्तर देलिऐन्हि—'जए भाइक जन्म भेलैन्हि से पुछैत छी? वा जए भाइ जिबैत रहलाह?" ताहि पर प्रसन्न मुद्रामे पीठि ठोकि कहल—'बुझल, अहाँ जनैत छी।" तदनन्तर हमरा पिताकेँ कहल जे नेना संस्कारी छहु, एकरा न्याय पढ़ाबह, कारिकावली घोषाबह। तखन आन-आन गप्प होअए लगलैक जे हमरा स्मरण नहि अछि।

फिरबाक काल पितासँ जिज्ञासा कएल हिनका प्रसङ्ग। ज्ञात भेल जे ओ इमहपुरक वैयाकरण दीनबन्धु बाबू छलाह, हमरा पिताक समवयस्क, वर्षक छोट।

दुहू गोटए सङ्ग-सङ्ग टट्टुआड़क पण्डित धनुर्धर झासँ शुभङ्करपुर मठ पढ़ैत छलाह। दीनबन्धु बाबू, जनिका हमर पिता लालजी नामे संबोधित

करैत छलथिन्ह, देशक पाठ समाप्त कए काशी पढ़ए चलि गेलाह; हमर पिता आगाँ नहि पढ़ल। काशीसँ पण्डित भए आबि दीनबन्धु बाबू दड़िभंगाक महाराजक ओतए धौत परीक्षामे व्याकरणमे प्रथम भेलाह। तखन हिनक प्रतिपक्षी लोकनि महाराजसँ निवेदन कएल जे हिनक गुरु पण्डित शिवकुमार मिश्र परीक्षामे क्षपात कएल, तेँ ई प्रथम भेलाह। प्रथम स्थानक निर्णयार्थ पण्डितसभा कए शास्त्रार्थ कराओल जाए। महाराज निवेदन स्वीकार कए लेल, पण्डित-सभा भेल, हिनक प्रतिपक्षीकेँ पूर्वपक्ष करए कहल गेल, मुदा ई हुनका दशो मिनट बाजए नहि देल, ओ परास्त भए गेलाह। दीनबन्धु बाबू पर महाराज प्रसन्न भए दोशाला पुरस्कार देल।

हम तखन अपना पिताकेँ पुछल जे जखन ओ अहाँक सहपाठी थिकाह तखन अहाँकेँ प्रणाम किएक कएल? हमर पिता उत्तर देल जे ओ संबन्धेँ हमर भातिज थिकाह, अहाँकेँ मात्रिकक दू गोट आओर संबन्ध अछि। तदुत्तर ओ हमरा हिनकासँ जे तीनू संबन्ध से बाटे-बाटे बुझाए देल।

प्रथम सबन्ध पैत्रिकक; हमर प्रपितामह पाँच भाइ, एक भाँइक—वैयाकरण राधानाथ झाक—दौहित्रक बेटा दीनबन्धु बाबू, दोसर भाँइ एकनाथझाक प्रपौत्र हम, तेँ हिनकासँ हमरा भैआरी भेल। दोसर संबन्ध मात्रिकक; हमर मातृमाता-मही महाराजकुमार वासुदेव सिंहक जेठि स्त्री ओ हिनक पितामह रघुवर झा सदर, तेँ दीनबन्धु बाबू एहि संबन्धेँ हमर माम। तृतीय संबन्ध मात्रिकक; दीनबन्धु बाबूक मातामह मुरली मिश्र महाराज छत्रसिंहक दौहित्र, हमर मातामही महाराज छत्रसिंहक पौत्री; एहि सबन्धेँ दीनबन्धु बाबूसँ हमरा भैआरी।

एवं क्रमेँ हमरा लोकनि गप्प करैत अपना ओतए पहुँचलहुँ। फलस्वरूप कारिकावली जे हमरा घोखाओल जाए लागल तकर मंगल मात्र आब हमरा स्मरण अछि—

> नूतनजलधररुचये गोपवधूटीदुकूलचौराय।
> तस्मै कृष्णाय नमः संसारमहीरुहस्य बीजाय।

मुदा अंग्रेजी पढ़ने संस्कारहीन नहि भए जाइ एतदर्थ हम सशङ्क रहए लगलहुँ ओ अद्यापि रहैत छी। एकरा हुनकासँ प्रथम भेँटक अभिशाप वा उपलब्धि जे बुझी।

# संस्मरणम्

पं० श्री आनन्द झा, न्यायाचार्यः

१

वैयाकरणमहत्त्व-
ख्यातिः सर्वत्रगामिनी सदा यस्य ।
तस्मै मम आदधते ।
मरणोत्तरमपि नितरचमाधत्ते दीनबन्धुत्वम् ।।

२

दीनबन्धुवपुरादराऽऽस्पदं
नातिपूर्वमिह यत्समागतम् ।
तद् गतं स्वनियमेन पञ्चतां
नश्वरं न खलु तद्यशोवपुः ।।

३

यद्धि तेन कृतिना कृता लस-
न्त्यद्य नातिविरला यशस्विनः ।
पाठयन्ति ननु तत्र तत्र वै
शब्दशास्त्रममलं विपश्चितः ।।

४

पुस्तकान्यपि च तेन निर्मिता-
न्यद्य नाति विरलानि भान्ति यत् ।
यच्च तस्य तनयास्त्रयोऽभवन्
धीधनास्तदनुरूपवृत्तयः ।।

५

ज्येष्ठ्यमादधदये न विद्यते
जीवनाथबुधसत्तमोऽद्य हा ।
येषु योऽपि खलु नैकसत्कृति-
मंच्यमूर्धिहित-निबताऽम्बरः ।।

६

दीनबन्धुविबुधस्य सम्मति-
र्दीनबन्धुभगवत्पदार्पिता ।
भासते स्म भगवत्स्तुतिस्तव-
स्तत्कृता प्रमहती विराजते ।।

## बूढ़ा पण्डितजी

—श्री 'रमाकर'

भारतभूतिविभूतिक चानन गगनक चमकल भान
कि वा भावविवश हम देखी "ललित लुलित नव-चान।"
राखि जतए निज भाल भेल छवि "गुरु शिव" रूप समान
पाबी "दीनक बन्धु" चरणकें पाबी तत सम्मान ।।

अभिनन्दित वन्दित पद-रेणुक लेश पाबि जग जानु
सारस्वत वैभवसँ पूरित बुधजन सबतरि मानु ।
धारि विपंची करमे गाबथि वाणी मधुमय राग
"तिल तिल नूतन" पाँति-पाँतिमे सारस्वत अनुराग ।।

ध्वनि रस पद गुण शब्द आखरक जत विद्योतन सिद्ध
महावाक्यसम विकसित कत सुम अरपल जगत प्रसिद्ध ।
जनइछ अन्तर अन्तर भावित प्रकृति देल संयोग
पाएब कहिआ अछि भरोस नहि योग्यक योग सुयोग ।।

सहस्रारस्थितपद ध्येयक होइछ जखनहि ध्यान
अमिय बरसि हिय सिंचित करइछ बुधक विमल प्रणिधान ।
कत कलाक कलाधर देखल सून मनक अनुमान
आँखि मूनि संस्मृतिसँ जानी अमर विभाक प्रमाण ।।

सरक बीच हो विकसित पुनरपि भावुक षट्पक आकर ।
"बूढ़ा पण्डितजी" लग अएलहुँ नतशिर भेल 'रमाकर' ।।

❁

## MAHAVAIYAKARANA DINABANDHU JHA

*Dr. Trilokanatha Jha,*
*College Professor and Head,*
*Deptt. of Sanskrit, C.M. College, Darbhanga.*

Dinabandhu Jha, son of Pheku Jha and grandson of Raghuvara Jha, a srotriyabrahmana of the *Mandara* family, was an inhabitant of village Ishahpur in Madhubani district. Born in 1878, Dinabandhu showed signs of his genius in his early childhood. His maternal grandfather was Murali Misra of the *Hariama* family. On his father's side Murali was the grandson of M.M. Sacala Misra while on his mother's side he was the grandson of Maharaja Chatrasimha.

Dinabandhu studied at the feet of Pandit Dhanurdhara Jha, the author of *Nityakrityarnava*. While at Varanasi he enjoyed the proud privilege of being a pupil of M.M. Siva Kumara Misra for seven years, from 1893 to 1900. In 1908 he passed the Dhautapariksa in Vyakarana. In 1941 the Mithila Vidvatparisad conferred upon him the much-coveted title of Mahavaiyakarana.

In the beginning he taught students at his village home. Then in 1911 he joined Lakshmipur Vidyalaya. He left Lakshmipur in 1922 to join Lakshmivati Vidyalaya at Sarisava. At Sarisava he taught Vyakarana for a period of over 31 years. In 1953 he joined the Mithila Research Institute, Darbhanga as a Traditional Pandit and stayed there upto December 1954. Dinabandhu Jha was the president of the *Sabda-Khanda* section of the XIVth All India Oriental Conference held at Darbhanga.

Mahavaiyakarana Dinabandhu attracted a galaxy of talented students. Prominent among his pupils are : Radhakrsna Jha, Dinanatha Jha, Madhava Chaudhari, Yadupati Misra, Sitarama Jha 'Vyasa', Ramesa Jha, Krsnamadhava Jha, Devananda Jha, Buddhinatha Jha, Syamasundara Jha, Tejanatha Jha, Maninatha Jha and others.

An adept in handicrafts, Mahavaiyakarana made fine bamboo-curtains. His handwriting was also very fine.

In all Mahavaiyakarana composed 23 works on various topics in Sanskrit and Maithili.

Mahavaiyakarana was a boon for his mothertongue, Mathili. He gave her her fist systematic grammar on the lines of the great Panini and hence he is often remembered as the Panini of Maithili. True, some of his contemporaries criticized him for the formation of sutras for the language of the people, but those conversant with the enormous potentiality of the sutra-style have always held him in high est.em.

We quote below some of the verses composed by Dinabandhu to help the reader in assessing the poetic talent of the veteran grammarian.

1. ग्लानानि पद्मानि विलोक्य रोषादिवातिरक्तत्वमुपागतस्य ।
   प्रभातकालेऽभ्युदितस्य भानो. पादा: शिरो न: परिपावयन्तु ॥[1]
2. आभाति माधव ! तवोरसि वर्तमानं श्रीवत्सलाञ्छनमनुत्तमशान्तमूर्त्तेः ।
   त्रैलोक्यवर्तिपुरुपोत्तमतापरीक्षा - प्रोत्तीर्णतापरिचयाक्षरमुद्रणेव ॥[2]
3. पश्यन्ती चकितविलोचनेन कान्ते न्यस्यन्ती भुवि चरणौ शनै रजन्याम् ।
   चेतो मे हरसि मृगाक्षि ! तेन युक्तं बाहुभ्या दृढतरबन्धनं भवत्या: ॥[3]
4. विघटयति विधि:, स एव काले सखि ! घटयत्यपि, तत्र को विषाद: ।
   निशि विरहमवाप्य, पश्य कान्तं श्रयति दिने पुनरेव चक्रवाकी ॥[4]
5. सख्य: सूक्ष्मगवाक्षयोजितदृश: पश्यन्त्यमू: कौतुकात्
   कान्तो नैव तु वेत्ति सुस्मितमुखो मन्नीविकां मुञ्चति ।
   इत्याशु प्रियवारणाय तरुणी यावद् बभूवोद्यता
   तावत्कामरथोद्धतेन रजसा सर्वं निरोभूदिव ॥[5]
6. त.पाणिकल्पद्रुमपल्लवेन बभूव वा तस्य वचोऽमृतेन ।
   स्वस्त्वानुमाने नगरे यदीये विद्वाननेको गुरुरन्तराय: ॥[6]

---

1. सूर्यस्तुति in स्तोत्रावली.
2. विष्णुस्तुति in स्तोत्रावली.
3. रसिकमनोरञ्जिनी, मध्याप्रसङ्ग 49.
4. *Ibid*, 85.
5. *Ibid.*, प्रगल्भाप्रसङ्ग, 15.
6. रमेश्वरप्रतापोदय, 80.

Mahavaiyakarana breathed his last on January 26, 1955. He had three sons—Jivanatha, Govinda and Madhava—all Sanskrit scholars. The eldest was a Sahitya scholar of repute. He died last year. There is a number of works composed by him which bear testimony to his poetic talent and critical accumen.

The second, Pt. Govinda Jha follows in the footsteps of his worthy father in giving Maithili language a grammar of her own, but his approach is, quite naturally, modern. He tries to explain the problems of Maithili grammar from philological point of view. Philology is the main subject of interest for him.

The youngest Pt. Madhava Jha, a Vaiyakarana, is the Principal of Nandan Sanskrit Mahavidyalaya, Ishahpur.

I am grateful to Dr. Shashinatha Jha of village Deep, for the information given by him.

●

मैथिलीक महाप्राण

# स्व० महावैयाकरण दीनबन्धु झाजी

डॉ० श्री परमेश्वर मिश्र

एम. ए., बी. एल., पीएच. डा., अध्यक्ष, मैथिली विभाग,
जगदीश नन्दन कओलेज, मधुबनी ।

प्रागैतिहासिक कालहिसँ मिथिला महान् सारस्वत-साधनाक एकटा मुख्य सिद्धपीठ रहल अछि जकर फलस्वरूप ओ विश्वमे पूर्ण समादृत भेल । आधुनिको युगमे हमरा लोकनिक समाजमे मिथिलाक गौरवमय संस्कृत-पाण्डित्यक महान प्रतीक स्वर्गीय महामहोपाध्याय डॉक्टर सर गंगानाथझा, सर्व्व-तन्त्र-स्वतन्त्र महामहोपाध्याय बालकृष्णमिश्र, पण्डित-प्रवर मार्कण्डेयमिश्र, महावैयाकरण दीनबन्धु झा एवं कविशेखर बदरीनाथझा सदृश "सुर भारतीक परिचरणमे लीन" रहनिहार पण्डित-राज भेलाह जनिक महान पाण्डित्यक ख्याति एवं शिष्य-परम्परा देश-विदेशमे पूर्ण रूपसँ प्रसृत अछि तथा इएह मूल कारण थिक जे हमरा लोकनिक मिथिलाक एहि परिसरकेँ विदेशी विद्वान् लोकनिक द्वारा "मिथिलाक ऑक्सफोर्ड" (Oxford of Mithila) कहल गेल अछि ।

प्राय: एक सए वर्ष पूर्व्व किंवा उन्नैसम शताब्दीक उत्तरार्द्धमे मिथिलाक एहि पवित्र परिसरक इसहपुर ग्राममे स्वर्गीय प्रातःस्मरणीय स्वनामधन्य पण्डित दीनबन्धु झा जीक जन्म एकटा अत्युच्च अवदात मैथिल श्रोत्रिय ब्राह्मण-परिवार मध्य भेल । एतए ई उल्लेख करबामे कनेको अतिशयोक्तिक सम्भावना नहि जे स्वर्गीय दीनबन्धु बाबू अपन महान् पाण्डित्यक हेतु सर्व्वत्र पूजित छलाह तथा समस्त पण्डित-समाज हुनका अपन जीवन-कालहिमे "महावैयाकरण" एवं अपर-पाणिनिक मानद उपाधिसँ सम्मानित कएने छल । हमरा जनैत दीनबन्धु बाबू सन पैघ वैयाकरण एवं कोषकार आधुनिक मिथिलामे प्राय: केओ दोसर व्यक्ति नहि भेलाह । ओ सम्पूर्ण मिथिलाक गौरव, पण्डित-समाजक मुकुट-मणि तथा राष्ट्रक एकटा महान विभूति छलाह । देव-भाषा संस्कृतक संगहि संग मातृभाषा मैथिलीक सर्वाङ्गीण उन्नयन एवं विकासमे ओ अपन समस्त जीवन अर्पित कए देल । मैथिलीमे जे शिक्षाक रीं रो

स्वर्गीय आचार्य-प्रवर रमानाथबाबू चलाओल अथवा शैलीमे एकरूपता अनबाक प्रयास कएल तकर पूर्ण अनुमोदन व्याकरणक सूत्रक आधारपर पण्डित दीनबन्धु बाबू कएने छथाह। परम श्रद्धेय दीनबन्धु बाबू मिथिला-भाषाक स्वरूपके ठोस एवं व्याकरण-सम्मत बनाओल-एहिमे कोनो टा सन्देह नहि। ओ हमरा लोकनिके "मिथिला-भाषा-विद्योतन", "शब्द-कोष" एवं "अलंकार-सागर", आदि कतिपय गौरव-ग्रन्थ अपन अमर लेखनी द्वारा प्रदान कए स्वयं मैथिला-जगतमे सब्बदाक लेल अमर भए गेलाह। समस्त मिथिला-भाषा-भाषी लोकनि हुनक एहि महान योगदानक हेतु चिर-ऋणी रहताह। एतेक प्रामाणिक मिथिलाभाषामे दोसर के व्याकरण लिखैत ?

एतदतिरिक्त संस्कृतमे हुनक रचित कतिपय ग्रन्थरत्न सभ अछि। महावैयाकरण रहितहुँ ओ काव्यक पूर्ण मर्मज्ञ तथा लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार सेहो छलाह। ओ एकटा धौत-परीक्षोत्तीर्ण महापण्डित, विश्व-विश्रुत महावैयाकरण, जीवन-निर्माता, आदर्श एवं सफल प्राध्यापकक संगहि-संग सामान्य जीवन तथा उच्च विचारक महान प्रतिमूर्त्ति छलाह। ओ स्वयं व्यक्तिमे एकटा महान संस्था छलाह। नामक अनुरूप अपन गुणके चरितार्थ कएनिहार दिवंगत दीनबन्धु बाबू यथार्थ दीनक बन्धु छलाह। जें स्वर्गीय कवि-शेखर बदरीनाथ झा मैथिलीक "माघ" छलाह तें महावैयाकरण दिवंगत दीनबन्धु बाबू वस्तुतः मैथिलीक "पाणिनि" रहथि। वैयाकरण-केशरी महामहोपाध्याय परमेश्वरझाक निधनक पश्चात् पूज्यपाद दीनबन्धु बाबू तथा पण्डित-प्रवर निरसनमिश्र महावैयाकरणक रूपमे पूर्ण ख्याति प्राप्त कएल। आंग्ल-भाषामे जएह स्थान जे०सी०नेसफिल्ड साहेब तथा संस्कृत वाङ्मयमे पाणिनिक अछि सएह स्थान मिथिला-भाषामे स्वर्गीय दीनबन्धु बाबूक अछि—एकटा महावैयाकरणक रूपमे। एहन महापण्डित आब कतए भेटत ? ओ यथार्थमे महापुरुष छलाह। सामाजिक क्षेत्रमे नवका व्यवहारक सूत्रधार रहितहुँ ओ प्राचीनताक प्रति पूर्ण श्रद्धावान छलाह। अन्ध-विश्वासक अपेक्षा तर्क एवं व्यावहारिकताके विशेष महत्व देथि। सभ ठाम सामंजस्य स्थापित राखथि, शास्त्रीय प्रमाणपर आधारित कार्य करथि। घमण्ड किंवा मिथ्याभिमानक छूति हुनकामे नहि छल। परिश्रमी, मेधावी एवं प्रतिभा-सम्पन्न कर्मठ व्यक्तिके प्रोत्साहन देब ओ अपन पुनीत कर्त्तव्य मानैत छलाह। ओ पूर्ण यशस्वी, सन्तुलित समन्वयवादी, आचार-विचारवान, व्यवहार-कुशल तथा अपन समयक मिथिलाक एकटा संस्कृत एवं मैथिलीक उद्भट तथा अद्वितीय विद्वान् छलाह। ओ कलाक पारखी छलाह एवं हुनका हस्त-कलाक प्रति

विशेष अभिरुचि छलन्हि। समाज-सुधारक संगहि-संग मिथिला, मैथिल एवं मैथिलीक इतिहासमे एकटा महान उन्नायक तथा प्रबल पक्षधरक रूपमे स्व० महावैयाकरण पण्डित दीनबन्धु झाजीक नाम एवं योगादानक उल्लेख स्वर्णाक्षरमे अंकित होएत। कहलो गेल अछि--"स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्; परिवर्त्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।" महावैयाकरण एहि उक्तिकें चरितार्थ कएल।

मिथिला-भाषाकें ओ एकटा ठोस एवं पूर्ण प्रामाणिक व्याकरण देल जकर महामना सर जार्ज अब्राहम ग्रिअर्सनक प्रधान शिष्य एवं विश्वविश्रुत भाषा-वैज्ञानिक डॉक्टर आर०एल०टर्नर सदृश प्रकाण्ड विद्वान् मुक्तकण्ठसँ प्रशंसा एवं श्लाघा कएल। हुनक मैथिली व्याकरण मिथिला-भाषाक अमूल्य सम्पत्ति थिक। ओ सामान्य जीवन तथा उच्च विचारक पूर्ण प्रतीक छलाह। ओ हमर समीपवर्त्ती ग्रामक छलाह। हमर ग्राम हरिपुर तथा हुनक ग्राम इसहपुर केवल एक कोस मात्र दूर पर अवस्थित अत्यन्त निकट तथा सलट छैक। सरिसवक संस्कृत विद्यालयसँ लए दड़िभंगाक संस्कृत इन्स्टीच्यूट धरिमे हमरा कतिपय गोष्ठी एवं सभा-समारोह मध्य हुनक दर्शन भेल तथा हुनक पाण्डित्य पूर्ण भाषणक श्रवण कएल। हुनक चन्दनचर्चित भव्य ललाट, ऋषितुल्य बहुल उज्जर-उज्जर दाढ़ी, माथपर पाग, गरदनिमे श्वेत तौनी लपेटल, गौर वर्ण, छरहर शरीर, नैसर्गिक प्रतिभासँ प्रदीप्त मुख-मण्डल, खुटिआ-मिरजइ पहिरने हुनक व्यक्तित्व वृद्धावस्थहुमे अनायास सभकें प्रभावित कए लैत छल। हुनका प्रसगमे ई विशेष लेख लिखबाक काल एहने अनुभव होइछ जेना स्वयं स्वर्गीय महावैयाकरण हमरा समक्षमे उपस्थित होथि। स्वनामधन्य दीनबन्धु बाबूक सुयोग्य आत्मज श्री माधव बाबूक विशेष आग्रह एवं अनुरोध पर दिवंगत महावैयाकरणक प्रसंगमे हम अपन श्रद्धाक पुष्प सादर अर्पित कएल- अपेक्षित योग्याक अभाव रहनहुँ मिथिलाक सूर्य्यकें दीप देखाएब सन प्रतीत होइछ-एहि लेखमे। पूज्यवर दीनबन्धु बाबूक यशःकाय हुनक काल-जयी कृतिक कारणें जरा-मृत्युक भयसँ सर्वथा विमुक्त अछि, एहिमे कोनोटा सन्देह नहि। स्वर्गीय महावैयाकरणक सुयोग्य सुपुत्र लोकनिमे हमर परम आत्मीय दिवगत जीवनाथबाबू एवं श्रीगोविन्दबाबू मैथिलीक विभिन्न विधासभ पर अपन-अपन रचना सभ प्रदान कएने छथि। हुनका लोकनिक काव्य, महाकाव्य, नाटक, निबन्ध भाषा-विज्ञान, छन्दःशास्त्र विषयक मैथिलीग्रन्थ सभ एकर परिचायक थिक। साहित्य तथा समाजक प्रति स्वर्गीय दीनबन्धु

बाबू एवं हुनक समस्त परिवारक महान योगदानकें केओ कोना बिसरि सकैछ ? हमर परोपट्टामे किंवा समस्त सोतिपुरामे काव्यक क्षेत्रमे अहिना स्वर्गीय कवि-शेखर बदरीनाथ झाजी तहिना व्याकरणक क्षेत्रमे महा-वैयाकरण दिवंगत पण्डित दीनबन्धु झा जीक सुयश अछि। दुनूटा महापुरुष संस्कृतक मूर्धन्य विद्वान रहितहुँ मैथिलीक आजीवन अनन्य उपासक, सम-सामयिक तथा हमरा लोकनिक समाजक बड़का गौरव छलाह। दुनू महानु-भावक अशेष आशीर्वाद सेहो हमरा प्राप्त छल। हुनक निधनसँ राष्ट्रक जे महान क्षति भेल तकर पूर्त्ति होएब सर्व्वथा असम्भव। सम्पूर्ण भारत वर्षमे हुनका सन महावैयाकारण सम्प्रति नहि भेटत। ओ अपना सन अपनहिटा छलाह "गगनं गगनाकरं सागरः सागरोपमः।" हमरा ई ज्ञात कए परम हर्ष होइछ जे दिवंगत महावैयाकरणक सम्मानमे दीनबन्धु झा शताब्दी सामारोहक शुभ अवसर पर हुनक शिष्य एवं प्रशंसक-मण्डली द्वारा "स्मृति-ग्रन्थ" क प्रकाशन भए रहल अछि। एहि पुनीत अवसर पर स्वर्गीय महावैयाकरणकें हमर हार्दिक श्रद्धांजलि कोटिशः प्रणामक संग एहि विशेष लेख द्वारा आदर अर्पित अछि।

❀

# महावैयाकरण पं० दीनबन्धु झा : एक आदर्श शिक्षक

श्री नीतीश्वर सिंह
पचही ड्यौढ़ी (मधुबनी)

लोक तीन तरहें पैघ बनैत अछि—जन्मसँ, क्रियासँ अथवा पदसँ। कहल गेल अछि—Some are born great, some achieve greatnees and some have greatness thrust upon them. महावैयाकरण पं० दीनबन्धु झा जन्मसँ महान नहि छलाह। पिता बड़ साधारण लोक रहथिन्ह। तेहन कोनो बाहरी प्रभाव हिनका उपर उठयबाक हेतु नहि छल; ने धन, ने जन, ने पद। अध्ययन-अध्यापनक बलें पैघ बनि सकलाह। आन्तरिक प्रतिभा, पवित्र आचरण ओ महान विचार हिनका ऊपर उठयबामे सहायता कयलक। विद्याव्यसनक संग चरित्रबल, लगनशीलता एवं कार्यकुशलतासँ ई विद्वान ओ यशस्वी बनि सकलाह।

एहि निबन्धक लेखकके पंडित जीक अध्ययन मात्र पोथी, चर्चा अथवा अनका मँ सुनल नहि छन्हि। पंडित जी हिनक पिताक मातामह छलथिन्ह। लेखकके अपना ओहिठाम ( पचही ड्यौढ़ीमे ) हिनक सेवा करबाक अवसर भेटल छनि। मिथिला इन्स्टीच्यूट, दरभंगा मे किछु दिन संग रहल छथि। हुनक भव्य आकृति, दैनिक चर्या, अध्ययन-अध्यापनक प्रति लगनशीलता जेना एखनहु आँखिक समक्ष छनि। भाषण ओ उपदेश सुनने छथि। पुरान बात कहनिहार पिता ओ पितामही ( पं० जीक जेठ सन्तान ) एखनहु संग छथिन्ह। तें हिनक जीवन-चरित्रपर विचार करैत एहि निष्कर्षपर अबैत छथि जे पंडित जी एक आदर्श शिक्षक पहिने छलाह तखन किछु।

शिक्षकके चाही अध्ययन। बाल्यावस्थहिसँ पंडित जीके पढ़बाक हेतु अधिक रुचि छलनि। प्रारम्भिक शिक्षा टटुआरमे प्राप्त कयलनि। एकर बाद विशेष अध्ययन हेतु काशी गेलाह। ओतए विद्वान लोककिसँ सम्पर्क भेलनि। बड़ परिश्रमसँ अध्ययन कयलनि। व्याकरणक प्रति रुचि जागल। नित्य तीन बजे प्रात: उठि पढ़बाक हेतु बैसि जाथि। ई क्रम जीवनक अन्तिम वर्ष धरि चलैत रहलनि। पढ़बाक पाछु शरीरक चिन्ता नहि कयलनि। कठिनसँ कठिन ग्रन्थक अध्ययन ओ अनुशीलन कयलनि। सब दिन पढ़िते रहलाह। कहलो गेल अछि "नीक शिक्षकके आजीवन छात्र बनए पड़ैत छैक।"

पंडित जीक एकमात्र इच्छा अध्यापक बनब छल। काशीसँ अएलाक बाद अपना ओहिठाम ( इशहपुरमे ) अनेक छात्रकेँ राखि पढ़बए लगलाह। हुनका लोकनिक भोजन आदिक प्रबन्ध सेहो करथिन्ह। पाँच वर्ष धरि एहि रूपेँ शिक्षणकार्य कयलाक बाद लक्ष्मीवती-विद्यालय, लक्ष्मीपुरमे शिक्षक नियुक्त भेलाह। किछु दिन वैद्यनाथधाममे सेहो अध्यापक छलाह। सभसँ अधिक दिन सरिसव संस्कृत-विद्यालयमे प्रधान शिक्षक रहलाह। अन्तमे दरभंगा स्थित मिथिला इन्स्टीच्यूटमे अध्यापन कयलनि तथा जीवनक अन्तिम दिन धरि एतए शिक्षक छलाह। हिनक शिष्य लोकनिमे पं० यदुपति मिश्र, पं० इन्द्रकान्त मिश्र, पं० राधाकृष्ण झा, पं० रमेश झा, पं० देवानन्द झा तथा पं० मणिनाथ झा आदिक नाम उल्लेखनीय अछि।

अध्यापन-कार्यसँ ई कखनहु ने थाकथि ने अकछाथि। नीक शिष्यकेँ पढ़यबामे ई अधिक समय देथिन्ह। विद्यालयमे दस बजेसँ अस्तकाल धरि पढ़बैत रहि जाथि। बिदा हेबाक काल जिज्ञासु तथा मेधावी छात्रकेँ विशेष अध्ययन हेतु भोरमे चारि बजे अपना ओहिठाम बजबथिन्ह। पुनः चारि बजेसँ हुनका संग शास्त्रक चर्चा करए लागथि। ई क्रम नओ बजे दिन धरि चलनि। स्नान, पूजा ओ भोजन कए शीघ्रतामे विद्यालय बिदा होथि। छात्रसभसँ बाटहुमे पाठ्यविषयक चर्चा करैत जाथि। एहि परिश्रम ओ व्यस्ततामे थोड़बो अकछाथि नहि। दिनमे विश्रामक जेना हिनका कहियो प्रयोजन हयबे नहि करनि।

भाषणकलामे पंडित जी पटु छलाह। सभा-समितिमे विषयक ज्ञान श्रोतागणकेँ अधिकसँ अधिक उदाहरणक सग देथिन्ह। बड़ स्थिर भावेँ एवं व्यवस्थित ढंगसँ हास्यक पुट दैत विषयक स्वादन करबथि।

खेल सभमे सेहो भाग लेथि। सतरंज खेल पंडित जीकेँ सबसँ अधिक पसीन छलनि। घटाक घंटा खेलाइत रहि जाथि। बड़ नीक खेलाइत छलाह। एकर अतिरिक्त चौपाड़ि, पचेसी, गजीफा, तास आदि खेलमे सेहो रुचि लेथि।

पंडित जी राज दरभंगा द्वारा धौत-परीक्षामे पुरस्कृत भेल छलाह। मिथिलामे पँचसँ पँच विद्वानक हेतु एक जोड़ धोतीक ई पुरस्कार सर्वश्रेष्ठ मानल गेल छल। कान्तिपुर, पचही ओ राँटी ड्यौढ़ीक बाबू साहेबसभ हिनकार पूर्ण सत्कार ओ बिदाइ करथिन्ह। ओरियन्टल कन्फरेन्समे शब्दखंड विभागक सभापति छलाह। पंडितसभमे विशेष स्थान पाबथि। शास्त्रार्थक मध्यस्थ रूपेँ हिनका पूर्ण प्रतिष्ठा छलनि।

शिक्षक रूपें हिनका समाजसँ सम्पर्क तथा समस्याक यथार्थ ज्ञान स्वाभाविक छल। प्राचीन परम्पराक पोषक रहितहु उपनयन-विवाहादिक विधानमे नवीन पद्धतिक प्रणेता छलाह्। बदलल परिस्थितिमे प्राचीन पद्धतिक नीक बेजाय सोचलनि ओ अंधलोहक विरोध कयलनि। नव पद्धतिक आरम्भ स्वयं अपना घरसँ कयलनि। कपड़ा-लत्तामे सरल ओ विचारमे उच्च रहब हिनक महानता छल। आजीवन साधारण धोती ओ मिरजइ चपकन पहिरैत रहलाह्। जाड़मे अपनहिंसँ सीबि तुरभरा तैयार करथि। चौबन्दी सीबि कें पहिरथि। साठा पाग बन्हैत छलाह्।

शिक्षा ओ अध्ययन ज्ञानक हेतु करए कहैत छलथिन्ह्। परीक्षा पास करबाक हेतु नहि। मात्र परीक्षाक दृष्टिसँ पढ़ायब हिनका कहियो पसीन नहि भेलनि। संस्कृत-परीक्षा-पद्धतिमे सुधारक पक्षपाती छलाह्। मैथिली-परीक्षाक संयोजक छलाह।

सरल रहितहु स्वाभिमानी छलाह्। विचारक ततेक उच्च जे लक्ष्मीपुर विद्यालय मे शिक्षक रहथि। व्यवस्थाक दिसमँ एक दिन कोनो कारणें जारनि पठाएब बन्द कऽ देल गेलनि। तकरा आगू विशेष अपमानक संकेत बुझि सेवा सँ त्यागपत्र दऽ गाम चल गेलाह्। पंडित जीक शिक्षा ओ कर्मनिष्ठाक क्षेत्रमे सफलताक प्रतीक भेलथिन्ह् हिनक तीनू पुत्र लोकनि। हिनक अनेक शिष्य विख्यात विद्वान भेलथिन्ह्।

पंडित दीनबन्धु झा जीक जीवन, प्रत्येक कार्य ओ आचार-विचार अनुकरणीय छल। लोक जतेक हिनक पोथी ओ भाषणसँ सीखि सकैत छल ताहिसँ अधिक हिनक जीवन ओ कार्यमँ। विनोबा जी शिक्षकक विषयमे आइ कहैत छथि— प्रत्येक घर आदर्श विद्यालय बनय ओ प्रत्येक विद्यालय आदर्श घर। सगहि ओ शिक्षककें हस्तकलामे निपुण होमय कहैत छथि। पंडित जी ताहि विषयक उदाहरण आइसँ पचास वर्ष पूर्वहि प्रस्तुत कयलनि।

तें सभ तरहें ओ एक आदर्श शिक्षक छलाह्।

●

# महावैयाकरणदीनबन्धुशर्मणां सामाजिकभावना

—श्रीकाशीनाथझा

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।

इतिभगवद्वाक्येन ज्ञायते यद् यदा यदाऽधर्ममूलकसामाजिकदुःखानुभूतिः तन्मनसि विशेषरूपेणाविर्भवति तदा तदा तद्दुःखोपशमनाय भगवतः अंशेन कोऽपि युगपुरुषोऽवतीर्णो भवति । अवतीर्य च स्वकीयाऽलौकिकचमत्कारेण सामाजिकमनांसि आकृष्य तद्गतदुःखोत्पादकपापात्मकभावनां तदनुरूप-क्रियाकलापं सामाजिकव्यवहारञ्चापहृत्य पुनः सुखोत्पादकधार्मिकभावनायां तदनुरूपक्रियाकलापेषु सामाजिकव्यवहारेषु च प्रवृत्त्यर्थं प्रेरयित्वाऽन्तर्हितो भवति ।

एतादृशयुगपुरुषेष्वन्यतमः आसीत् महावैयाकरणो दीनबन्धुः । स यद् ब्रूते स्म तदेव शुद्धं व्याकरणं नान्यत् । तद्विपरीतं यदि कुत्रापि प्रतिष्ठित पुस्तकेष्वपि उल्लिखितं भवेत्तदा तदशुद्धमपाणिनीयमेव वा भवेत् । सन्तीदानीमपि बहवो विद्वांसः तत्प्रत्यक्षद्रष्टारः । अतोऽत्र नास्ति सन्देहलेशोऽपि । धर्मशास्त्रे कर्मकाण्डे च तस्य अव्याहतगतिरासीत् । गहनतमधर्मशास्त्रीयविषयस्य निर्णयमनायासेन पुस्तकावलोकनं विनैव करोति स्म । कर्मकाण्डस्य तु स मूर्तिरेवासीत् । न केवलं कर्मकाण्डशास्त्रे तस्याव्याहतगतिरपितु व्यावहारिक दशायामपि स्वयं कर्मकाण्डं कुर्वन् छात्रैः कारयन् समाजेऽपि महदान्दोलन विधाय कर्मकाण्डं स्थिरं चकार ।

तदानीन्तने श्रोत्रियसमाजे उपनयनविवाहादिषोडशसंस्कारात्मक कर्मकाण्डे बहुव्ययसाध्यः प्राचीनसामाजिकव्यवहारः प्रचलितः आसीत् । अर्थाभावेन समाजे कर्म्मकाण्डशैथिल्यमवगत्य महता प्रयासेन सामाजिक मनांसि आकृष्य नूतनव्यवहारसञ्चालनाय प्रोत्साहितवान् । अर्थविहीन-जनस्य तु कथैव का सर्वथाऽर्थसम्पन्नोऽपि जनः नूतनव्यवहारस्य हृदयेन स्वागतं विहितवान् । अल्पतमव्ययेनैव कर्मकाण्डं सम्पादयन् समाजः बहुव्यय-

भारतो मुक्तो जातः । स च नूतनव्यवहारः इदानीमपि समाजे तस्मिन् प्रचलति । सामाजिकजनाश्च बहुशः साधुवादान् तस्मै वितरन्ति । यावदयं समाजः स्थास्यति तावत् तस्योपकारं प्रति श्रद्धाञ्जलिमर्पयिष्यत्येव इति को न जानाति श्रोत्रियसमाजस्य जनः । एतादृशः युगपुरुषः आसीत् महावैयाकरणो दीनबन्धुः । तस्य गुणगानं सूर्यं प्रति दीपदर्शनवदेव स्यात् । अतः एतावदेव उक्त्वा तस्मै हृदयेन कोटिशः श्रद्धाञ्जलिमर्पयन् विरमामि कामये च तदात्मनः चिरशान्तिम् ।

## नेना भुटकाक उद्गार

## (१) नमन-कोटि चरणमे

श्री शम्भुनाथ झा, इसहपुर ।

भयलहुँ हम शरण तोर, सेवल पद-कमल कोर
पालित हम अम्ब तोर, सुख केर सदनमे ।
ज्ञानी नहि ज्ञान दान, जननि ! पाबि नीक दान
पाबि बुद्धि सुकृति मान, सरस्वती सदनमे ।

सेवा भव्य नव्य रूप, भाषागत देखि चुप
'दीनबन्धु' धएल रूप, विचारक सोपानमे ।
'विद्योतन'क कूपमे, भाषाक सद्रूपमे
धातुपाठ धूपमे, मैथिली विधानमे ।

भाषा केर कोष रचि, व्याकरणक दोष बँचि
नूतन उत्साह सँचि, मैथिली जगतमे ।
नव विचार ज्ञानमे, अलंकार, विधानमे
सरित् प्रवाह मनमे, 'भूषण' मुकुटमे ।

संस्कृतक साधनमे, भारती आराधनमे
टीका कय 'भूषण'मे, पाणिनि विधानमे ।
बहुतो रचि ग्रन्थ माल, वाटिका सुमन जाल
नवल पाबि बुद्धि बाल, संस्कृत शास्त्रमे ।

शिष्य शत सहस्र बीच, 'शेखर' वत भेल बीच
प्रतिष्ठा जन जगत बीच, सुजनसमुदायमे ।
नवल रीति नीति दान, मङ्गल कर यश महान्
नवल व्यवहारवान्, वैवाहिक क्षेत्रमे।

समारोह शत .वर्षमे, जन्म तिथि विमर्शमे
पितामहक स्मरणमे, नमन कोटि चरणमे

●

## (२) पुष्पांजलि

श्री प्रमोद झा "गोकुल", दीप।

सकल - शास्त्र - वन - विहरणमे पण्डित - पञ्चानन<br>
निज प्रतिभहिं तत्काल भाल भासित यश आनन।<br>
'दीनबन्धु' बुध जे विद्याक अगाध खान् से<br>
छथि राजित सुरलोक लोक तजि विष्णुधाम जे॥<br>
मैथिलीक वन ललित मध्य सौरभ श्रीचन्दन।<br>
तनिक पूज्य पद-कमल-युगक हो पुनि-पुनि वन्दन॥<br>
भाषा-विद्योतन रचि मिथिला प्रमुदित कयलन्हि।<br>
पुनि रचि कोष प्रशस्त सभक मन हर्षित कयलन्हि॥<br>
विविध - ग्रन्थ - प्रणेता शास्त्रार्थ-विजेता<br>
बृहस्पति-समान वेत्ता दीनबन्धु-नेता।<br>
सनातन-धर्म-शाला सत्य केर बाला<br>
नूतन-मयूख-माला-सम भासित रहयवाला॥<br>
निखिल शास्त्र निकष जेता अनुरूप नाम धर्त्ता।<br>
हे यशोनिधि ! गुणक आकर सकल विद्वत्कुल प्रभाकर।<br>
करब की लए हम समर्चा ग्रहण करु श्रद्धाक अर्चा॥

## सरिसव-लक्ष्मीवतीविद्यालय-प्रधानाध्यापकपदपरित्यागावसरे समर्पितम् अभिनन्दनदलम्

आबाल्यं सुरभारती-परिचयव्यासङ्गमग्नाशयो
प्रागेव प्रतिभातिरेक-विभवादुत्तीर्णशास्त्रार्णवः ।
अन्तेवासिपरम्परामविरलामध्यापयन्नन्वहं
भव्यान् भूरिपरिश्रमेण निरमाद् ग्रन्थान् यदुच्चावचान् ।।१।।

एतद्दीर्घतपःप्रभावसुलभा सद्योग्यता तावकी
कीर्त्तिश्च प्रथिताऽभितोऽतिनिभृतं यत्नं व्यधातां ध्रुवम् ।
संख्यावत्समवायदुर्लभतमाऽऽयासं विनैवाऽधुना
श्लाघ्यास्त्वायतिरन्यथा कथमसावासादि सिद्धिस्त्वया ।।२।।

वैदुष्यं च्युतदूषणं सुचरितं श्लाघ्यं सुताः कोविदा
वार्द्धक्येऽपि वपुः क्रियासु कुशलं सिद्धिस्तथा सेदुषी ।
अस्माभिः शुभचिन्तकैर्बुधमणे ! सम्भूय भूयोऽधुना
प्रायास्यं परमेश्वरास्तव कृते द्राघिष्ठमायुः परम् ।।३।।

गृहे-गृहे सम्प्रति पण्डितानां विद्वन् ! पदेऽत्युच्चतमे तवास्मिन् ।
नियोजिकायाः समितेर्विभाति प्रकाममौचित्यविचारचर्चा ।।४।।

पण्डितपुङ्गव ! भवतो नियुक्तिरेषा विशेषेण ।
मिथिला-संस्कृत-विद्यापीठमपि प्रत्यतिष्ठिपन्नूनम् ।।५।।

व्यथयति नितान्तमन्तस्तव विश्लेषस्त्वदीयान्नः ।
आह्लादयति च दुर्लभपदोपलब्धिस्ततोऽप्यधिकम् ।।६।।

चिरसन्निकर्षजनुषां कृपया मर्षणमागसामिदानीम् ।
विनता वयमात्मीयाः सम्भूयाऽभ्यर्थयामहे भूयः ।।७।।

सं० २०१०, चैत्रकृष्ण सप्तम्यां रवौ — मिथिला विद्वत्परिषदा

●

# काश्मीराक्रमणम्

आचार्य रामचन्द्र मिश्र

१

येन भूमण्डनेन स्वखण्डेन देशोऽस्मदीयो दिवं सुन्दरीं निन्दति
शारदादेशमास्थाय यत्केशरं काव्यरूपं सदा सौरभं विन्दति ।
यत्र दिव्या वनाली क्वचित् कुत्रचिन्निर्झरो ह्लादिमन्द्रस्वरः स्यन्दते ॥
व्योमचुम्बी महीभृत् पयोरूपधृग् भक्तिभावेन मन्ये महीं बन्दते ॥

२

मस्तकस्थानता यस्य भागस्य भूमीधरैं रुच्छ्रितैः सादरं कथ्यते
दुर्गमत्वेन देशान्तरागामिनां विद्विषां यत्र संरम्भिता मथ्यते ।
यत्र मृद्वीकया साकमक्षोटमश्नन्ति लोका विनायासमश्रान्तये
यन्निवासी प्रसूते जनः कायरुच्या मृताशोऽपि चित्ते स्पृहां कान्तये ।

३

नौविहारेऽहरप्यस्तविश्रान्तिसक्ता न यत्रानुरक्तावली म्लायति
देवदारुद्रुमाली - निलीना नरी किन्नरीवामृतस्रुत्स्वरैर्गायति ।
साधनाभूमिभूताऽपि भोगावनी या निवासाय पुण्यैः परैराप्यते
यत्र सौजन्यशालि प्रजामानसं स्पर्द्धया वा न चेर्ष्याभिरैस्ताप्यते ॥

४

यत्र विद्यावनौ ज्ञानदीपोपमः सर्वशास्त्रार्थविन्मम्मटोऽजायत
येन काव्यप्रकाशं विनिर्माय कीर्त्तिर्दिशासु स्फुटेन्दुप्रभाऽगायत ।
विह्लणाद्याः कवीन्द्रा यदीयाङ्गणे धूलिखेलामिषात् काव्यशिक्षामगुः
ये प्रबन्धेषु दिव्येषु देशस्य रम्यां तथा शाश्वतीं कीर्त्तिगाथां जगुः ॥

५

साऽद्य काश्मीरभूः कान्दिशीकप्रजाः पामरैरात्मनः सेनयाऽऽक्रम्यते
यत्र शऽन्तिः सदास्थायिना वर्त्तते स्माद्य तत्रापि भीत्या परिभ्रम्यते ।
जातिभेदस्य बीजं यदीयस्तरुः श्वेतपुष्पी तदत्रानयैरुप्यते
भावना भ्रातृभावस्य तत्र स्थितानां जनानां मनोभ्यो बलाल्लुप्यते ॥

६

आत्मनिर्मन्थनामृतप्रत्यभिज्ञादिशैवागमो यत्र जन्माऽभजत्
यत्प्रभावं न देशः सहस्रं समा ज्ञानजन्ये विकासे कदाप्यत्यजम् ।
भूमिभागेन तेनाधुना दुर्धरं युद्धनिष्वानमाः श्रृण्वता श्रूयते
कस्य चित्तं न सर्वं तदालोचितुर्विद्विषन्चेष्टया दुष्टया द्रूयते ॥

७

भारतीयां भुवं शक्तिदम्भेन ये स्वीयभूमिं विधातुं यतन्तेऽरयः
अस्मदीयस्य सैन्यस्य विक्राम्यतो युद्धभूमौ न तैर्दृष्टपूर्वो रयः ।
अन्यथा ते कथं वह्निना क्रीडितुं साहसिक्यं दधीरन्नधीराशयाः
सौम्यताविश्रुता अप्यमी सैनिका निश्चयेन प्रथन्ते रणे निर्दयाः ॥

८

उड्डयन्तां ततो धूमयानानि चेतो वमत्वग्निवृष्टिं शतघ्नीचयः
अस्त्रजालावृताङ्गयः शतं सर्वतः सैन्यसिन्धोर्वलन्तां तमां वीचयः ।
कल्पवल्लीप्रसूनानि कः पण्डितः पामराणां करेषु स्वयं न्यस्यतु
कः सति स्पन्दने रक्तगेऽनिस्त्रपः शात्रवं वल्गितं वीक्ष्य वा त्रस्यतु ।

९

जन्मभूमेर्जनन्या यदामर्शनं तस्य सोढा भवेत्कस्तथा चाधमः ।
शिष्यमाणेऽसृजो विन्दुमात्रेऽपि नः किं वृथा रैष तेषां रणायोद्यमः ।
नश्वरैर्जीवितैरर्पितैः सुस्थिरा कीर्त्तिरिन्दुद्युतिः शश्वदासाद्यते ।
मान्यतां मृत्तिका पूर्वपुण्योदयेनाद्य चामीकरत्वं समापाद्यते ।

# प्रमाण सभक परस्पर मैत्री एवं विरोध

तार्किकवर विद्यावाचस्पति पं० दुर्गाधरझा

जाहि प्रकारें लोकमे देखि पड़इत अछि जे केओ कखनहुँ ककरो मित्र होइत अछि एवं कखनहुँ ककरो शत्रु, अथवा जएह एक समयमे जकरे मित्र होइत अछि सएह दोसर समयमे ओही व्यक्तिक शत्रु भए जाइत अछि, शत्रुता एवं मित्रताक इएह स्थिति प्रमाणहु सभमे छैक।

कखनहुँ कोनो विषयमे प्रत्यक्षादि चारू प्रमाण एके विषयक प्रमाज्ञान स्वरूप कार्यक उत्पादन करत तँ कखनहुँ तिमिएँ प्रमाण मिलि वा दुइए प्रमाण मिलि एक विषयक प्रमाज्ञानक उत्पादन करत। प्रत्यक्ष तँ एकसरे अपन कार्य करइत अछि।

एही प्रकारें कखनहुँ प्रत्यक्षसँ अनुमान शब्दादि सभ पराभूत होएत तँ कखनहुँ अनुमानसँ प्रत्यक्षे पराभूत भए जाएत। कखनहुँ अनुमानसँ शब्द प्रमाण पछड़ि जाएत। कखनहुँ शब्दसँ अनुमाने हारि मानि लेत। अथवा कखनहुँ शब्दसँ प्रत्यक्ष एवं अनुमान दूनू पराभूत भए जाएत।

एहि लेखमे हम प्रमाण सभक एही शत्रुता एवं मित्रताक किछु विवरण देब। पहिने सभक मित्रताहिक चर्चा कएल जाओ।

प्रमाणक ई मित्रता दू प्रकारक छैक। कतहु तँ अनेक प्रमाण मिलिकें एक विशेष आकारक प्रमाज्ञानक उत्पादन करइत अछि। ई सभ प्रमाण पुरुषक द्वारा एके प्रमाज्ञानक उद्देश्यमें प्रयुक्त होइत अछि। जेना 'आत्मा अस्ति' एहि आप्तवाक्यस्वरूप शब्द प्रमाण सँ आत्माक अस्तित्व मोटामोटी ज्ञात भेलहु उत्तर तद्विषयक असंगत भावना एवं विपरीत संभावनाक निरासार्थं आत्मविषयक विशेष प्रकारक प्रमाज्ञानक हेतु अनुमान एवं विशेष योगयुक्त पुरुषक द्वारा प्रत्यक्षो प्रयुक्त होइत अछि। जकर विधान

'आत्मा वाऽरे द्रष्टव्य: श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य:'

एहि उपनिषद् वाक्य द्वारा भेल अछि। एवं एही विषयके

> आगमेनानुमानेन ध्यानाभ्यासरसेन च।
> त्रिधा प्रकल्पयन् प्रज्ञां लभते योगमुत्तमम्।

इत्यादि श्लोक भेल अछि।

एही प्रकारेँ 'अय पर्वतो वह्निमान्' एहि आप्तवाक्यस्वरूप शब्द प्रमाण सँ पर्वतमे वह्निक ज्ञान भेला उत्तर पर्वत लग गेलामे धूमक प्रत्यक्षक अनन्तर पर्वतमे ओही वह्निक अनुमितियो होइत अछि। एवं पर्वतक अतिसमीप गेला उत्तर ओही वह्निक प्रत्यक्षो होइत अछि। प्रत्यक्षक बाद साधारणतः आकांक्षा निवृत्त भए जाइत छैक। किन्तु ओही वह्निकेँ विशेष प्रकारक अनुमितिक इच्छा रहलासँ (अनुमित्सा, वा सिषाधयिषा रहलासँ) प्रत्यक्षक अनन्तरो अनुमिति होइत छैक। ई विषय श्रीवाचस्पतिमिश्र तात्पर्य-टीकामे 'प्रत्यक्षपरिकलितमप्यर्थमनुमानेन बुभुत्सन्ते तर्करसिकाः' एहि वाक्य सँ लिखने छथि, जकर उल्लेख श्री गंगेशोपाध्याय 'पक्षता' प्रकरणक चिन्ता-मणिमे कएने छथि।

एवं अनेक प्रमाण मिलिकेँ एके प्रमा-ज्ञानक उत्पादनो करइत अछि। प्रमाण सभक एहि प्रकारक मित्रता परार्थानुमान हेतु आवश्यक पञ्चावयव वाक्यस्वरूप न्यायक स्वरूपमे देखल जाइत अछि। एहि ठाम पाँचो अवयव मिलिए केँ अनुमेयस्वरूप प्रधान विषयक अनुमितिक उत्पादन करइत अछि। एहिमे 'साध्यानिर्देश' स्वरूप 'प्रतिज्ञा' थिक शब्दप्रमाण; 'हेतु' थिक अनुमान प्रमाण; 'उदाहरण' थिक प्रत्यक्ष प्रमाण; 'उपनय' थिक उपमान प्रमाण; एहि चारू अवयवक प्रतिपाद्य सभक 'सम्मिलितार्थ' क बोधक थिक 'निगमन'।

एही प्रकारेँ शब्दप्रमाणसँ उत्पाद्य बोधहुमे प्रत्यक्षादि अनेक प्रकारक प्रमाणक सहयोग अपेक्षित होइत छैक (द्रष्टव्य न्यायभाष्य अ० १, आ० १, सू० ३९)। ई त भेल प्रमाण सभक परस्पर मैत्रीक कथा।

आब समाजक हेतु अतिजघन्य किन्तु तत्त्वज्ञानक हेतु अवश्य ज्ञातव्य प्रमाण सभक परस्पर विरोधक विवरण संक्षेपमे दइत छी।

'समग्र' कारण सभक अर्थात् कारण-समूहक नाम थिक 'सामग्री'। अनेक कारणसँ एक कार्यक उत्पत्ति होइत अछि। अनेक कारण मिलिए केँ एक कार्यक सम्पादन करइत अछि। जाहि प्रमाज्ञानक कारण-समूह (सामग्री) जतेक थोड़ व्यक्तिक होएत, ओ सामग्री ओतेक क्षिप्रगतिसँ कार्यक उत्पादन करत। एतद्विपरीत जाहि प्रमाज्ञानक उत्पादिका सामग्रीमे जतेक अधिक व्यक्ति संनिविष्ट रहतैक ओ सामग्री ओतेक विलम्बसँ कार्यक सम्पादन करत।

तदनुसार प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमिति एवं शाब्दबोध एहि चारि प्रमिति मे प्रत्यक्ष प्रमितिक उत्पादक सामग्रिये सभसँ थोड़ व्यक्तिसँ घटित अछि,

किएक तँ प्रत्यक्ष प्रमिति ले आत्ममन:संयोगादि ज्ञानक साधारण कारणकेँ छोड़ि असाधारण कारण रूपमे प्रमाणभूत विषयेन्द्रियसंयोग मात्र अपेक्षित होइत छैक तेँ कोनो एके विषयक प्रत्यक्षसामग्री एवं अनुमिति-सामग्री दूनू रहतैक तँ गुरुभूतशरीरक अनुमिति-सामग्रीकेँ बाधित कए प्रत्यक्ष-सामग्री सएह अपन कार्य करत, अर्थात् एहन स्थलमे प्रत्यक्षात्मक प्रमितिए उत्पन्न होएतैक। कारण जे अनुमितिक असाधारण कारणक समूह व्याप्तिज्ञान, पक्षधर्मताज्ञान, परामर्शादि अनेक कारणसँ घटित होएबाक कारणेँ प्रत्यक्ष-सामग्रीक अपेक्षया गुरुशरीरक थिक। एहि विषयमे ई लौकिक दृष्टान्तो अछि जे यदि एके कार्य लघुशरीरक सामग्री एवं गुरुशरीरक सामग्री दूनू सँ सम्पाद्य रहैत छैक तँ अल्पश्रमसाध्य होएबाक कारणेँ लोक लघुशरीरक सामग्रिअहिसँ ओहि कार्यक उत्पादन करैत अछि, अनेकानेक कारण-सभकेँ व्यापारित करब अधिक श्रमसाध्य होएबाक कारणेँ परित्याग करइत अछि। एहिसँ ई निष्कर्ष भेल जे समानविषयक स्थलमे प्रत्यक्ष-सामग्री सभसँ बलवती थिक, कारण उपमिति एवं शाब्दबोधक सामग्रियो प्रत्यक्ष-सामग्री सँ गुरुशरीरके थिक। किन्तु सभ नियमक अपवाद होइत अछि तेँ दिग्भ्रम एवं मरुमरीचिकाक स्थलमे प्रत्यक्षसँ अनुमितिक सामग्रिए बलवती होइत अछि।

ई तँ भेल समानविषयक स्थलमे ज्ञान-सामग्रीक प्रबल-दुर्बल-भावक विश्लेषण। विभिन्नविषयक स्थलमे सर्वथा एकर विपरीत होइक छैक। एहना स्थलमे गुरुभूत सामग्रिये लघुभूत सामग्रीक बाधक होइत अछि। फलत: विभिन्नविषयक स्थलमे प्रत्यक्ष-सामग्रीसँ अनुमिति-शाब्द-बोधादि सामग्रिये बलवती होइत अछि। एकहि कालमे प्राप्त अभीष्ट दू कार्यक सामग्री-संवलन-दशामे इएह स्वाभाविक थिकैक जे लोक गुरु-सामग्री-सम्पाद्य कार्यकेँ पहिने करए चाहत, हेतु जे यदि लघु सामग्रीसँ सम्पाद्य कार्यकेँ पहिने कए लेत तँ जाहि दोसर कार्यक उत्पत्ति गुरुभूत सामग्रिअहिसँ संभव छैक, तकर उत्पादक सामग्री विघटित भए जएतैक, एहि सभ कारणकेँ पुन: एकत्र करब आपेक्षिक अधिक श्रमसाध्य होएतैक। तेँ विभिन्नविषयक स्थलमे अनुमिति-शाब्दबोधादि सामग्रिए प्रत्यक्ष सामग्रीसँ प्रबल होइत अछि।

एहि प्रकार शाब्दबोधक उत्पादक सामग्री अनुमिति-सामग्रीसँ लघु होएबाक कारणेँ समानविषयक स्थलमे प्रबल एवं विभिन्नविषयक स्थलमे दुर्बल होइत अछि।

अनुमितिक प्रति सिद्धि (जाहि विषयक अनुमिति होएतैक तत्समान-विषयक एवं तदाकारक अन्य निश्चयात्मक ज्ञान) एवं बाधक ज्ञान सेहो प्रतिबन्धक थिक। तें जे जकर प्रतिबन्धक हो, तकर सामग्रिओ ओकर प्रति-बन्धक थिक, एहि न्यायक अनुसार साधक प्रमाण एवं बाधक प्रमाण इहो दूनू अनुमितिक वा अनुमानक बाधक थिक। सिद्धिक एहि प्रतिबन्धकतावश सिद्ध्यभावरूप पक्षताकें प्रतिबन्धकाभावमुद्रया अनुमितिक कारण कहल जाइत अछि।

शाब्दबोधक कारण-समूह मध्य जे 'योग्यता' ज्ञानरूप कारण छैक सेहो बाधाभाव-रूपे थिक, फलतः बाधकाज्ञान वा ओकर सामग्री शाब्दबोधौक प्रतिबन्धक थिक।

ई बाध अनेक प्रकारक अछि जकर चर्चा श्लोकवार्तिकक अनुमान-परिच्छेदमे एवं तत्त्वचिन्तामणिक बाध-प्रकरणमे विस्तारसँ कएल अछि। नैयायिकमूर्द्धन्य स्व० बच्चा झा तत्त्वचिन्तामणिक नवविध बाधक आधार पर व्युत्पत्तिवादक गूढार्थतत्त्वालोकमे 'राजपुरुष'क प्रसङ्गमे अत्यन्त सूक्ष्म विचार कएने छथि।

एक ज्ञानसँ दोसर ज्ञानक बाध दू प्रकारक अछि —(१) उत्पत्ति-निरोध-स्वरूप एवं (२) मिथ्यात्वख्यापन स्वरूप। प्रत्यक्ष-सामग्रीसँ अनुमितिक बाध थिक उत्पत्ति-निरोध-स्वरूप। कारण जे प्रत्यक्ष एवं अनुमानक प्रवृत्ति जाहि एक विषयमे होएतैक, ततए लघुभूत प्रत्यक्ष प्रमाणसँ पहिने तद्विषयक ज्ञान उत्पन्न भए जएतैक, ओ आगाँ अनुमितिक सामग्रिए विघटित भए जएतैक, कारण जे अनुमिति-सामग्रीक अन्तर्गत प्रत्यक्ष-सामग्र्यभाव रूप कारणो छैक अथवा प्रात्यक्षिक सिद्धिक अभावो छैक, तें आगाँ अनुमितिस्वरूप ज्ञान उत्पन्ने नहि भए सकतैक। तें ई बाध थिक उत्पत्ति-निरोधस्वरूप।

किन्तु जतए दोषयुक्त प्रत्यक्ष प्रमाणाभाससँ शुक्तिमे रजतत्वक ज्ञान उत्पन्न होइत छैक एवं तदनन्तर अनुपलब्धि प्रमाणसँ वा प्रत्यक्ष प्रमाणहिसँ 'नेदं रजतम्' एहि आकारक ज्ञान उत्पन्न होइत छैक ततए पूर्ववर्त्ती 'इदं रजतम्' ई ज्ञान जें हेतु पूर्वमे उत्पन्न भए गेल छैक तें ओकर उत्पत्ति तँ निरुद्ध भइए नहि सकइत छैक। एहन स्थितिमे ज्ञान तँ क्रमशः दू उत्पन्न होएतैक केवल परवर्त्ती 'नेदं रजतम्' ई बाधक ज्ञान पूर्ववर्त्ती 'इदं रजतम्' एहि ज्ञानमे प्रमात्वकें विघटित कए देतैक। अर्थात् 'इदं रजतम्' इत्याकारकें

पूर्ववर्त्तिज्ञानमयथार्थम्' एहि आकारक तज्ज्ञानधर्मिक अप्रामाण्यज्ञानकेँ उत्पन्न कए देतैक ।

परवर्त्ती ज्ञानसँ पूर्ववर्त्ती ज्ञानमे मिथ्यात्वख्यापन स्वरूप अप्रामाण्यक ग्रहणक हेतु ई 'क्षणप्रक्रिया' ज्ञातव्य थिक। जाहि क्षणमे बाधक ज्ञानक उत्पति होइत छैक, तकरा द्वितीय क्षणमे प्रतिबध्य पूर्ववर्त्ती ज्ञानक स्मरण होइत छैक, तृतीय क्षणमे दुनू ज्ञानमे विरोधक प्रतीति होइत छैक, चतुर्थ क्षण मे पूर्ववर्त्ती ज्ञानमे अप्रमात्वक प्रतीति होइत छैक ।

जैमिनिसूत्रक तृतीयाध्याक तृतीय पादक 'श्रुति-लिङ्ग-प्रकरण-स्थान-समाख्यानां पारदौर्बल्यमर्थविप्रकर्षात्' एहि १४ म सूत्रसँ जाहि पारदौर्बल्यक चर्चा कएल गेल अछि ततहु श्रुत्यादि प्रमाणक इएह प्रबल-दुर्बलभाव छैक। किन्तु एतए 'सापेक्षता' दौर्बल्यक एवं 'निरपेक्षता' बलवत्वक प्रयोजक होइत छैक। श्रुति (निरपेक्ष शब्द स्वरूप) प्रमाणकेँ अपना बोधक उत्पादनमे लिङ्गादि कोनहु परवर्त्ती प्रमाणक अपेक्षा नहि होइत छैक। तेँ ओहिसँ झटिति अर्थबोध होइत छैक। लिङ्गादि आन सभ प्रमाण अपन पूर्ववर्त्ती प्रमाणक कल्पनाक द्वारहि अर्थवोधक उत्पादन कए सकइत अछि। अर्थात् लिङ्ग प्रमाण श्रुतिक कल्पनाक द्वारा अर्थबोधक जनक थिक। वाक्य प्रमाण लिङ्ग एवं श्रुति एहि दूनूक कल्पना द्वारा अर्थबोधक जनक थिक। एव प्रकरणादि सभ प्रमाण अपन पूर्ववर्त्ती प्रमाण सभक कल्पनाक द्वारा अर्थबोधक उत्पादक थिक। अर्थात् लिङ्ग प्रमाण स्वकीय प्रमाबोधक उत्पादनमे श्रुति-प्रमाण-सापेक्ष अछि। एवं वाक्यकेँ श्रुति एवं लिङ्ग दूनूक अपेक्षा छैक। प्रकरण केँ श्रुति, लिङ्ग एवं वाक्य तीनूक अपेक्षा छैक। एही प्रकारेँ स्थानकेँ श्रुति, लिङ्ग, वाक्य एवं प्रकरण चारूक, एवं समाख्या स्वरूप प्रमाणकेँ स्वकीय बोधक उत्पादनमे श्रुति, लिङ्ग, वाक्य, प्रकरण एवं स्थान पाँचो प्रमाणक अपेक्षा छैक। तेँ श्रुत्यादि प्रमाण सभमे जे पूर्ववर्त्ती अछि से अपना परवर्तीसँ आपेक्षिक स्वतन्त्र अछि, एवं परवर्ती सभ अपन कार्यक उत्पादन मे पूर्ववर्त्ती प्रमाण सभक कल्पनाक अपेक्षा रखइत अछि। तेँ ओ सभ अपना-अपना पूर्ववर्त्ती प्रमाणक अपेक्षेँ दुर्बल होइत अछि। लोकहुमे दृष्ट अछि जे स्वतन्त्र व्यक्तिसँ कार्य-सम्पादन शीघ्र होइत छैक, परतन्त्र व्यक्तिसँ विलम्ब सँ कार्य होइत छैक। जाहि 'पर' क ओ अधीन रहइत अछि, तकरा जखन अपन कार्य उपस्थित भए जएतैक तखन आनक कार्यक ओ सहायक नहि भए सकत।

जैमिनिसूत्रक पाँचम अध्यायमे 'विनियोग-विधि' सहायकक रूपमे आहि (१) श्रुतिक्रम, (२) आर्थक्रम, (३) पाठक्रम, (४) स्थानक्रम, (५) मुख्यक्रम एवं (६) प्रवृत्तिक्रमक निरूपण भेल अछि, एहू सभमे कथित श्रुति प्रभृति प्रमाणहि सभ जकाँ 'पारदौर्बल्य' बुझबाक थिक।

एतद्विपरीत जैमिनिसूत्रक छठम अध्यायक पञ्चमपादक 'पौर्वापर्ये पूर्वदौर्बल्यं प्रकृतिवत्, एहि ५१म सूत्रसँ प्रमाण सभमे पूर्ववर्ती प्रमाण सभ कतए दुर्बल होइत अछि एवं परवर्त्तिए प्रबल होइत अछि, एहि विषयक विचार अछि।

एही प्रकारेँ 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' एहि सूत्रक द्वारा व्याकरणशास्त्रमे पूर्वदौर्बल्य एवं पारप्राबल्यक विचार अछि। बाध्यबाधकभावक अनेकानेक स्थलक उल्लेख तन्त्रवार्तिकमे भट्ट कुमारिल कएने छथि, तकर उल्लेखमात्र कए एहि लेखकेँ समाप्त करइत छी।

प्रत्यक्षेणानुमानं मृगतृष्णादिप्रत्ययाश्च, यथास्वं षड्भिरपि प्रमाणैः प्रमाणाभासः, श्रुत्या स्मृतिः, आप्ताऽविगीतस्मृत्याऽनाप्तविगीतस्मृतिः, अदृष्टार्थया दृष्टार्था, श्रुतिप्रभवया लिङ्गादिप्रभावाऽर्थवादप्रभवा च, स्मृत्याऽप्याचारः, सोऽप्यभियुक्ततराऽऽचारेण, सन्दिग्धमसन्दिग्धेन, दुर्बलाश्रयं बलवदाश्रयेण, उपसंहारस्थमुपक्रमस्थेन, अत्यन्तादृष्टार्थं नियमादृष्टार्थेन, आरादुपकारकत्वं सामवायिकत्वेन, अनेकार्थविधानमेकार्थविधानेन, अनेकशब्दार्थत्वमेकशब्दार्थत्वेन, बहुबाधोऽल्पबाधेन, वेदान्तरोत्पन्नं वेदान्तरविहितेन, परशाखाविहितं स्वशाखाविहितेन, नित्यं नैमित्तिकेन, द्विप्रकारमप्येतत्क्रत्वर्थं पुरुषार्थेन, अनारभ्याधीतं प्रकरणाधीतेन; पौर्वापर्येण विरोधे पूर्वं परेण, प्राकृतं वैकृतेन, प्रयोगवचनाश्रितं चोदकाश्रयेण, निष्प्रयोजनं सप्रयोजनेन, ब्राह्मणक्रमो मन्त्रक्रमेण, देवताश्रयं द्रव्याश्रयेण, पश्चादाम्नातं पूर्वाम्नातेन, अल्पं भूयसा, गौणं मुख्येन, सामान्यविहितं विशेषविहितेन, सावकाशं निरवकाशेन, अङ्गं प्रधानेन, अङ्गधर्मः प्रधानधर्मेण इति ॥

—तन्त्रवार्तिक, अ० ३ पा० ३२ सू० १४, पृ० ८६० आनन्दाश्रम-संस्करण।

# उपसर्गार्थविषये प्राचां विचारः

**आचार्य डॉक्टर श्रीजयमन्तमिश्रः,**

एम. ए., पीएच. डी., व्याकरण-साहित्याचार्यः,

।बिहारविश्वविद्यालयप्राचार्यः, संस्कृत-विभागाध्यक्षश्च ।

**उपसर्ग-शब्दार्थः**— उपगृह्य उपगम्य वा आख्यातम्[1] **अर्थविशेषं सृजतीत्यर्थे** उपपूर्वकात् सृज्धातोः कर्तरि [2]घप्रत्यये **कुत्वे**[3] उपसर्गशब्दो निष्पद्यते । धातु-मुपगृह्य तस्यार्थ-विशेषं प्रकटयति तेनायमुपसर्गः । अथवा उपगम्य धातोः समीपं गत्वा स्वार्थं सृजति बोधयतीत्युपसर्गः ।

**उपसर्गस्य द्योतकत्वं वाचकत्वं वा**—अयं हि उपसर्गो द्योतको वाचको वेति विचारः अतिप्राचीनकालादेव विपश्चितां चेतांसि सन्दोलयति । महर्षिशाक-टायनमते उपसर्गाणां द्योतकत्वम् । तदुक्तं तेन—**न निर्बद्धा उपसर्गा अर्थान्नि-राहुः इति**। शाकटायनमते नामाख्यात-मध्यात् निष्कृष्य बद्धाः पद-वाक्य-रूपेण रचिता उपसर्गा निश्चयेन अर्थान् न प्रतिपादयन्ति । ते हि [4]**नामाख्यात-योस्तु कर्मोपसंयोगद्योतका भवन्ति** । अर्थात् नामाख्यातयोरेव कर्म क्रियारूप-मर्थमाश्रित्य तत्क्रियाश्रयमेव कमपि विशेषम् उपसंयुज्य तदुपसयोगेन द्योतयन्ति । अतः उपसर्गाः कर्मोपसयोगद्योतका एव भवन्ति नतु स्वातन्त्र्येण कमप्यर्थं वाच्य-वृत्त्या अभिदधति । अयमत्राशयः—यथा प्रदीपसंयोगे द्रव्यस्य अभिव्यज्यमानो गुण-विशेषो द्रव्याश्रयएव भवति नतु प्रदीपाश्रयः तथैव प्रहरतात्यादौ प्रहाररूपो-ऽर्थो हरत्याश्रय एव नतु प्रोपसर्गाश्रयः । अतः प्रादय उपसर्गा धातोः पृथगवस्थिता न वाचकाः । शाकटायनस्य तदनुयायिनाञ्च एतत् कथनस्येदमत्र रहस्यम्—

---

१. तत्र नामानि आख्यातजानि (धातुजानि) इतिशाकटायनमते आख्यातेन धातोर्ग्रहणम् । निरुक्तम्, १-४ ।

२. पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण । पाणिनीयसूत्रम्, ३।३।११८।

३. चजोः कु घिण्यतोः ७।३।५२।

४. निरुक्तम्, १-१-४।

५. तत्रैव १-१-४।

यथा पदादपगतानां वर्णानाम् अर्थाभिधायकत्वं नास्ति तथैव धातोः पृथग् विरचितानामुपसर्गाणां साक्षादर्थाभिधाने शक्तिर्नास्ति किन्तु नामाख्यातयुक्तानामेव। एवञ्च प्रादीनामर्थवत्त्वाभावेन "[6]अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' इति प्रातिपदिकत्वाभावेऽपि "[7]कृत्तद्धितसमासाश्चे'ति सूत्रे चकारग्रहणात् तेषां प्रातिपदिकत्वेन पदत्वादिकं सम्पद्यते।

महर्षिशाकटायन-मत-विपरीतं स्वमतं प्रतिपादयता महर्षिगार्ग्येण "[8]उच्चावचाः पदार्था भवन्ती'ति समुद्घोषयाञ्चक्रे। अर्थात् नामाख्याताभ्यां वियुक्तानामपि प्रादीनामुपसर्गाणां बहुप्रकारा अर्था भवन्ति। एतावता स्वतन्त्रा अप्युपसर्गा अर्थवाचका भवन्तीति तत्तात्पर्यम्।

यत्तु वर्णवत् पृथगवस्थिता उपसर्गा अनर्थका इति तन्न, मृदोऽवयवेषु मृण्मयभाण्डारम्भशक्तिरिव वर्णेष्वपि सामान्याभिधानशक्तिस्वीकारात्। यथा मृदोऽवयवानां घटारम्भशक्तिर्विद्यमानापि घटे एवाभिव्यज्यते तथैव वर्णस्था सा त्वभिधानशक्तिः पदत्वेन समुदितानामर्थविशेषेऽवतिष्ठते। अन्यथा अनर्थकैर्वर्णैरारभ्यमाणं पदमपि अनर्थकमेव स्यात् पदैश्च वाक्यं वाक्यैश्च शास्त्रमनर्थकं भवेदिति वर्णा यथा अर्थवन्तः तथैव प्रादयोऽपि अर्थवन्तः।

यत् पुनरेतदुक्तम् प्रदीपवत् अनर्थका उपसर्गा इति तदपि न समीचीनम्। प्रकाशाख्येन स्वेनार्थेन प्रदीपोऽपि अर्थवानेव। यथाहि अर्थवत्त्वे सत्यपि प्रकाश्यमर्थम् आधारभूतं घटादि प्रत्याययन् स्वां प्रकाशनशक्तिमभिव्यनक्ति तथैव उपसर्गा अपि अर्थवन्तोऽपि सन्तः अनेकप्रकारां स्वार्थाभिधानशक्तिं विद्यमानामपि स्वार्थाभिधानशक्त्याधारभूते नामाख्याते प्रत्याय्य अभिव्यञ्जयन्ति।

यदपि उपसर्गसंयोगे सति प्रतीयमानोऽर्थो नामाख्यातयोरेव, न तूपसर्गस्य, तदपि न युक्तियुक्तम्। यथा लोके यो यत्र समर्थो भवति स तत्रान्यं न समपेक्षते। नामाख्याते तु अर्थ-विशेषं प्रति उपसर्गसंयोगमपेक्षेते। अत इदं सिद्धं भवति यत् क्रियाविशेषः उपसर्गस्यार्थः, क्रियासामान्यञ्च आख्यातस्य। अतो महर्षिगार्ग्यमते उपसर्गेषु वाचकतासम्बन्धेन योहि पदार्थो विद्यते तं पदार्थमिमे उपसर्गाः पृथगपि सन्तः प्रतिपादयन्ति। अत उपसर्गाः वाचका[9] एव।

---

६. पाणिनिः, १।२।४५।
७. तत्रैव, १।२।४६।  ८. निरुक्तम् १-१-४।
९. तद् य एषु पदार्थः प्राहुरिमे तम्। निरुक्तम् १-१-४।
एवमुच्चावचानर्थान् प्राहुस्त उपेक्षितव्याः। तत्रैव १-१-५।

**महर्षिपाणिनिमतम्**—महर्षिपाणिनिस्तु क्रियायुक्तानामेव[10] प्रादीनामुपसर्गत्वं स्वीकुर्वाणः क्रियावियुक्तानां प्रादीनान्तु उपसर्गत्वमेव न मनुते। एवञ्च प्रकृते महर्षिपाणिनिमते सामान्येन प्रादीनां वाचकत्वं द्योतकत्वं वेति विचारः।

प्रपरादीनां पदत्वं तु निर्विवादम्। पदत्वं च प्रातिपदिकसंज्ञायां सुबुत्पत्तौ सत्यामेव। प्रातिपदिकत्वञ्च अर्थवत्त्वे सत्येव। अतः प्रादीनामर्थवत्त्वं सिद्ध्यति। कृत्तद्धितसमासाश्चेति सूत्रेऽपि अर्थवदनुवृत्त्या तत्रापि अर्थवत एव प्रातिपदिकत्वम्।

कर्मप्रवचनीयसंज्ञाविधानप्रसङ्गे "अभिपरी अनर्थकौ"[11] इत्येतेन निरर्थकयोः अभिपर्योः कर्मप्रवचनीयत्वेन उपसर्गरूपयोस्तयोः सार्थकत्वं सिद्ध्यति। एतत्प्रसङ्गे महर्षेरन्यान्यपि सूत्राणि प्रादीनां वाचकत्वं प्रतिपादयन्ति।

"अपपरी वर्जने",[12] "आङ् मर्यादावचने",[13] "आङ् मर्यादाभिविध्योः",[14] "प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः"[15] इत्यादिषु अपपर्योर्वर्जनार्थत्वम्, आङो मर्यादाऽभिविधिवाचकत्वम्, प्रतेः प्रतिनिधिप्रतिदानबोधकत्वं सुस्पष्टमेव। अत एव 'अप हरेः परि हरेः संसारः' इत्यादिषु वर्जनार्थः, 'आ मुक्तेः संसारः' इत्यत्र मर्यादार्थः, 'आ सकलाद् ब्रह्म' इत्यत्र अभिविध्यर्थः, 'प्रद्युम्नः कृष्णात् प्रति' इत्यत्र प्रतिनिध्यर्थश्च क्रियापदमन्तरापि तत्तद्बोधविषयतां प्राप्नुवन्ति। एवमेव "सुप् प्रतिना मात्रार्थे",[16] "अक्षशलाकासंख्याः परिणा",[17] "आङ् मर्यादाभिविध्योः"[18] इत्यादिषु मात्रार्थ-लेशार्थवाचकेन प्रतिना, विपरीतार्थप्रतिपादकेन परिणा, मर्यादाभिविधिबोधकेन आङा च सह समासविधानात् प्रतिपर्यादीनां वाचकत्वं सुस्पष्टमेव।

> उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।
> प्रहाराहारसंहारविहारपरिहारवत्॥

इति कथनेनापि उपसर्गस्य शक्तिमत्त्वं ज्ञायते। अन्यथा उपसर्गद्वारा

---

१०. उपसर्गाः क्रियायोगे। पा० सूत्रम् १।४।५९।
११. अष्टाध्यायी १।४।९३। १२. तत्रैव १।४।८८।
१३. तत्रैव १।४।८९। १४. तत्रैव २।१।१३।
१५. तत्रैव १।४।९२। १६. तत्रैव २।१।९।
१७. तत्रैव २।१।१०। १८. तत्रैव २।१।१३।

धात्वर्थस्य बलपूर्वकम् अन्यस्मिन्नर्थे (स्वकीयार्थे, उपसर्गार्थे इति यावत्) आनयनं न सम्भाव्यते। एवं हि महर्षिशाकटायनमते उपसर्गाणां द्योतकत्वेऽपि महर्षिगार्ग्यस्य भगवतः पाणिनेश्च मते तेषां वाचकत्वमेवेति।

तत्रायमुपसंहार :—महर्षिशाकटायनमते प्रादीनामुपसर्गाणां द्योतकत्वे इदमत्ररहस्यम्—यतो नामानि आख्यातजानि अतस्तानि अर्थवन्ति, प्राद्युपसर्गास्तु नाख्यातजा अतस्ते निरर्थका द्योतका एव। महर्षि-गार्ग्य-पाणिनिमते तु न सर्वाणि नामानि आख्यातजानि। कानिचिद् व्युत्पन्नानि कानिचिच्च अव्युत्पन्नानि। एवञ्च यथा घटपटादीनि अव्युत्पन्नान्यपि नामानि अर्थवन्ति तथैव अव्युत्पन्ना अपि प्रादयः अर्थवन्त इतिशम्।

*स्वर्गीय जीवनाथ झा कृत*

# दोषाकर

सम्पादक डॉ० विश्वनाथ झा,
प्राध्यापक, कल्याणी मिथिला-संस्कृत महाविद्यालय, दीप

## प्रथम प्रकाश

दोषक लक्षण ओ उदाहरण रचबाक अबल मति की न अफल।
तँओ साहस ई सेवावश अछि एक शरण दोषज्ञ - चरण॥

काव्यगत मुख्य दोषक अपकर्ष जाहिसँ हो से काव्यदोष कहबैत अछि। यद्यपि मुख्य रसे थिक, किन्तु तदाश्रयहेतुक वाच्य (अर्थ) आओर वाचक (शब्द)हुमे दोषक व्यवहार कएल जाइत अछि। फलतः ई दोष ४ प्रकारक अछि—पददोष, पदांशदोष, वाक्यदोष ओ रसदोष। प्रथम प्रकाशमे पददोष कहल जाइत अछि।

१. श्रुतिकटुता—कोमल काव्यमे समावेशित कठोर अक्षर सहृदयक कानमे दुःखावह होइत अछि। दुःश्रवत्व एकरे नामान्तर थिक। उदाहरण—

शत्रुहुपर मात्सर्य्य असौहार्द मित्रहुक प्रति।
राखथि जे धनिवर्य्य क्लेशद जीवन तनिक अति॥
परराष्ट्रहुमे क्यो न हुनक तुल्य सद्रुचि-वदन।
तनुश्री-म्लापित-सोन एक स्रष्टृ कौशल-सदन॥

२. च्युतसंस्कारता—च्युत = हीन छंक संस्कार = व्याकरण नियम जाहिमे। यथा—

स्वयंवर-सभा बीच बाण-रावण मध्यमे।
मत्तप्रलाप सुनिकें हँसलीह जनावली॥

एहि ठाम हँसलीह ई पद अशुद्ध, हँसल ई पद शुद्ध।

३. अप्रयुक्तता—लोकमे प्रसिद्धि रहितहुँ कविसँ अनादृत शब्दक प्रयोगमे ई दोष। यथा—

हे हजूर, सरकारक हुकुमक के काए सकइछ त्याग।
चाहए जे कल्याण अपन ओ परिवारक अनुराग।

एहि ठाम हजूर, सरकार, हुकुम ई तीनू शब्द लोकमे व्यवहृत भेनहु विद्यापति प्रभृति सत्कविसँ आदृत नहि अछि।

४. असमर्थता—कोषादिमे तदर्थपुरस्कारेण पठितो रहए किन्तु लोकमे तदर्थबोधिका शक्ति नहि रहैक एहन पदक सद्भावमे ई दोष। यथा—

क्यो रहओ सतत कापट्यलीन। गान्धीक हृदय मात्सर्य्यहीन ॥
हुनका लग गरलो अमृत रूप। तुल्ये आदृत छल रङ्क भूप ॥

एहि ठाम मात्सर्य्य शब्द द्वेष अर्थमे प्रयुक्त अछि किन्तु लोकमे दया अर्थहिमे व्यवहृत होइत अछि, द्वेषमे नहि।

५. निहतार्थता—उभयार्थक शब्द अप्रसिद्ध अर्थमे प्रयुक्त भेलासँ ई दोष। यथा—

सबसँ ऊपर नाक अछि तेहिपर मोदी एक।
सार त्रिलोकक मुख्क जे राखथि सब खन टेक ॥

सबसँ ऊपर नाक=स्वर्ग अछि, ताहिपर एक=प्रधान, मोदी=प्रसन्न, ओ त्रिलोकक सार=श्रेष्ठ, जे सतत देवताक टेक=मर्यादा रखैत छथि, से छथि। एहि ठाम नाक, मोदी ओ सार क्रमहि नासिका, हलुआइ ओ श्याल एही अर्थमे मिथिलाभाषामे प्रसिद्ध अछि, स्वर्ग, प्रीतिमान् ओ श्रेष्ठ अर्थमे नहि।

६. अनुचितार्थता—विवक्षितार्थतिरस्कारक धर्मक व्यंजक अर्थ छैक जकर। यथा—

अल्पशयन कुक्कुरमन होइछ बूढ़।
करइछ साहस राघव-मन अति मूढ़ ॥

जेना कुकुरक नीन पातर होइछ तहिना बूढ़हुक ओ जेना राम साहस (स्त्री-त्याग) कएलन्हि तहिना अत्यन्त मूर्ख (कोनहु समयमे) कए जाइत अछि। एहि ठाम कुकुरक उपमासँ वृद्धमे अनादरणीयता ओ रामक उपमासँ मूढ़मे आदरणीयता रूप अनुचित अर्थ व्यंग्य रूपसँ प्रतीत होइत विवक्षितार्थतिरस्कारक धर्मक भान करा दैत अछि।

७. निरर्थकता—छन्दपूर्ति मात्र प्रयोजन वाला शब्दक प्रयोगमे ई दोष होइत अछि। यथा—

व्यास - वाल्मीकि - मनुसँ राम-रावण-युद्धमे।
सर्व युद्धक लेखासँ जे किने से अपूर्वता ॥

एतए जे किने से ई पद निरर्थक।

८. अवाचकता—विवक्षितार्थक अनभिधायक शब्दक प्रयोगमे ई दोष। यथा—

अङ्गरेज षडयन्त्र कए भारत खण्ड करौल।
आपसमे लड़बाक पथ चलबहु काल धरौल॥

एहि ठाम षडयन्त्र पद कूटनीतिक वाचक नहि थिक, किन्तु सम्प्रति अन्धाधुन्ध व्यवहृत होइछ।

९. अश्लीलता—श्लील = शोभाकारक पद, ताहिसँ हीन अश्लील। यथा —

श्रेष्ठक पादक प्रेम करथि जे से भगशाली जनमे।
हुनक महान् प्रयाणहुमे अछि शुभ जन-रहितो वनमे॥

जे श्रेष्ठ व्यक्तिक चरणक प्रेम करैत छथि से मनुष्यमे ऐश्वर्यशाली होइत छथि। हुनक दूरक यात्रोमे निर्जनो वनमे महान शुभ हुनका रहैत छन्हि। एहि ठाम पादक अपान-वायुत्याग, भगक जननेद्रिय एवं महान् प्रयाणक मरण अर्थ अभिव्यक्त भेने क्रमशः व्रीडा, जुगुप्सा ओ अमङ्गल रूप अश्लीलता।

१०. सन्दिग्धता—तात्पर्य्यसन्देहविषयीभूत अर्थद्वयक उपस्थापक पदक समावेशमे ई दोष। यथा—

अम्बर मणि-कान्तिक सन देखि प्रसन्न।
मुनि - कुमार लए फिरला भिक्षा - अन्न॥

मणिक कान्ति-सन अम्बर = आकाशकेँ प्रसन्न देखि भिक्षान्न लए मुनिबालक फिरलाह ई अर्थ थिक वा अम्बर-मणि = सूर्य तनिक तेज-सन प्रसन्न मुनिकेँ देखि कुमार फिरलाह, अथवा प्रसन्न मुनि-कुमारकेँ देखि (केओ जन) फिरलाह ई अर्थ थिक ? कविक तात्पर्यमे सन्देह।

११. अप्रतीतता—शास्त्रहिमे प्रसिद्ध पदक उपादानमे ई दोष। यथा—

हमर पुत्र भू धातु सदृश छथि बनल अकर्मक
नहि हो जनिका कोनहु कालमे प्रत्यय कर्मक।
पछुनगुआ छथि भेल बहुच् सम सतत अधर्मक
राखथि नहि निज ज्ञान लुप्त प्रत्यय सम शर्मक।

जेना पाणिनीय व्याकरणमे भू धातु अकर्मक अछि तहिना हमर पुत्र अकर्मक = अकार्यक छथि। जनिका (भू धातुकेँ तथा हमर पुत्रकेँ) कर्मक प्रत्यय (कर्मवाच्य प्रत्यय ओ सत्कर्मक ऊपर विश्वास) नहि होइत छन्हि। जेना व्याकरणमे बहुच् प्रत्यय पाछँहिमे लगैछ (बहुपटवः इत्यादिमे) तेना हमर

पुत्र अधर्मक पकुलगुआ भेल छथि । ओ जेना लुप्त प्रत्यय व्याकरणमे क्विप्, विच् आदि सर्वापहारहेतुक अपन ज्ञान नहि रखैछ तहिना हमर पुत्र शर्म=सुखक ज्ञान नहि रखैछ । एहि ठाम पाणिनीय व्याकरणक ज्ञाता मात्र भू धातु, अकर्मक, कर्मक प्रत्यय, बहुच् प्रत्यय ओ लुप्त प्रत्यय एहि पाँचो पदक अर्थ सम्यक्तया बूझि सकैत छथि ।

१२. ग्राम्यता—जाहि शब्दक प्रयोग सभ्य लोक नहि करैछ तकर विन्यासमे ई दोष । यथा—

तारक फल-सन चुच्ची उक्खरि-सन छन्हि पोन ।
धन्य थिकी से बुच्ची हरथि ककर नहि मोन ॥

एतए चुच्ची ओ पोन शब्द असभ्यमात्रोच्चारितत्वात् ग्राम्य थिक ।

१३. नेयार्थता—नेय (रूढ़ि वा प्रयोजनक विना निषिद्ध लक्षणासँ आनेय) छैक अर्थ जकर । यथा —

मणिधारिणिमे सम्प्रति दीर्घा त्रिदशावलीक सन्ततिकेँ ।
अपमानक पालासँ गलइत लखि नीच आनन्दित ॥

मणिधारिणी=वसुधा मे दीर्घा= अनन्ता (पृथ्वी)क त्रिदश=देव अर्थात् ब्राह्मण-समूहक सन्तानकेँ । यथा वा—

चरण दलित कए वह्निकेँ रविकेँ थापर मारि ।
शङ्कर मिश्रक तेज अछि भूतलमे संचारि ॥

एहि ठाम चरणदलित कए ओ थापर मारि एहि दूहू पदसँ लक्षणा द्वारा "जीति" ई अर्थ बुझल जाइत अछि । ई लक्षणा रूढ़ि ओ प्रयोजनक बिनहि कएल गेल अछि ।

१४. क्लिष्टता—अर्थज्ञानमे विलम्बकारक पद रहने ई दोष । यथा—

अमृतधारक सरणि-तरणिक किरणसँ मिलि गेल ।
शत्रु तेजक गोत्रनायक - गह्वराश्रित भेल ॥

अमृत जल, तकर धारणकर्त्ता जलधर (मेघ), तकर सरणि (मार्ग) आकाश, से सूर्य-किरणसँ मिलि गेल अर्थात् सूर्योदय भेल; ओ तेजक शत्रु अन्धकार गोत्रनायक (हिमालय)क गुहामे प्रविष्ट भए गेल अर्थात् अन्धकार हँटि गेल । ई अर्थ क्लिष्ट अछि ।

१५. अविमृष्टविधेयांशता—अविमृष्ट=प्राधान्येन अनिर्दिष्ट विधेयांश छैक जाहिमे । यथा—

जीवित रिपुदल रहि गेल जखन नहि भेल अपाण्डव भूमण्डल ई की ? समस्त

अरिमत्तहस्तिमस्तकभेदनप्रख्यात शक्ति-मिथ्याभिमान तरुआरि हमर।
एहि ठाम मिथ्यात्वपर विधेयता छैक से समासान्तर्गत रहबाक कारणें गौण भए गेल अछि। यथा वा—

तनु छन्हि अनलस बुद्धि अकुंठित।
पर-उपकारक हेतु हृदय घन कहिओ नहि जे शोक-विकल-मन।

एहि ठाम अनलस ओ अकुण्ठित मे निषेधपर विधेयता छैक तें पर्युदास उचित नहि। एवं शोक-विकल-मन एहि ठाम विकलाभाव विधेय छैक जे समासमे सम्बद्ध भेने अप्रधानतया प्रतीत होइछ।

१६. विरुद्धमतिकारिता—प्रस्तुतार्थविषयक बुद्धिक प्रतिबन्धक अप्रतुतार्थ-बुद्धिजनक पदक सत्तामे ई दोष। यथा—

के जन सकइछ लघुओ छति पहुँचाय।
अम्बारमण जखन छथि हमर सहाय॥

एहि ठाम अम्बा-रमण ई पद मातृजार एहि विरुद्ध अर्थक बुद्धि-उत्पादन द्वारा दुष्ट थिक। यथा वा—

ओ चन्द्रमुखी अत्यन्त दुखी नित नहि विशेष हीनाङ्ग-क्लेश।
अपनेक चरण टा राखि शरण आशाक प्रबलसँ जीबि रहल॥

हीनाङ्ग=अनङ्ग। हीन गलित जे अङ्ग (महारोगसँ) एहनो विरुद्ध अर्थक भान होइछ।

## द्वितीय प्रकाश

१. वर्णप्रतिकूलता—रसक प्रतिकूल अक्षरक निवेश। यथा—

नयन-युगल अति लाल कम्प कलेवरमे असम।
मुनि रहनहुँ विकराल परशुराम की अपर यम॥

अर्थ स्पष्ट। रौद्र रसक अनुकूल कठोर वर्णक समावेश नहि कए तत्प्रतिकूल कोमल वर्णक संघटना दोषावह। कठोर वर्णक विन्याससँ निर्दुष्ट, यथा—

नेत्र भयप्रद रक्त थर-थर कम्प शरीरमे।
ऋषि रहनहु सुव्यक्त क्रोधमूर्ति भार्गव थिका॥

२. हतवृत्तता—छन्दोभंग तीन प्रकारक होइत अछि—(i) छन्दोलक्षण-हीन, (ii) लक्षण घटनहु अश्रव्य, ओ (iii) रसक अननुगुण। आद्य यथा—

सहृदय हृदयाकर्षक अद्भुत यन्त्र।
कबिता कठोरो पाथर - द्रावक मन्त्र॥

ई बरवा छन्द थिक; प्रथम ओ तृतीय चरणमे १५ मात्रा रहब अनिवार्य। कबिताक स्थानमे काव्य रखने दोष नहि। तृतीय यथा—

सुनल शास्त्रपुराण - कथावली बुझल थीक जगत् क्षणभंगुर।
वयस भेल पचासहुँसँ पर तदपि लोभ न छोड़ए चित्तकेँ॥

एहि ठाम पादान्तस्थं विकल्पेन एहि नियमानुसार द्वितीय ओ तृतीय चरणक अन्तमे लघु दोषावह नहि रहनहुँ पढ़बामे अश्रव्य अछि। तृतीय यथा—

धर्म सनातन केर सुरक्षा आब अहाँ-सन के अछि कर्त्ता।
हा मिथिलेश्वर मैथिल नेता वीर रमेश्वर भूप कहाँ छी॥

दोधक छन्द करुण रसक प्रतिकूल थिक। आकरमे एहि रसक अनुकूल मन्दाक्रान्ता, पुष्पिताग्रा, वियोगिनी, मालिनी तथा द्रुतविलम्बित प्रभृतिए मानल गेल अछि।

३. न्यूनपदता—वाचक पदक अभावमे ई दोष। यथा—

कएल तीर्थ सेवन, पारायण सुनल पुराणक श्रोत्रिय - मुखसँ।
व्यर्थ बूझि पड़इत अछि सम्प्रति वंचित छी बूढ़हुमे सुखसँ॥

एहिठाम हम एहि वाचक पदक अभाव दोषावह।

४. अधिकपदता—अविवक्षितार्थक पदक प्रयोगमे ई दोष। यथा—

दुहू ओठ अति लाल बिराजय पाकल बिम्ब स्वरूप समान।
हेमाकार पीन सुन्दर तनु उपमा आँखिक अछि नहि आन॥

एहिठाम स्वरूप आकार ई दुहू पद अधिक अछि, हेतु जे बिनु रहनहु विवक्षितार्थबोधमे कोनो बाधा नहि। यथा वा—

एक अहीँ रक्षक छी, दोसर नहि हे दयालु नारायण!
छोड़ि जलद चातककेँ जीवनदाता कहू अछि के॥

एहिमे दोसर नहि ई पद अधिक।

५. कथितपदता—उक्त पदक पुनरुपादानमे ई दोष। यथा—

हम सत्य अहिंसा - देव - पुजारी।
छी हम नित जनता - उपकृतिकारी।

एहिठाम हम पद पुनरुक्त। छी नित्य तथा जन-सेवाकारी कहने दोष नहि।

६. पतत्प्रकर्षता—जाहि वाक्यमे शब्दोत्कर्ष क्रमशः पतनोन्मुख छैक यथा—

उद्दण्डचण्डरिपुमण्डलखण्डकारी हे चन्द्रहास कर वास हुताशतुल्य।
संग्राममे हम अराम करैत छी जेँ आनन्द हो हमर सैन्य-समूह आइ॥

चण्ड = क्रोधी; कर वास = वास कर (हाथमे); अराम = रामहीन। एहिठाम क्रमशः शब्दविन्यास पतित छैक।

७. समाप्तपुनरात्तता—विवक्षितार्थप्रत्यायक वाक्यक समाप्तिक बाद विशेषणक पुनरुपादनमे ई दोष। यथा—

शङ्ख - चक्र-गदा-पद्मधारी गोपालनन्दन।
रक्षाकर्ता अइकेर होथु संसारनायक॥

एहिमे संसारनायक पदक उपादान दोषाधायक। यामिनिवासर कहब उचित।

८. अर्धान्तरैकपदता—जाहि पद्यमे प्रथमार्धगत वाक्य द्वितीयार्धगत एक पदमें पूर्ण हो। यथा—

जनिक चित्त शीतल सदा रहए न ततए कदापि।
क्रोध, काँच जारन उपर आगि न सकइछ व्यापि॥

एहिठाम पूर्वार्धहिमे क्रोध पदक समावेश उचित थिक। रहए पदक स्थानमे क्रोध ओ क्रोध पदक स्थानमे बहुत कहने दोष नहि।

९. अभवन्मतयोगता—नहि होइत छैक इष्ट सम्बन्ध जाहिमे, अर्थात् कविकें जाहि पदक सम्बन्ध जाहि पदसँ अभिमत रहन्हि से कोनो कारणें जाहि ठाम नहि भए रहल छैक ताहि ठाम एहि दोषक सद्भाव। ई दोष विभक्तिभेदसँ, न्यूनतादिसँ, आकांक्षाविरहसँ, वाच्य-व्यञ्जयक विवक्षित योगाभावसँ आओर समासप्रविष्टतया अभिमत योगाभावसँ होइत अछि। ताहिमे विभक्तिभेदक उदाहरण—

क्रोध डेराएल जनिकासँ रहइत छल कोशहु दूर
सत्य अहिंसा जनिकामे छल पओने आशक पूर।
जेहि गान्धीक विश्व भरि सब जन जनइछ पावन नाम
भारत केर अभाग्य हेतु से गमन कएल सुरधाम॥

एहि ठाम गान्धीक एहि षष्ठ्यन्त पदक जनिकासँ ओ जनिकामे एहि दुनू पदमे सम्बन्ध कविक इष्ट छन्हि, किन्तु से उद्देश्य दलमे प्रविष्ट रहबाक तथा भिन्न विभक्त्यन्त रहबाक कारणें नहि भए रहल अछि, गुणानां च परार्थत्वादसम्बन्धः समत्वात् स्यात् एहि न्यायसँ। विधेय तत्-शब्दक संग गान्धी पदक उपादान रहने दोष नहि। यथा—

जनिक विश्व भरि सबजन जनइछ पावन सुललित नाम
भारत केर अभाग्य हेतु से गान्धी गत हरिधाम।

१०. अनभिहितवाच्यता—यथा—

हमर कोन अपराधलेशके देखि कोप मनमे रखैत छी।
स्वप्नमे न कहिओ विरुद्धता भेल सत्य हम ई कहैत छी॥

एहिठाम लेशहु, स्वप्नहु एहि अवश्य वक्तव्यक अनुक्ति दोषावह।

११. अस्थानस्थपदता—अयोग्य स्थानमे पदक समावेश दोषावह थिक। यथा—

पाओल ततए सकल राज्यश्री राम ऋष्यमूकके कएलन्हि पदरजपूत।
भाग्यवानके विपिनहुमे अभिराम वस्तु भेटि जाइछ बिनु श्रम ओ दूत॥

एहि ठाम ततए पदक प्रयोग ऋष्यमूक पदक पश्चात् करब उचित।

१२. अस्थानस्थसमासता—यथा—

रे गर्वी, चुप; एकहि शरसँ एखनहि कए देबौ भूमिलीन।
कटु उक्ति असह भए गेल आब शिशु जानि एखन तक क्षमा कएल।
करजनी-तुल्य अति रक्त नयन थरथर कम्पित सम्पूर्ण अङ्ग
कौटिल्यपूर्ण - भ्रुकुटी - विक्षेपण - भयद - दृष्टि बजला भार्गव।

एहिठाम क्रोधी परशुरामक उक्तिमे ओजोगुणाभिव्यञ्जक दीर्घ समास नहि कए कविक उक्तिमे कएल।

१३. संकीर्णता—वाक्यान्तरमे अन्यवाक्यीय पदक प्रयोग भेने ई दोष। यथा—

बाजू सब दिन चित्त अहिंसा सत्य हँटाउ हृदयसँ राखू।
प्रतिक्रियात्मक भावन हिन्दू, आनन्दक रस अविरत चाखू॥

हे हिन्दू, सब दिन सत्य बाजू, चित्तमे अहिंसा राखू, प्रतिक्रियात्मक भावना हृदयसँ हँटाउ।

१४. गर्भितता—वाक्यान्तरमे अन्य वाक्यक प्रवेश भेने ई दोष। यथा—

गुरुक वाक्यमणिके हृदयस्थित, सत्य कहै छी शिशु-समुदाय।
नहि कएने होएतीह अहाँपर सरस्वती कहिओ न सहाय॥†

एहि ठाम सत्य कहै छी शिशु-समुदाय ई वाक्य गुरुक वाक्यमणिके हृदयस्थित नहि कएने इत्यादि अन्य वाक्यमे प्रविष्ट अछि; तेँ गर्भितता दोष भेल।

---

† दुर्भाग्यवश ई ग्रन्थ एतबे धरि उपलब्ध भेल। एहिसँ आगाँ लेखक चारि दोषक केवल नाम्ना निर्देश कएने छथि। आगाँक सकल पंक्ति सम्पादकक थिक।

१५. प्रसिद्धिहतता—कविसमयख्यात वस्तुक विरुद्ध वर्णन कएने ई दोष। यथा—

गिदरक बाजब कुक्कुर सुनिकें गरजि बुझाओल निज बल तत्क्षण।
केहरि सुनि पुनि मेघक ध्वनिकें झपटि कहल प्रतिशब्द विलक्षण॥

एहि ठाम गिदरक भूकल प्रसिद्ध, बाजब नहि; कुकुरक भूकब प्रसिद्ध, गरजब नहि। मेघक गर्जब प्रसिद्ध, ध्वनि करब नहि। सिंहक गर्जब प्रसिद्ध, कहब नहि। अत प्रसिद्धिहतता दोष।

१६. भग्नप्रक्रमता—भग्न = नष्ट छैक प्रक्रम = प्रस्ताव जाहि वाक्यमे तनए ई दोष। यथा—

भाग्यक आज्ञासँ निशिनायक अस्त गेलाह रातिओ बीतल।
कुलकामिनिक दशा अनुरूपे समय भेल परकीयो चेतल।

एहि ठाम निशिनायक गेलाह, रातिओ गेल ई क्रमानुरूप होइत, रातिओ बीतल ई प्रक्रमभग भेल।

१७. अक्रमता—जाहि ठाम एक क्रमबद्ध शब्दक प्रयोग एक ठाम क्रमिक रूपें नहि कए यत्र-तत्र कएल जाए ततए ई दोष होइत अछि। यथा—

अपनेक कृपासँ शत्रु-मित्र हित-अहित जगतमे एक रीति।
जल पिबए सग हे प्रभु अज-हरि, हय-महिष परस्पर राखि प्रीति॥

एतए शत्रु-मित्र एक ठाम अछि ओ अज-हरि दोसर ठाम, ओ जगतमे इत्यादि शब्द तकर क्रम तोड़ैत अछि।

१९ अमतपरार्थता—अमत = प्रकृतविरुद्ध (प्राकरणिक रसक विरुद्ध रग-व्यञ्जक) छैक परार्थ = दोसर अर्थ जतए ततए ई दोष। यथा—

रामकामशरदु:सहताड़ित वक्षस्थलमे निशाचरी ओ।
गन्धयुक्त शोणित चाननसँ लिप्त प्राणपतिवास गेली ओ॥

रामक द्वारा मारलि गेलि ताडकाक वर्णन थिक। राम कामदेव सदृश, अथवा राम रूपी कामदेवक असह्य बाणसँ हृदयमे अथवा मनमे ताड़ित। अतएव गन्धयुक्त शोणितरूपी रक्तचन्दनसँ अगराग कएने ओ निशाचरी ताडका ओ अभिसारिका प्राणपतिक = यमराजक ओ स्वामीक वासगृह ओ सम्भोग-स्थान गेलीह। एहि ठाम रूप्यमाण अप्रकृत अर्थ प्रकृत बीभत्सरसक विरोधी शृगाररसक व्यंजन करैत अछि तें अमतपरार्थता नामक दोष भेल।]

●

## 'रमेश्वरप्रतापोदय' के कुछ पद्य

स्व० प० जीवनाथ झा

नव्याः काव्यबिनोदिनो नवजनप्रेक्षापरीक्षैषिणो
वृद्धा ऋद्धयशस्विनोऽखिलशिशोः शिक्षाविधौ तत्पराः ॥
एकान्तप्रियताभृतः सवयसः श्लोकादरा बालकाः
सर्वानुग्रहपात्रता तदधुना सम्भाव्यतेऽस्यां कृतौ ॥

यह मेरा ग्रन्थ वृद्ध और नवीन विद्वान् तथा मेरे मित्र छात्रवृन्द और मुझसे न्यून वयस्वाले छात्रगण, इन सबों का अनुग्रहपात्र होगा, क्योंकि वृद्ध लोग, जिनको परिपूर्ण यश हो चुका है, मुझको शिक्षा देने के लिए इसे अवश्य देखेंगे और नवीन पण्डितवर्ग, जो काव्य बनाने में और देखने में लगे हुए हैं, मेरी बुद्धि को जानने के लिए, तथा मेरे समान छात्रगण मुझपर प्रेम से, और श्लोकमात्र से प्रसन्न होनेवाले बच्चे छात्रगण श्लोक-स्नेह से इसको अवश्यमेव पढ़ेंगे। संस्कृत-साहित्य के जाननेवाले समझेंगे कि इसमें किस ढंग से काव्यलिङ्ग अलङ्कार समाविष्ट किया गया है। और इस पद्य में बहुत व्यङ्ग्य अर्थ भरे हुए हैं। वृद्धों के प्रति विनय करना उचित है इसलिए उनके प्रति जो कहा गया है उससे व्यक्त होता है कि यशःप्राप्त वृद्ध लोग भी इसको देखकर पसिन्द ही करेंगे। दोष लगाने वालों का मौका नहीं है और नवीन पण्डित लोग समीक्षा करेंगे; वे यदि असूया पूर्वक दोषोद्भावन करेंगे तो इसका मैं समाधान करूंगा। मेरे वयसवाले छात्र भी मुझसे अगत्या स्नेह ही प्रकाश कर रहे हैं। वे लोग तो भय से दोष लगा ही नहीं सकते। अत्यन्त छोटे को तो दोष-ज्ञान नहीं है, वे केवल अनुप्रासयुक्त श्लोक से प्रसन्न होने वाले हैं। इसमें अनुप्रास भरा ही है। इसका मंगलश्लोक कैसा है, देखिये—

भूदेवावनतत्परोऽनवरतं सत्वप्रधानः श्रिया
युक्तः पालितधर्म्मजातविजयो मर्त्योत्तमैर्वन्दितः ॥
प्रद्युम्नप्रियदर्शनो द्विजवरप्रीतो विनीतः सदा
राधासक्तमना रामेश्वरविभूर्जीयात्सुभद्राऽदृतः ॥

भूदेवावनतत्परोऽनवरत—वराहाद्यवतार द्वारा पृथिवीका उद्धारणरूप और दोनों के दुष्ट दैत्यदलनादिरूप पालन में सतत निरत राजपक्ष में—भूदेव—

ब्राह्मण, उसके भजन में अनवरत तत्पर। सत्वप्रधानः—सत्वगुणवान्, राजपक्ष में महत्त्वशाली। श्रिया युक्तः—लक्ष्मी से युक्त, राजपक्ष में—सम्पत्ति अथवा शोभा से युक्त। पालितधर्म्मजातविजयः—धर्म्मजात = युधिष्ठिर और विजय = अर्जुन इन दोनों की रक्षा की है जिसने, राजपक्ष में—धर्म्मपालक और प्राप्त-विजय अथवा रक्षित धर्म्मसमूह से विजयी। अमरर्षोत्तमैर्वन्दितः—देवोत्तम इन्द्रादि से, राज पक्ष में मनुष्यश्रेष्ठ से वन्दित। प्रद्युम्नप्रियदर्शनः—अपत्यत्वात् प्रद्युम्न है प्रियदर्शन जिनको, राजपक्ष में कन्दर्प - समान सौन्दर्यवान्। द्विजवरप्रीतः—द्विजवर = खगेश्वर = गरुड में वाहनत्वात् प्रसन्न; राजपक्ष में ब्राह्मण में प्रीत। विनीतः—वि = पक्षी = गरुड द्वारा जानेवाले; राजपक्ष मे विनयशाली। सदाराधासक्तमनाः—सर्वदा राधा में आसक्त है मन जिनका; राजपक्ष में सज्जन की आराधना में आसक्त है मन जिसका। सुभद्राऽऽदृतः—सुभद्रा नाम की बहन से सत्कृत; राजपक्ष में शोभनभद्र से युक्त। ऐसे रमेश्वर विभुः--विष्णुदेव या महाराजाधिराज मालिक रमेश्वर सिंह। जीयात्—विजयी हो। मिथिलेश विष्णुदेव के समान हैं यह उपमालङ्कार ध्वनि होती है।

इस पद्य में सकल विशेषणपद दोनो पक्ष में विलक्षण रूप से (खींचकर नहीं) अर्थ व्यक्त करते हैं। इसलिए 'येन ध्वस्तमनोभवेन वलिजित्' इस श्लोक की तरह इसमें समङ्गश्लेपालङ्कार कवि की असाधारण प्रतिभा का परिचय दे रहा है। इस पद्य के सदृश आधुनिक किसी भी ग्रन्थ में कोई पद्य नहीं मिलता है। हाँ, आजकल के कविगण एक दो ही समानोभयार्थ-प्रतिपादक पद देकर दयावान् महीयान् ऐसे-ऐसे ही सर्वसाधारण पद विन्यासमात्र से श्लेषालकृत श्लोक बना देते हैं और मैं उत्तम काव्य बनानेवाला हूँ ऐसा मानकर मनमाना कविशेखर, कवीश्वर, कविरत्न आदि उपाधि-कञ्चुकी से अञ्चित हो जाते हैं। ठीक है, पर्वते परमाणौ च पदार्थत्वं प्रतिष्ठितम्, अथच 'नृत्यति पिनाकपाणौ नृत्यन्त्यन्येऽपि भूतवेतालाः'। अब इस उत्प्रेक्षा की विचित्रता तो देखिये, कैसी कल्पना है :—

गुणगणगणनं विधातुकामः कमलजनिर्गुलिकाचयेन यस्य।
कतिपयगणनाच्छ्रमङ्गतः खे व्यकिरदमूर्विलसन्ति तारकास्ताः ॥७२॥

विधाता गोलियों के समूह द्वारा इस महाराज के गुणगण गिनने लगे। जब कुछ गिनने पर भी पार न पाकर श्रान्त हो गये तब उन्होंने सब गोलियो को आकाश में छींट दिया, वे ही तारे शोभित हो रहे हैं।

यान्त्या दिवं यस्य नृपस्य कीर्त्तेरस्तोदयाद्र्योरभिकर्षणेन ।
भग्नाभवन्मौक्तिकचारुमाला तस्या विकीर्णा मणयो भचक्रम् ॥७६॥

राजा की कीर्त्ति स्वर्ग जा रही थी, मध्य में उदयाचल और अस्ताचल के समन्तात् कर्षण में उसकी सुन्दर मुक्तामाला टूट गई। उस माला के मणिदाने जो आकाश में बिकीर्ण हो गये वे ही नक्षत्र-मण्डल हैं। उपर्युक्त दोनों पद्यों में कैसी अनूठी कवि-प्रौढ़ोक्ति के साथ नाना अलंकार अलंकृत हो रहे हैं। नैष-धीयचरित के पद्य से विलक्षणता नहीं तो समता में जरा भी बाधा नहीं कही जा सकती।

दण्ड्यान् स्वयं वीक्ष्य नयस्थितोऽसौ प्रादण्डयच्चण्डतरप्रतापः ।
अतीव दण्ड्यांस्त्वनुशासनाय कृतान्तदेवान्तिकमेव निन्ये ॥२६॥

महोग्रप्रताप परमनीतिज्ञ वे (म० माधव सिंह) साधारण अपराधी को देखकर अपने ही दण्ड करते थे; जिसको अत्यन्त अपराधी समझते थे उसको यमराज के ही निकट भेज देते थे।

इस पद्य में पर्यायोक्त और परिकर अर्थालङ्कार के साथ छेकानुप्रास और वृत्त्यनुप्रास कैसे हैं और व्यंग्यार्थ कैसे अपूर्व निकलते हैं।

तृणाय मेने द्रविणानि धन्यो
मन्ये वदान्यो नृपरुद्रसिंहः ।
किन्दत्तमित्येतदमानि चित्ते
यत्तेन दत्तेऽप्यति भूरि वित्ते ॥५५॥

अत्यन्त उदार अतएव धन्य म० रुद्रसिंह समस्त धन को तृण के तुल्य मानते थे और अत्यन्त दान करने पर भी मैंने क्या दिया कुछ भी नहीं, यह मानते थे।

इस पद्य में वृत्त्यनुप्रास,, छेकानुप्रास, विभावना, विशेषोक्ति आदि अलङ्कारध्वनि चमत्कृत होने के कारण कैसे आह्लादजनक होते हैं।

# मिथिलाक वैयाकरण

डा० श्री उमारमण झा, एम. ए., पीएच. डी, न्यायाचार्य
व्याख्याता, दर्शनविभाग, श्रीरणवीर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ,
शास्त्रीनगर, जम्मू, तवी।

दीनानां हितचिन्तनेपि सततं बन्धुः सदा योऽभवद
विद्यावान् विनयी नितान्तसरलः ख्यातो जगन्मण्डले।
येनासादितगौरवेण बहुशः शिष्याः प्रशिष्याः कृताः
पूज्यस्सोऽमलदीनबन्धुसदृशः पायात्सदा स्वर्गतः।
वैयाकरणमूर्धन्यं माण्डरान्वय - दीपकम्।
नमामि दीनबन्धुं तं 'फेकू'शर्मात्मजं बुधम्॥

विश्वसंस्कृतसम्मेलनक अवसरपर "संस्कृतमे मिथिलाक योगदान" पर निबन्ध लिखबाक समय मिथिलाक शताधिक वैयाकरणक नाम स्पष्ट भए गेल। वैयाकरण दीनबन्धु झा सेहो २०म शताब्दीक एक विशिष्ट व्याकरणमर्मज्ञ पण्डित छलाह। अतएव 'मिथिलाक वैयाकरण' पर अतिसंक्षिप्त निबन्ध हुनक स्मृतिग्रन्थक हेतु लिखि रहल छी।

धर्मशास्त्र, न्याय, मीमांसा, साहित्य, वेद तथा ज्यौतिष प्रभृति शास्त्र मे तँ मिथिलाक स्थान अत्युच्च रहबे अछि, व्याकरणशास्त्रक विद्वान् सेहो मिथिलामे कम नहि भेल छथि। ओना तँ जतेक दर्शनक वा धर्मशास्त्रक विद्वान् भेल छथि से सब व्याकरणक पण्डित छलाहे तथापि जे विशेषरूपसँ वैयाकरण छलाह एहन किछु व्यक्तिक चर्चा कए रहल छी।

संस्कृतक प्रकाण्डपण्डित वररुचि मिथिलाक छलाह, जनिक वंशमे वैयाकरण पद्मनाभमिश्र भेल छलाह। वररुचिक लिङ्गवृत्ति नामक व्याकरण ग्रन्थ अछि। पद्मनाभमिश्र अपन व्याकरणादर्श मे अपनाकेँ वररुचिक वंशज कहने छथि। स्व० राजपण्डित बलदेवमिश्र सेहो वररुचिकेँ मैथिल सिद्ध कएने छथि (द्रष्टव्य मिथिलाङ्क पृ.२२)।

पदवाक्यप्रमाणपारावारीण म. म. गोकुलनाथ उपाध्याय पदवाक्यरत्नाकर लिखने छलाह। हिनक गुरु उमापति उपाध्याय सेहो बेजोड़ वैयाकरण रहथि।

सखवार (दरभंगा)क निवासी वैयाकरण घुड़ाभोन झाक अप्रतिहत पाण्डित्य छल। हुनक लिखल महाभाष्यविमर्शक किछु पत्र उपलब्ध भेल

अछि। म. म. शशिनाथ झा, प० शिवेश्वर झा तथा अन्यान्य महापण्डित लोकनिक ई गुरु छलाह।

म. म. छोटामिश्र विशिष्ट वैयाकरण छलाह। व्याकरणक प्रौढ़ विषय स्फोटवादपर शास्त्रार्थमे हिनकासँ केओ नहि विजयी होइत छल। अष्टौ स्फोटाश्छोटामिश्रेण निरूप्यन्ते" ई हुनक शास्त्रार्थक विषय रहैत छन।

अठारहम शताब्दीक अकल उपाध्याय वाक्यबोध तथा शब्दविचार लिखने छलाह। किंवदन्तीक अनुसार हिनक बेटी सेहो व्याकरणक विदुषी रहथि। तनिक विवाहक कथा हिनक एक अतिमन्दबुद्धि किन्तु सुन्दर एवं धनी शिष्यक संग चलैत रहए; एक दिन ओ शिष्य पदच्छेद रटैत रहथि—विहस्य षष्ठ्यन्तम्, विहाय चतुर्थ्यन्तम्, अहम् द्वितीयान्तम् इत्यादि। ओ कन्या से सुनैत रहथि। एहि पर ओ पिताकेँ कहलन्हि—

विहस्य यस्य षष्ठ्यन्तं चतुर्थ्यन्तं विहाय च।
द्वितीयान्तमहं तस्य द्वितीया स्यामहं कथम्॥

अर्थात् जनिक बुद्धिमे विहस्य (हँसिके) षष्ठीक रूप, विहाय (छोड़िके) चतुर्थीक रूप, अहम् (हम) द्वितीयाक रूप होइत अछि, हुनकर द्वितीया अर्थात् पत्नी हम कोना भए सकैत छी।

हरिनगर (दरभंगा)क निवासी म. म. आँखी झा व्याकरण शास्त्रक अद्भुत पण्डित छलाह। हुनकासँ केओ पँच पण्डित पुछने छलाह—

असमस्य समस्यापि भी-ह-मा-नु-ष्य-म-स्य-तः।
कः काकोऽकः सतो ब्रूहि...................।

अर्थात् असमस्य भी-मा-ष्य-स्य (भीमक) समस्य ह-नु-म-तः (हनुमानक) काकः अकः सकः (ककाररहित एवं तकारसहित काकः अर्थात् तातः=पिता) के छलाह? एकर उत्तरमे आँखी झा कहलथिन्ह—स्पर्शहीनो मुदा विधुः अर्थात् स्पर्श वर्णकेँ छाड़ि "मुदा विधुः" = उ+आ+इ+उः=वायुः।

महान् पण्डित विद्याकरमिश्र नीक वैयाकरण छलाह। हुनक एक श्लोक एहि प्रकारक अछि—

वरीवरामासभातमक्षरी तिलपा परा।
एकरोटीकरमहीनग्रीवमगदारिका॥

एकर अर्थ होइत अछि पार्वती (अगदारिका) शङ्करूप तेजकेँ (भातम्) वरण कएलन्हि (वरीवरामास)। हे मित्र! (ए!) से केहन छथि? कंठमे

साँप धारण कयने छथि (अहीनग्रीवम्,)। हाथमे कपाल लेने छथि (करोटिकरम्); केहन पार्वती ? क्षयरहिता (अक्षरी) अति उत्कृष्टा (परा)। ई श्लोक काव्यशेखर बदरीनाथ झासँ सुनने छलहुँ।

अवरीग्रामक निवासी महावैयाकरण मुक्तिनाथ ठाकुर महाभाष्यपर अतिरमणीय टीका लिखने छलाह। भराम (दरभंगा) क निवासी म.म. मुरलीधरझा नीक वैयाकरण रहथि। प० बबुआजीमिश्र, प० गङ्गाधरमिश्र तथा प० अनूपमिश्र हिनके शिष्य छलाह।

ठाढ़ीक निवासी जयलालमिश्र नीक वैयाकरण तथा शास्त्रार्थी छलाह। हिनक शिष्य महावैयाकरण शिवशङ्करझा, पं० रविनाथझा, पं० हरिशङ्कर झा, प० किशोर ठाकुर तथा पं० जनार्दन झा आदि मेलथिन्ह।

महामहोपाध्याय रजेमिश्र धुरन्धर वैयाकरण छलाह। महावैयाकरण नृही झा तथा म.म. जयदेवमिश्र हिनके शिष्य रहथि।

व्याकरण, न्याय तथा साहित्यक प्रकाण्ड पण्डित गुलाब झा व्याकरण शास्त्रक शास्त्रार्थमे विशेष यशस्वी रहथि। ई नडुआर ग्रामक निवासी छलाह। काशीक माड़वारी काजेजमे बहुत दिन तक प्रधानाध्यापक रहथि।

महावैयाकरण शिवशङ्कर झा ठाढ़ीक निवासी छलाह। ई अमृतसरमे बड़ सम्मानक सग रामवल्लभ श्यामदास पाठशालाक प्राचार्य रहथि।

बालबोधमिश्र मीमांसा, व्याकरण एवं न्याय शास्त्रक प्रकाण्ड पण्डित काशी क्वीन्स कालेजक अध्यापक रहथि।

यदुनाथ मिश्र (लालगंज, दरभंगा) व्याकरण तथा न्यायमे समान अधिकार रखैत छलाह। गोकुलनाथ उपाध्यायक पदवाक्यरत्नाकर पर ई प्रौढ़ टीका लिखने छथि। हिनक पुत्र प० श्री अम्बिकानाथमिश्र सरिसव विद्यालयक प्रधानाध्यापक छथि।

पण्डितप्रवर दीनबन्धु झा इसहपुर (दरभंगा) क निवासी माण्डरवंशक फेकूशर्माक बालक व्याकरणपर अपूर्व अधिकार रखने छलाह। मैथिली व्याकरणक निर्माण कए ई अपर पाणिनि कहाए गेलाह। हिनक "लिङ्गवचनविचार" व्याकरणक नीक ग्रन्थ अछि। हुनक आत्मज प० जीवनाथ झा नीक वैयाकरण छलाह। ई 'व्याकरणकौतुकम्' ग्रन्थ बनओने छथि।

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र धर्मदत्त (बच्चा) झा व्युत्पत्तिवाद पर टीका लिखने छलाह

म.म. जयदेव मिश्र व्युत्पत्तिवाद तथा परिभाषेन्दुशेखर पर जया टीका लिखने रहथि ।

भौर (राजग्राम)क जगतसिंह ठाकुरक पुत्र म.म. कृष्णसिंह ठाकुर व्याकरणक अद्भुत पण्डित छलाह । पचाढ़ीक हरिमिश्र, बलाटराघवपुरक भैया शर्मा तथा बनारसक म.म. राजारामशास्त्रीसँ ई विभिन्न शास्त्र पढ़ने छलाह । गमैल गामक मिलानमिश्रक पुत्र अयोध्यानाथमिश्र हिनके शिष्य रहथिन्ह । अयोध्यानाथमिश्रक उक्ति सेहो एकर पुष्टि करैत अछि—

अभिजनवसतिर्ग्रामगमैले, सम्प्रति लसति स एव चनौरे ।
गुरवस्तस्य वसन्ति च भौरे, मित्रमिदानीं लसति ननौरे ॥

म.म. हर्षनाथ झाक शब्देन्दुशेखरटीका, परिभाषार्थदीपिका तथा शब्दरत्नार्थदीपिका व्याकरणक नीक ग्रन्थ अछि । लालगंजक श्रोत्रिय-प्रवर हेमपाणि झा (विकलझा) शब्दप्रदीप लिखने छलाह । हुनक पुत्र श्यामानन्द झा सेहो व्याकरण तथा न्याय आदि शास्त्रक नीक विद्वान् छलाह । बम्बइक टीकारम विद्यालयक ई प्रधानाचार्य छलाह ।

एकर अतिरिक्त जाशू मिश्र, मार्कण्डेय मिश्र, महावै० खड्गनाथ झा, वैया. लालजीझा, प. किशोरी झा, महावै. नरसिंह झा, पं० विश्वनाथ झा, महावै० खुद्दी झा (नागेशोक्तिप्रकाश तथा व्युत्पत्तिवाद पर टीका), महावै. शिवशङ्कर झा म.म. लक्ष्मीनाथ झा, म.म. पदार्थमिश्र, महावै. चुम्मे झा (जम्मूकश्मीर सं सम्मानित), वै. मोहन मिश्र, वै. हरिवंश झा, वै. नीरस झा, पं. सदानन्द झा पं० कुलानन्द मिश्र, पं० ऋद्धिनाथ झा, पं० रघुनाथ झा, पं० कन्तलाल चौधरी, पं० रविनाथ झा, पं० उग्रानन्द झा, तरौनीग्रामक म.म. वैयाकरण केसरी परमेश्वर झा, सीतामढ़ीक विद्यावाचस्पति पं० मधुसूदन झा, म.म. पं० शशिनाथ झा, पं० मेनालाल मिश्र, म.म. चित्रधर मिश्र, पं. सुरेशमिश्र पं. जटाशङ्करझा, पं. भूपनारायणझा, पं० फूदन चौधरी, पं० लूटनझा प्रभृति अनेक प्रकाण्ड वैयाकरण सब मिथिलाकेँ अलङ्कृत कए चुकल छथि । (विशेष द्रष्टव्य डा० जयमन्तमिश्र, डा० त्रिलोकनाथझा तथा डा० उमारमण झाक निबन्ध, विश्व संस्कृत सम्मेलन, भाग १७ ) ।

सम्प्रति जीवित वैयाकरणमे पं० महेश झा, पं० यदुपतिमिश्र, पं. उपेन्द्र झा, पं० कुलानन्द मिश्र, पं० नमोनारायण झा, पं० रामचन्द्र मिश्र, पं० नारायण झा, पं० श्यामसुन्दर झा, पं० शोभाकान्त झा, पं० मदनमोहन झा

पं रतीश झा, पं० शोभित मिश्र, पं० मणिनाथ झा, पं० जयमन्त मिश्र ओ अन्यान्य शताधिक नीक विद्वान् मिथिलाक गौरवकें बढ़ाए रहल छथि ।

[ एकर अतिरिक्त मण्डनमिश्रक स्फोटसिद्धि (८म शताब्दी), मङरौनीक गिरिधरोपाध्यायक (१८म शतीक) विभक्त्यर्थनिर्णय, चानचौर ग्रामनिवासी चन्द्रमणि मिश्रक (१९१४ई०) लघुकौमुदी ओ कौमुदीक अर्थतरंगिणी मैथिली व्याख्या, पं० द्रव्येश झाक वाक्यपदीयटीका, पं० कृष्णमाधव झाक परमलघुमञ्जूषाटीका, पं० शुकदेव झाक महाभाष्यादर्श आदि, पं० कनकलाल ठाकुरक स्फोटकारत्नमञ्जूषा, पं० पलटू झाक संस्कृतबोध, ठाढ़ीक पं० रुद्रधर झाक महाभाष्यक तत्त्वालोक टीका, बिसौलक पं० सदानन्द झाक कौमुद्यवशिष्टशब्दविचारचर्चा, पाहीक विद्यावारिधि तेजनाथ झाक संस्कृत व्याकरण विनोद आदि प्रकाशित छन्हि । अप्रकाशितो बहुत वैयाकरणक प्राचीन ग्रन्थ छन्हि । मैथिलीमे भोलालाल दास, आनन्द मिश्र, रमानाथ झा, गोविन्द झा, यशोधर झा, बालगोविन्द झा आदि व्याकरण लिखने छथि । हिन्दीमे रामलोचन शरण प्रसिद्ध वैयाकरण छलाह । —सम्पादक ।।]

# भारतीय नारी आ सिन्दूर

—पं० श्री मतिनाथ मिश्र

भारते टा एहन देश अछि जतए स्त्री-जाति माँगमे सिन्दूर करैत छ
अछि, भने ओकर विवाह कोर्ट-कचहरीसँ होइक वा वैदिक विधिसँ।

वैदिक विधिक जतेक विवाह-पद्धति अछि ताहि सभमे अन्तमे रहैत अछि—"तत आचारात् सिन्दूरदानम्"। एहिसँ स्पष्ट होइछ जे सिन्दूरदान विवाहक वैदिक वा स्मार्त विधि नहि थिक, प्रत्युत लौकिक आचारमात्र थिक।

जाहि ठाम न्यायालयक द्वारा विवाहक निबन्धन होइत अछि अथवा बिना कोर्ट-कचहरीक 'सम्बन्ध' अर्थात् पुनर्विवाह वा गान्धर्व-विवाह होइत अछि तत्र स्त्रीकेँ सिन्दूरे देलाक बाद विवाह सम्पन्न बूझल जाइत अछि। एकरा पद्धतिसँ अथवा विधिसँ कोनो सम्बन्ध नहि छैक; ई एकटा अकाट्य स्वतन्त्र विधि थिक।

प्रश्न उठैत अछि जे सिन्दूरक स्त्री-समाजमे एतेक महत्व किएक छैक? जँ एकरा स्त्रीक भूषण अथवा शृंगार मानी तँ संगत, मुदा तखन विवाहक उपरान्ते किएक? कुमारिओ कन्याक माँगमे सिन्दूर होइक चाही?

एहिसँ स्पष्ट होइछ जे एकर मूल बड़ गम्भीर धरि जा कए भारतीय संस्कृतिसँ एना मिलि गेल अछि जे एकरा पृथक् नहि कएल जाए सकैत अछि।

परन्तु एहन सबल रीतिक भीतर अवश्य किछु तथ्य वा रहस्य छैक जकरा शास्त्रसँ कोनो सम्बन्ध नहि छैक। लौकिक विधि व्यक्ति वा समाज मात्रसँ सम्बन्ध रखैत अछि। ई रीति सम्भव थिक जे एहि रूपेँ चलल होअए।

अति प्राचीन कालमे स्त्रिओ-जातिक अत्यन्त महत्व छल। ओकरे समाजमे प्रधानता रहैत छल। पुरुषक अपेक्षया स्त्री अधिक स्वतन्त्र रहैत छलि। ओकरापर कोनो बन्धन नहि रहैत छलैक। अविकसित पुरुष-जाति स्त्रीक सृजनात्मक शक्ति देखि अपनाकेँ ओकरा आगू शक्तिहीन आ तुच्छ मानैत छल। स्त्री-जातिकेँ ईश्वरक देल अमूल्य रत्न मानि पुरुष मात्र स्त्रीकेँ श्रेय दैत छल।

मनुओ स्त्रीकेँ महत्ता दैत लिखैत छथि—

> प्रजनार्थं महाभागा नराणां गृहदीप्तयः।
> स्त्रियः श्रियश्च लोकेषु विशेषो नास्ति कश्चन॥

स्त्रीकें लक्ष्मीक स्थान दए उदारता नहि देखओलन्हि अछि। देवी-भागवतमे तँ आर अधिक मान्यता दए स्त्रीकें अत्युच्च उठा देने छथि—"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।" जतए नारीक सम्मान हो ततय देवता अत्यन्त प्रसन्न रहथि।

विवाह-पद्धतिअहुमे वर वधूसँ प्रार्थना करैत अछि—"अमोऽहम् सा त्वमसि। तावेहि विवहावहै सह रेतो दधावहै।" हम लक्ष्मीहीन छी; अहाँ लक्ष्मी थिकहुँ; तेँ आउ एक दोसरक आश्रय बनि संग-संग तेज धारण करी। माराश ई जे पुराणक युग धरि समाजमे स्त्री-जातिक श्रेष्ठता सर्वमान्य छल।

ओहि समयमे स्त्री स्वतन्त्रतासँ कोनो पुरुषक इच्छा अथवा अनेको पुरुषक वरण कए सकैत छलि। आनक कथे कोन, सहोदरो भाइक प्रति वासना प्रकट करबामे कोनो संकोच नहि होइत छलैक। ई ऋग्वेदक यमयमी-संवादसँ स्पष्ट भए जाइत अछि।

निरुक्तकार यास्क लिखैत छथि—यमी यमभगिनी निजभ्रातरं कामयते कामशमनाय वरयितुमिच्छति, ताञ्च यमो निषेधत्यनेन सूक्तेन—"आधाता गच्छानुत्तरा युगानि। यत्रामयः कृण्वन्नाजामि। उपबर्वृहि वृषभाय बाहुमन्य-मिच्छस्व सुभगे पतिं मत्।'

यमक बहिन यमी अपन भाइकें वासनाक शान्तिक हेतु वरण करैत छथि, तखन यम निषेध करै छथि एहि रूपें - 'आगू एहन युग सब अओतैक जहिआ भाइरामे लोक गर्भाधान करत, परन्तु अहाँ हमरासँ आनक बाहिकें तकिया अनारा वासनाक तृप्तिक हेतु पति रूपें वरण करू !

पुराणहुँमे एहि बातक पुष्टि स्वायंभुव मनु आ शतरूपाक दाम्पत्यसँ भए रहल अछि जनिक उत्पत्ति एकहि व्यक्तिसँ छनि (श्रीमद्भागवत)। ब्रह्माक बेटी सन्ध्याक ब्रह्माक पुत्र वशिष्ठ आदिक प्रति आकर्षित होएब काली-पुराणमे वर्णित अछि। एहि सब बातसँ स्पष्ट होइत अछि जे पूर्वमे शरीर-सम्पर्कक विषयमे कोनो बन्धन नहि रहैत छल।

एहन स्थितिमे पुरुष कोनो स्त्रीक अपना प्रति आसक्तिकें सौभाग्य बुझैत छल आ ओकरा प्राप्त करैले व्यग्र रहैत छल, तेँ हृदय खोलि अपन अनुराग प्रकट कए दैत छल। एम्हर स्त्रीकें स्वतन्त्रता रहितहुँ किछु अभाव खटकैत रहैत छलैक। कारण जे प्रेम केवल शरीरक भोगे धरि पर्बत छनि परन्तु शाश्वत अनुराग नहि प्राप्त कए सकैत छलि। स्थायी अनुराग

ले सतत भूखलि रहैत छलि। फलतः स्त्री-पुरुष दुहुके एक आश्रयमे अपन अन्तर्वृत्तिके स्थिर रखैक हेतु मन उताहुत होमय लागल।

एहि स्थितिमे अपन अनुराग जे अदृश्य वस्तु थिकैक तकर कल्पना लाल रंग मे कएल गेल। शास्त्रहुमे अनुरागक रूप लाल मानल गेल अछि। वस्तुतः लाल रंगके देखितहिं सभक मोन प्रीतिक भावनासँ ओत-प्रोत भए जाइछ। पुरुष एहि प्रीतिक प्रतीक सिन्दूर (लाल रंगक गर्दी)के अपन अनुरागक संकेत स्वरूप कहुना अपन प्रेमिका धरि पहुँचबैत छल, जकरा प्रसन्नतापूर्वक स्त्री महत्व दैत अपन माथमे लगा लैत छलि।

यद्यपि आजुक जकाँ परिष्कृत सिन्दूर प्राचीन कालमे नहि होइत छल तथापि माटिये-सन किन्तु रंग मे लाल एक वस्तु एहि क्रियामे आनल जाइत छल। ओहि सस्कारक कारणे आइयो प्रथम सिन्दूर-दानमे मटिये सिन्दूरक उपयोग होइछ।

पुरुषक एहि असीम अनुरागक प्रतिरूप जे ओकर हृदयक चिरकांक्षित वस्तु थिकैक तकरा पाबि नारीत्वक गौरव जागृत होमए लागल। नारीक अपन सफलता तखन होइत छैक जखन केओ पुरुष चिरकाल धरि ओकरा पर आकृष्ट रहैक।

प्राचीन युगमे नारी पुरुषक प्राप्ति ले उपरौँझ करैत छलि; एहन स्थितिमे पुरुषक दिशसँ प्रेमक सन्देश स्वरूप सिन्दूरके पाबि अपनाके स्त्री सुभगा तथा धन्य बूझय लागलि। पाछू आबि सिन्दूरके स्थायी रूपसँ माथ पर राख लागलि आ ओ सोहागक चिह्न बनि गेल। ओहि पुरुषके स्त्री शरीरसँ आजन्म धरि अर्पित कए दैत छलि। इएह ओकर विवाह होइत छलैक।

जखन क्रमशः नारीक महत्व घटए लागल तखन जाहि पुरुषके जे स्त्री मनमे बसि जाइक तकरा अपनबैक चेष्टा करए लागल। एहन स्थितिमे माँगक सिन्दूर देखि अधिकृत पर अधिकार सम्भव नहि थिक तें आसक्ति नष्ट भए जाइत छल। इएह स्थिति स्त्रियहुके छल; अपन माँगक सिन्दूर बहुत पुरुषक वा पर-पुरुषक सम्पर्कक भावनाके नियन्त्रित करए लागल। आँगा आबि ई परम्परा रूढ़ि बनि गेल आ विवाह-विधिक सबल अंग बनि गेल। एहि बातके बिचारलासँ विवाह-पद्धति बनबासँ पहिनहिसँ सिन्दूरक प्रचलन देखि पड़ैत अछि।

फलतः पुरुष स्त्रीके अनुरागक प्रतीक सिन्दूर अर्पित करैत अछि, जकर

स्त्री शिरोधार्य कय लैत अछि, ई क्रिया दुहूक प्रेमकें प्रगाढ़ बनाएकें वासनासें कनेक ऊँच उठा दैत अछि।

एहिमे स्त्रीक ममता आ आत्मसमर्पणक भावना अन्तर्हित रहैत अछि। एहि रूपें भारतीय नारीकें सिन्दूरसँ अत्यन्त गम्भीर सम्बन्ध देखि पड़ैत अछि। स्त्री सब किछु सहन कए सकैत अछि मुदा सिन्दूरक अनादर किन्नहुँ नहि सहि सकैत अछि। ओकरा अनादरकें अपन सोहागक अनादर बूझैत अछि।

आदिवासी स्त्री तँ सिन्दूरकें आर बेशी महत्व दैत छैक। यदि माथपर बोझ उठयबाक रहैत छैक तँ ओहिसँ पूर्व, माँगमे सिन्दूर एहि दुआरें नहि करैत अछि जे ओकरा ऊपर बोझ देलासँ ओकर अपमान होएतैक।

एहि प्रकारें भारतीय नारीक आन्तरिक तथा बाह्य जीवनसँ तेना सिन्दूरक सम्बन्ध अछि जे कहियो पृथक नहि भए सकैत अछि।

●

# नैषधीयचरित में चार्वाकदर्शन

**डॉ० विश्वनाथ झा**

प्राध्यापक, कल्याणी मिथिला संस्कृत महाविद्यालय, दीप, मधुबनी।

प्रत्येक दर्शन की विचारधारा विभिन्न होने से प्रत्येक दर्शन एक दूसरे दर्शन से खण्डित हो जाया करता है। दर्शनशास्त्र में खण्डन-मण्डन की परिपाटी बहुत ही प्राचीन है। महाकवि श्रीहर्ष तार्किकचक्रचूड़ामणि अद्वैत-वेदान्तसिन्धु तो थे ही, चार्वाक-दर्शन के भी महान् पारखी थे। यह बात नैषधीयचरित महाकाव्य के सत्रहवें सर्ग में चार्वाक-दर्शन के प्रतिपादन से स्पष्ट हो जाती है। इन्होंने बहुत-से दर्शनों का खण्डन उपहास के रूप में रोचक ढंग से नैषधीयचरित में उपस्थापित किया है। भारतीय दर्शन में तत्त्वदृष्टि के लिये खाण्डनिक दृष्टिकोण का भी बहुत बड़ा महत्त्व है। महाकवि श्रीहर्षने 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' इस भावना का परिपाक आद्वितीय आत्मनिष्ठा में ही सम्भव बताया है। आत्मनिष्ठा अद्वैत वेदान्तदर्शन से जितनी सुलभ होती है, उतनी अन्य दर्शनों से नहीं। किन्तु श्रीहर्ष महाकवि थे। उनका काव्य-प्रयोजन यह भी था कि कोमल मतिवाले भी उनके नैषधीयचरित महाकाव्य का ही अध्ययन कर भिन्न-भिन्न दर्शनों का, उनकी विचारधाराओं का समीचीन परिचय प्राप्त कर सकें।

कवितार्किकचक्रचूड़ामणि श्रीहर्ष विरचित नैषधीयचरित महाकाव्य में चार्वाक सिद्धान्तों का बड़े विस्तार के साथ शास्त्रार्थ ढंग से आख्यान-प्रत्याख्यान हुआ है। चार्वाकों का शरीरात्मवाद नास्तिक दर्शनों में सर्वप्रथम तथा सर्वप्रधान माना जाता है। यद्यपि अश्लील ऐन्द्रियपरता के कारण भारत में इसको स्थायी सत्ता बनाने में सफलता नहीं मिली, फिर भी कुछ लोगों की रुचि इसके प्रति अवश्य ही रही। वह रुचि भी विचित्र प्रकार की थी। कुछ लोग तो इसके सिद्धान्तों को जानने का कौशल रखते थे तथा कुछ थोड़े ऐसे भी हुए, जिन्होंने उन सिद्धान्तों को जीवन में लागू भी किया। इनके सिद्धान्तों की वैदिक तथा अवैदिक दोनों प्रकारों के दर्शनों ने बड़ी निर्दयता के साथ धज्जियाँ उड़ाई हैं। अब तक उन चार्वाक मतों की जो कुछ भी सत्ता बनी है, वह उसी प्रकार है जैसे अनेक विचार-धारायें विवेकहीन होती हुई भी चलती रहती हैं।

कहते हैं, इस आत्मवाद का प्रवर्त्तक बृहस्पति थे। ये बृहस्पति कौन थे, इस विषय में निश्चयपूर्वक कुछ कहा नहीं जा सकता। बृहस्पति-नीति के कर्त्ता भी यही रहे, इसका निर्णय करना कठिन है। भासने अपने 'प्रतिमा नाटक' के पाँचवें अंक में तथा कौटिल्यने अपने अर्थशास्त्र में बृहस्पति को अर्थ-शास्त्र-रचयिता कहा है। कौटिल्य अर्थशास्त्र के समुद्देश खण्ड में बृहस्पति के मत से केवल वार्त्ता तथा दण्डनीति ही अध्येतव्य विद्यायें कही गई हैं, आन्वीक्षिकी तथा त्रयी गौण मानी गई हैं।

इससे भी पता चलता है कि बृहस्पति का मत भौतिकवाद की ओर है। अतएव बार्हस्पत्य सिद्धान्त चार्वाक का अनुयायी कहा जाता है। बृहस्पति कोई पौराणिक व्यक्ति नहीं थे, क्योंकि चार्वाक सूत्रों का उल्लेख उन्हीं के द्वारा विरचित होने के रूप में किया जाता है। चार्वाक का मुख्य सिद्धान्त यह है कि इन्द्रियोपलब्धि ही सत्ता का एकमात्र प्रमाण है; अतः यन्नोपलभ्यते तन्नास्ति इस मत में स्वभावतया अश्रद्धा या नास्तिकवाद का प्रादुर्भाव होता है। चार्वाक ईश्वर को नहीं मानता। ईश्वरवाद के पक्ष में दिये गये तर्क उसे ग्राह्य नहीं दिखाई पड़ते। अदृष्ट या अभौतिक हेतुवाद का तो वह तिरस्कार करता है। फिर यह कहना निष्प्रयोजन है कि ईश्वर संसार का नियन्ता है, जो जीवों के कर्मों की व्यवस्था करता है तथा वही विश्वकर्त्ता है। और, जो वेद को प्रामाणिक मानता ही नहीं, उससे वेद के आधार पर ईश्वर की सत्ता सिद्ध करना व्यर्थ ही है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि चार्वाक अनुमान को प्रमाण नही मानता। ईश्वर इन्द्रियों का गोचर ही नहीं, और शब्द प्रमाण भी अनुमान ही की कोटि में होने के कारण एक सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान की सत्ता को सिद्ध करने का कोई साधन ही नही रह जाता। अतः चार्वाकों के यहाँ ईश्वर की नहीं, अपितु स्वभाव की प्रतिष्ठा है। अतः न्याय-वेदान्त-प्रतिपादित ईश्वर-सत्ता के प्रति अनास्था प्रगट करते हुए चार्वाक प्रत्यक्ष तर्क देता है :—यदि सर्वज्ञ करुणामय तथा सत्यभाषी परमात्मा की सत्ता वास्तव में है, तो वह भुक्ति-मुक्ति चाहने वाले हमलोगों को अपनी स्वीकृति के दो शब्दों (एवमस्तु) आदि द्वारा ही क्यों पूर्णमनोरथ नहीं करता ? यथा :—

देवश्चेदस्ति सर्वज्ञः करुणाभागवन्ध्यवाक्।
तत्किं वाग्व्ययमात्रान्नः कृतार्थयति नार्थिनः।

(नैषध, सर्ग १७, श्लोक ७७)

श्रीहर्ष ने नैषध में कहा है कि 'यदि हम अपने कर्मों के अनुसार ही सुख-दुःख पाते हैं, और ईश्वर का उसमें कोई हाथ नहीं, तो हमें उन सुख-दुःखों का अनुभव करने के लिये उसका यह बलात् हस्तक्षेप अवश्य उसको हमारा अकारण शत्रु बनाता है और अन्य से शत्रुता का तो कुछ कारण भी होता है।' पुनः उन्हीं के शब्दों में—

भविनां भावयन् दुःखं स्वकर्मजमपीश्वरः ।
स्यादकारणवैरी नः कारणादपरे परे ।

(नैषध, सर्ग १७, श्लोक ७८)

'विवरणप्रमेयसंग्रह में लोकायतिक सिद्धान्त संक्षेप में कहा गया है कि पृथ्वी, अप, तेज, वायु ये ही चार भूत तत्त्व हैं, प्रत्यक्ष ही प्रमाण है, स्वभाववाद ही परम सत्य है। यथा—"भूतचतुष्टयमेव तत्त्वम्, प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणम्, स्वभाववाद एव पारमार्थिकः।" (वि० प्र० संग्रह, पृष्ठ संख्या—२११, सरस्वती भवन स्टडीज, भाग ३, पृ० ७७ की टिप्पणी में म० म० डा० गोपीनाथ कविराज द्वारा उद्धृत)।

नैषध में सर्वप्रथम चार्वाक वेद की प्रामाणिकता पर आक्षेप करता है, तथा बल के साथ स्वेच्छाचारिता का समर्थन करते हुए कहता है—'जैसे पत्थर का पानी पर तैरना कभी सत्य नहीं, उसी प्रकार यज्ञ के फल (स्वर्गादिप्राप्ति) के प्रति वेद-वचन को सत्य नहीं माना जा सकता। इसी प्रकार अन्य वेद-वाक्यों में भी क्या आस्था की जाय, जिसके कारण से वह स्वेच्छाचारिता आप लोगों ने त्याग दी।' महाकवि श्रीहर्ष के ही शब्दों में—

ग्रावोन्मज्जनवद्यज्ञफलेऽपि श्रुतिसत्यता ।
का श्रद्धा तत्र धीवृद्धाः कामाध्वा यत् खिलीकृतः ॥

(नैषध, सर्ग १७, श्लोक ३७)

वह वेद की प्रामाणिकता का विरोध करने के कारण ही बुद्ध की प्रशंसा करता है—

केनापि बोधिसत्त्वेन जातं सत्त्वेन हेतुना ।
यद्वेदममंभेदाय जगदे जगदस्थिरम् ॥

(नैषध, १७। ३८)

पुनः अग्निहोत्र, वेद, दण्डधारण तथा भस्मधारण आदि को बुद्धिपौरुष-रहित व्यक्तियों की जीविका का साधन मात्र कहा है—

अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम् ।
बुद्धिपौरुषहीनानां जीविका धातृनिर्मिता ॥
(सर्वदर्शनसंग्रह, पृ० १३)

नैषध में भी चार्वाक उसी उक्ति को दोहराते हुए कहता है :—

अग्निहोत्रं त्रयीतन्त्रं त्रिदण्डं भस्मपुण्ड्रकम् ।
प्रज्ञा-पौरुष-निःस्वानां जीविकेति बृहस्पतिः ॥
(नैषध, १७।३९)

चार्वाक मत केवल काम को पुरुषार्थ मानता है। यथा "काम एवैकः पुरुषार्थः।" आलिंगन में जो सुख मिलता है उसे ही चार्वाक दर्शन में पुरुषार्थ कहते हैं, तथा काँटे आदि के गड़ने से जो पीड़ा या दुःख होता है उसे नरक मानते हैं। यथा :—

अंगनालिंगनाज्जन्यसुखमेव पुमर्थता ।
कण्टकादिव्यथाजन्यं दुःखं निरय उच्यते ॥
(सर्वदर्शनसंग्रह, पृ० ६)

महाकवि श्रीहर्ष ने भी नैषध में चार्वाक के काम-पुरुषार्थ का अनेक बार तथा अनेक विधि से समर्थन किया है। वह उसे सारे पुण्य कर्मों से अधिक श्रेयस्कर बताते हुए कहता है—'व्रत आदि पुण्य-कार्यों में आप लोगों की इतनी आस्था क्यों है और स्त्री-संभोग में क्यों नहीं है? अरे, मनुष्य को वही करना चाहिए जिससे परिणाम में उसे सुख प्राप्त हो। पुण्यफल तो जन्मान्तर मे मिलेगा जो स्वयं सन्देहास्पद है, पर सुरतफल तो स्वयं सुरत-वेला में ही मिल जाता है।' यथा :—

सुकृते वः कथं श्रद्धा सुरते च कथं न सा।
तत्कर्म पुरुषः कुर्यात् येनान्ते सुखमेधते।।
(नैषध, १७। ४८)

पुनश्च वहीं पर वह कामाज्ञा को सबसे अधिक गरीयसी बताता है—'आपलोग भगवान् कामदेव की आज्ञा मानें, जिसका कि ब्रह्मा, शिव आदि समर्थ देव भी उल्लंघन नहीं कर सकते। अरे मूर्खो, वेद तो देवाज्ञा होने के कारण मान्य है। तो क्या कामदेव देव नहीं? फिर दोनों में अधिक किसी को क्यों मानें? दोनों की आज्ञाएँ समान हैं।' उन्हीं के शब्दों में—

कुरूपं कामदेवाशां ब्रह्माद्यैरप्यवंचिताम् ।
वेदोऽपि देवकीयाशा तवाशाः काधिकार्हता ॥
(नैषध, १७ । ५९)

उसी प्रकार चार्वाक को सारी क्रियाओं के फलरूप में कामपुरुषार्थ की प्राप्ति ही समझ पड़ती है। इस भाव को महाकवि श्रीहर्ष ने नैषधीयचरित में इस तरह व्यक्त किया है—'यज्ञ के समय जो चित्त शान्त रखते हैं तथा स्त्री-भोग की भावना का त्याग करते हैं, उस विडम्बना की क्या प्रशंसा की जाय? आखिर उनकी इस यज्ञ में शान्तचित्तता किस बात की लिप्सा से है? यही न कि स्वर्ग जाकर भी मृगनयनियों का सम्भोग सुलभ हो?'—

साधु कामुकता मुक्ता शान्तस्वान्तैर्मखोन्मुखैः ।
सारङ्गलोचनासारां दिवं प्रेत्यापि लिप्सुभिः ।
(नैषध, १७। ६८)

बृहस्पति ने वर्णाश्रमधर्म आदि कुछ भी नहीं माना है—नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः (सर्वदर्शनसंग्रह, पृ० १३)। चार्वाक भी नैषध में जाति-शुद्धता का उपहास करते हुए कहता है—'यदि माता-पिता दोनों के वंशों के पितरों को एक-एक करके देखा जाय तो किसी वंश में शुद्धता शायद ही मिले। क्योंकि एक वंश की असंख्य शाखाएँ होने के कारण दोष कहीं-न-कहीं सब में होगा ही। अतः कौन-सी जाति भला निर्दोष कही जा सकती है।' श्रीहर्ष के शब्दों में :—

शुद्धिर्वंशद्वयीशुद्धौ पित्रोः पित्रोर्यदेकशः ।
तदानन्तकुला दोषाददोषा जातिरस्ति का ॥
(नैषध, १७ । ४०)

लोकायत दर्शन में देह को ही आत्मा मानते हैं तथा देहनाश (मृत्यु) को ही मोक्ष या अपवर्ग कहते हैं—"चैतन्यविशिष्टः काय पुरुषः तथा मरणमेवापवर्गः।" (शांकरभाष्य में, ब्रह्मसूत्र ३।३।५३ पर)। चार्वाक उक्त सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए कहता है कि 'यदि देह ही आत्मा है, तो इसके जल जाने से कुछ शेष ही नहीं बचता, फिर पाप का फल भोगनेवाला कोई बचता ही नहीं। और यदि आत्मा इस शरीर से भिन्न कोई वस्तु है, जिसकी वेद आदि दूसरा कोई गवाही दे, तब तो सभी आत्मा समान हैं, फिर एक का किया दूसरा क्यों नहीं भोगता?'

यस्मिन्नस्मीतिधीर्देहे तद्दाहे वः किमेनसा।
क्वापि तत्किं फलं न स्यादात्मेति परसाक्षिके।।

(नैषध, १७।५२)

फिर "तत्त्वमसि" आदि आत्मबोधविषयक महावाक्यों का उपहास करते हुए देहात्मवाद का समर्थन करता है—'मनुष्य जानता है कि यह शरीर मैं ही हूँ, किन्तु वेद बताता है कि नहीं, तुम यह शरीर नहीं हो बल्कि "तत्त्वमसि"। कितनी बड़ी धूर्तता है।' इस आशय को महाकवि श्रीहर्ष ने इस तरह व्यक्त किया है :—

जनेन जानतास्मीति कायं नायं त्वमित्यसौ।
त्याज्यते ग्राह्यते चान्यदहो श्रुत्यादिधूर्त्तता।।

(नैषध, १७।५४)

लोकायतिकों ने श्राद्ध का बड़ा तीव्र खंडन किया है। अभ्यंकर शास्त्री ने सर्वदर्शनसंग्रह की टीका में श्राद्ध के विषय में बृहस्पति के वचनों का उद्धरण दिया है। 'यदि मरे प्राणी के लिये श्राद्ध तृप्ति का कारण है, तो बुझे हुए दीप को भी तेल प्रज्वलित कर सकता है। पथिक को पाथेय लेने की भी आवश्यकता नहीं। घर पर कोई श्राद्ध कर दे, रास्ते में उसकी तृप्ति निश्चित हो जायगी। यदि स्वर्ग गया हुआ प्राणी यहाँ के दान से तृप्ति प्राप्त करता है, तो महल के ऊपर स्थित लोगों के लिए नीचे ही क्यों नहीं रख दिया जाता।' अतः अन्त में बृहस्पति ने यही सारांश निकाला कि इन श्राद्धादि प्रेतकार्यों को ब्राह्मणों ने अपनी जीविका का एक साधन बनाया है। यथा :—

मृतानामपि जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम्।
निर्वाणस्य प्रदीपस्य स्नेहः संवर्धयेच्छिखाम्।।
गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पाथेय-कल्पनम्।
गेहस्थकृतश्राद्धेन पथि तृप्तिरवारिता।।
स्वर्गस्थिता यदा तृप्तिं गच्छेयुस्तत्र दानतः।
प्रासादस्योपरिस्थानामत्र कस्मान्न दीयते।।
ततश्च जीवनोपायो ब्राह्मणैर्विहितस्त्विह।

(सर्वदर्शनसंग्रह, पृ० २३)

चार्वाक देवों से पूर्वोक्त मत के अनुसार श्राद्ध के प्रति उपहास करते हुए कहता है—'यह कहना कितनी बड़ी धूर्तता है कि मरने पर प्राणी अपने पूर्व

जन्मों का स्मरण करता है, मरने पर उसे अपने पूर्वकृत कर्मों की फलपरम्परा को भोगना पड़ता है, तथा ब्राह्मणों को खिला दे तो मृत आत्मा तृप्त हो जायगी।' इस भाव को श्रीहर्ष ने इस तरह व्यक्त किया है :—

मृतः स्मरति जन्मानि मृते कर्मफलोर्मयः।
अन्यभुक्तैर्मृते तृप्तिरित्यलं धूर्तवार्तया॥

(नैषध, १७।५३)

चार्वाक दर्शन में न परलोक के लिये स्थान है, न स्वर्ग के लिये ही और न ही अदृष्टवश भविष्य में प्राप्त होने वाले कर्मफल के लिये। यदि किसी कर्म का फल प्राप्त भी हो जाता है तो चार्वाक उसे स्वभाववश या यादृच्छिक ही समझता है। बात यह है कि चार्वाक अदृष्टवाद को कभी स्वीकार ही नहीं करता। उसके अनुसार विश्व का कोई नियन्ता नहीं। अतः कर्म की उसके फल के साथ संगति बैठाने की समस्या उठती ही नहीं। सुख-दुःख का भोग किसी पूर्वकृत कर्म के फलरूप में नहीं मिलता अपितु यदृच्छा से मिलता है, जिसके ऊपर किसी का नियन्त्रण नहीं कहा जा सकता। ऐसी दशा में कार्य-कारण के सम्बन्ध को समझने के लिये कर्त्ता के एकत्व को स्थापित करने की कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाती। यथा :—

क्वचित् फलप्रतिलम्भस्तु मणिमन्त्रौषधिवद् यादृच्छिकः। अतस्तत्साध्यमदृष्टादिकमपि नास्ति। नन्वदृष्टानिष्टौ जगद्वैचित्र्यमाकस्मिकं स्यादिति चेत्, तद्भद्रम्। स्वभावादेव तदुत्पत्तेः। तदुक्तम् :—

अग्निरुष्णो जलं शीतं समस्पर्शस्तथाऽनिलः।
केनेदं चित्रितं तस्मात् स्वभावात् तद्व्यवस्थितिः॥

(सर्वदर्शनसंग्रह, पृष्ठ २१, श्लोक १२)

पूर्वोक्त सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए चार्वाक मन्त्रानुष्ठान के मिथ्यापन का उपहास करता है—

दो संदिग्ध बातों में एक का होना तो निश्चित ही है। उनमें यदि अभीष्ट बात हो गई तो धूर्त लोग कहते हैं, यह हमारे मन्त्र का प्रभाव है, और यदि अभीष्ट न हुई तो कहते हैं, अनुष्ठान ही ठीक से न हो सका, दक्षिणा आदि की गड़बड़ी हो गई। इसी आशय को महाकवि श्रीहर्ष ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

एकं संदिग्धयोस्तावद् भावि तत्रेष्टजन्मनि ।
हेतुमाहुः स्वमन्त्रादीनसंगानन्यथा विटाः ॥
(नैषध, १७ । ५५)

इसी तरह परलोक की सत्ता का भी निराकरण करते हुए कहता है—'वेद का कहना है, को हि तद्वेद यदमुष्मिँल्लोकेऽस्ति वा न वा । इस प्रकार जब स्वयं वेद ही परलोक के विषय में संशयग्रस्त है तो उसको प्रमाण मानने वाला संसार परलोक में कैसे विश्वास करे? इसे श्रीहर्ष ने इस तरह कहा है :—

को हि वेत्ताऽस्त्यमुष्मिन् वा लोक इत्याह या श्रुतिः ।
तत्प्रामाण्यादमुं लोकं लोकः प्रत्येतु वा कथम् ॥
(नैषध, १७ । ६२)

चार्वाक पुनर्जन्म नहीं मानते । जो शरीर भस्म हो गया, तो फिर कहाँ कौन जाता है, और कहाँ से कौन आता है । अतः परजन्म का भय न रहने से उनके लिए न कोई पाप कर्म है न कोई पुण्य । सुखपूर्वक जीवन बिताना ही उनके लिये आदर्श वचन हो जाता है । चार्वाकों का यह प्रसिद्ध नारा है :—

यावज्जीवेत् सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत् ।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥
(सर्वदर्शनसंग्रह, पृष्ठ २४, श्लोक १८)

इस प्रकार पुनर्जन्म के सम्बन्ध में उनका कहना है कि 'यदि यह आत्मा शरीर से निकलकर परलोक चला जाता है तो बन्धु-स्नेह से आकुल हो फिर क्यों नहीं लौट आता ?'

यदि गच्छेत् परं लोकं देहादेष विनिर्गतः ।
कस्माद् भूयो न चायाति बन्धुस्नेहसमाकुलः ॥
(सर्वदर्शनसंग्रह, पृ० २४, श्लोक १९)

नैषध में चार्वाक इन्हीं सिद्धान्तों को दूसरे शब्दों में देवों के सम्मुख प्रतिपादित करता है—'शान्ति नाम की कौन सी वस्तु है? अरे मूर्खो, प्रिया को प्रसन्न करने के लिये परिश्रम करो । प्राणी एक बार यहाँ मरा तो दुबारा यहाँ नहीं आता, तथा अमुक पाप करने से तिर्यक् (पक्षी) की योनि प्राप्त होती है, इस प्रकार की बातों से क्या भय? अरे, जल में रहनेवाला साँप भी तो अपने आहार-विहार आदि सुख के साधनों से राजा की भाँति सुखी रहता

है।' यथा—

> कः शमः क्रियतां प्राज्ञ प्रियाप्रीतौ परिश्रमः।
> भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥
> एनसानेन तिर्यक्स्यादित्यादिः का बिभीषिका।
> राजिलोऽपि हि राजेव स्वैः सुखी सुखहेतुभिः ॥
> (नैषध १७। ६९, ७२)

कुछ वेदवाक्यों तथा विधियों का उपहास करते हुए चार्वाक भांड़, धूर्त तथा निशाचर को वेद का कर्त्ता मानता है। यथा :—

> त्रयो वेदस्य कर्त्तारो भाण्डधूर्त्तनिशाचराः।
> जर्भरी तुर्फरीत्यादि पण्डितानां वचः स्मृतम् ॥
> (सर्वदर्शनसंग्रह, पृ० २४, श्लोक २१)

नल की राजधानी में अश्वमेध विधि को देखकर कलि को वेदविषयक पूर्वोक्त चार्वाक मत का स्मरण हो आता है। यथा—

> यज्वभार्याश्वमेधाश्वलिङ्गालिङ्गवराङ्कताम्।
> दृष्ट्वाचष्ट स कर्त्तारं श्रुतेर्भाण्डमपण्डितः ॥
> (नैषध, १७।२०४)

इस तरह कतिपय स्थलों में महाकवि श्रीहर्ष ने चार्वाक मतों का शास्त्रार्थ ढंग से प्रतिपादन किया है।

महाकवि श्रीहर्ष ने जिन-जिन दर्शनों का प्रतिपादन अपने महाकाव्य में सप्रसङ्ग या अप्रसङ्ग किया है, वहाँ उन-उन दर्शनों के दृष्टिकोण को ही प्रधान रखा है। अतः चार्वाक-दर्शन के प्रतिपादन से महाकवि श्रीहर्ष को चार्वाकदर्शनानुयायी समझ लेना निरी मूर्खता है।

दर्शन का दृष्टिकोण जब तक सुस्पष्ट नहीं दिखाया जाता तबतक दर्शन का मन्तव्य समझ में नहीं आता है। अतः श्रीहर्ष ने किसी भी दर्शन के सिद्धान्त का प्रतिपादन करने के समय में किसी भी तरह का संकोचानुभव नहीं किया है। उन्हें तो महाकाव्य के माध्यम से प्रसिद्ध दर्शन के सिद्धान्तों का वास्तविक प्रतिपादन करना था। अतएव उन दर्शनों के सिद्धान्तों का खण्डन करने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

वस्तुतः आधुनिक विद्वानों के मतानुसार भी किसी दर्शन का अक्षरशः खण्डन करना महान् अनुचित है और दर्शन के महत्त्व को घटाना है। प्रायः

देखा गया है कि अधिकारि-भेद से या देशकाल के भेद से दृष्टिकोण भिन्न हुवा करते हैं। उन दृष्टिकोणों को संकलित करने पर सभी दर्शन सापेक्ष तात्त्विक ही दीखते हैं।

उद्देश्य-प्राप्ति का सही मार्ग एक ही है किन्तु अधिकारी कोई आगे कोई पीछे कोई बीच में चल रहा है। मार्ग तय करना आवश्यक ही है। सभी तत्त्व-जिज्ञासु एक ही मार्ग के पथिक हैं। प्रायः सभी तत्त्व-जिज्ञासु अपनी साधना से उद्देश्यमार्गारूढ़ होकर पहली सीढ़ी से लेकर अन्तिम सीढ़ी पर पहुंचना चाहते हैं। अतः चार्वाक दर्शन भी उस मार्ग की एक सीढ़ी है, जिसका दिग्दर्शन महाकवि श्रीहर्ष ने अपने नैषधीयचरित महाकाव्य मे कराया है।

अतः चार्वाक दर्शन के प्रदर्शन से श्रीहर्ष की अद्वैत निष्ठा कभी भी उपमर्दित नही होती है। अद्वैत-निष्ठा का समीक्षण वेदान्त दर्शन सिद्धान्त प्रतिपादन के समय मे श्रीहर्ष ने स्वय किया है, जिससे उनका अद्वैत-सिद्धान्त प्रगट अभिमत हो जाता है।

★

# काव्यलक्षणसमीक्षा

श्री द्वारिका नाथ झा
मिथिला-संस्कृत-शोध-संस्थानम्, दरभंगा

इह संसारे दुःखाक्रान्तान् जीवान् विशेषतः कर्तव्याकर्तव्यकर्मकर्तृया-ग्यान् प्रमात् दुःखसागरनिमग्नान् मनुष्यानवलोक्य परमकारुणिकैः रागद्वेषादि-रहितैः त्रिकालज्ञैः सदसद्विवेकशालिबुद्धियुक्तैः जनकल्याणमात्रैकचित्तैः दयालुभि ऋषिभिः जनकल्याणाय नाना शास्त्राणि प्रणीतानि । तानि शास्त्राणि लौकिकानि कथ्यन्ते । सकलशास्त्रविषयान् समूहालम्बनेन एकत्र समावेश्य प्रणीत साहित्यम्, सौलभ्येन सुकुमारबुद्धिगम्यम् । अतएव लौकिकेऽस्मिन् शास्त्रे लोकव्य-वहारानुकूलविषयाणमेव समावेशः विद्यते । नैकोऽपि विषय एवभूत शास्त्रेऽ-स्मिन् दृष्टिपथे आयाति य लोकविरुद्धो भवेत् ।

यद्यपि केचन कथयन्ति यत् संस्कृतशास्त्राणां सामाजिकजीवने न किमपि प्रयोजनं नवोपयोगित्वं विद्यते । इमानि हि शास्त्राणि केवलं बुद्धिविनोदकानि विद्यन्ते, मिथ्याकल्पनामात्रविषयाणि जीवनेऽव्यवहारयोग्यानि सन्ति इति परन्तु इद प्रौढिवादमात्रम् । यतोहि शास्त्रेषु नैकोऽपि विषय एतादृश वर्णितोऽस्ति यस्य सामाजिकजीवने, वैयक्तिकजीवने वा उपयोगिता न भवेत् । किमधिक मानवजीवनस्य गर्भाधानादारभ्य मरणान्त यावत् सुखमय जीवनार्थ यानि-यानि आवश्यकानि वस्तूनि उपयुक्तानि तानि सर्वाणि उदाहर-णरूपेण शास्त्रे परिलसितानि सन्ति । अनुपयुक्तान्यपि वस्तूनि प्रत्युदाहरणरूपेण विद्यन्ते । यथा, रामादिवत् प्रवर्तितव्य न रावणादिवत्' । अतएव लिखितमस्ति "यन्न भारते तन्न भारते" इति । अनुभवसिद्धप्रयोगसिद्धक्रमबद्धज्ञानमेव शास्त्र-पदेन कथ्यते । अतः शास्त्रनिबद्धविषयाः सर्वे सामाजिकप्रयोगसिद्धाः अनुभव-सिद्धाश्च विद्यन्ते ।

तस्यैव साहित्यस्य अपरा सज्ञा काव्यमिति । तच्च काव्य किमिति जिज्ञासायां काव्यशास्त्रपर्यालोचनया विभिन्नाचार्याणां शाब्दिकवैमत्यानि परिलक्ष्यन्ते । तथाहि :—

१. कविर्मनीषी परिभू स्वयम्भूः अर्थात् कवेः कृतिः काव्यम् ।। यजुर्वेदे ।

२. सक्षेपात् काव्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली ।
काव्यं स्फुटदलंकारं गुणवद्दोषवर्जितम् ।।

निर्दोषं गुणवत्काव्यमलंकारैरलंकृतम् ।
रसान्वितं कविः कुर्वन् कीर्तिं प्रीतिं च विन्दति ॥ अग्निपुराणे ।

३. शरीरंतावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली काव्यम् ॥ दण्डी ।

४. काव्यं रसादिमद् वाक्यं श्रुतं सुखविशेषकम् ॥ केशवमिश्रः ।

५. निर्दोषं गुणवत्काव्यमलंकारैरलंकृतम् ।
रसात्मकं कविः कुर्वन् कीर्तिं प्रीतिं च विन्दति ॥ भोजराज : ॥

६. गुणवदलंकृतं च वाक्यमेव काव्यम् ॥ राजशेखरः ।

७. वाक्यं रसात्मकं काव्यम् ॥ विश्वनाथ : ।

८. निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणगुम्फिता ।
सालंकाररसानेकवृत्तिर्वाक् काव्यनामभाक् ॥ चन्द्रालोके जयदेवः ।

९. रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम् ॥ जगन्नाथ. ।

१०. शब्दार्थौ सहितौ काव्यं गद्यं पद्यं च तद्द्विधा ॥ भामहः ।

११. शब्दार्थौ काव्यम् ॥ रुद्रटः ।

१२. रीतिरात्मा काव्यस्य ॥ वामनः ।

१३. तस्याभावं जगदुरपरे भाक्तमाहुस्तमन्ये ।
केचिद् वाचां स्थितमविषये तत्त्वमूचुस्तदीयम्
तेन ब्रूमः सहृदयमनःप्रीतये तत्स्वरूपम् ॥ आनन्दवर्धनः ।

१४. शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि ।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणि ॥ कुन्तक : ।

५. तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि ॥ मम्मट : ।

१६. अदोषौ सगुणौ सालंकारौ च शब्दार्थौ काव्यम् ॥ हेमचन्द्र : ।

१७. साधुशब्दार्थसन्दर्भगुणालंकारभूषितम् ।
स्फुटरीतिरसोपेतं काव्यं कुर्वीत कीर्तये ॥ वाग्भट : ।

१८. तत्र निर्दोषशब्दार्थगुणवत्त्वे सति स्फुटम् ।
गद्यादिबन्धरूपत्वं काव्यसामान्यलक्षणम् ॥ अच्युतरायः ।

१९. सगुणालंकृती काव्यं पदार्थौ दोषवर्जितौ ॥ धर्मसूरि : ।

२०. काव्यं विशिष्टशब्दार्थसाहित्यं सदलंकृति ॥ क्षेमेन्द्र : ।

२१. गुणालंकारसंयुक्तौ शब्दार्थौ रसभावगौ ।
नित्यं दोषविनिर्मुक्तौ काव्यमित्यभिधीयते ॥ न्यायवागीशः : ।

२२. अनुभावविभावानां वर्णना काव्यमुच्यते ॥ महिमभट्टः ।

उपर्युक्तकाव्यलक्षणानां पर्यालोचनेन वैमत्यं तु परिलक्ष्यत एव । केचन आचार्याः शब्दमात्रं केचन पुनः शब्दार्थौ उभयम् इति कथयन्ति, एवं काव्यस्या-

त्मानं केचन रसं, केचन ध्वनिं, केचन अलंकारम्, केचन रीतिं केचन वक्रोक्तिं च कथयन्ति । सर्वेषां मते युक्तयः सन्ति, परन्तु वयं सामाजिकाः व्यवहर्तारः कस्य मतं समीचीनमवगत्य व्यवहरिष्यामः इत्यस्ति महान् विचारणीयो विषय । तत्रेत्थं विचार्यते :—

पूर्वमेवोक्तं यत् शास्त्रमिदं लौकिकं विद्यते । तथा च लोके दृश्यमाना एव विषयाः शास्त्रे निबद्धाः सन्ति नतु लोकविरुद्धाः । यदि कश्चिद् विषयः लोकविरुद्धो भवेत् तदा न स विषय आदरणीयः । अतएवोक्तं :— "यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं नाचरणीयम्" इति । यथास्माकं पाञ्चभौतिकं शरीरं क्षित्यप्तेजोवाय्वाकाशैः निर्मितं तथैव काव्यस्यापि शरीरमस्ति शब्दार्थोभयम् । यतोहि शब्दार्थयोः नित्यः सम्बन्धः । नहि कुत्रापि शब्दः अर्थं विना प्रयुज्यते, नवार्थं विना शब्दमात्रेण कस्यापि हृदयस्य भावाभिव्यक्तिः सम्भाव्यते । अतएव :—

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये ।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥

इति महाकविकालिदासेन कथितम् । नहि कोऽपि आचार्यः अर्थरहितं शब्दं काव्यं कथयति । यः कोऽपि शब्दं काव्यं कथयति तस्यापि अयमेवाभिप्रायः यत् शब्दः अर्थेन सहैव स्थास्यति अर्थोच्चारणं व्यर्थमेव ।

अतः काव्यस्य शरीरं शब्दार्थोभयतत्त्वात्मकम् इति । एवं च यथास्माकं पाञ्चभौतिके शरीरे अन्तःकरणपदवाच्याः मनोबुद्ध्यहंकाराः विद्यन्ते, तथैव काव्यशरीरे अभिधा लक्षणा व्यञ्जनेति । यथास्माकं शरीरे सौन्दर्यवर्धका वस्त्राभूषणादयः भवन्ति तथैव काव्यशरीरे सौन्दर्यवर्धकाः शब्दालंकारा अर्थालंकाराश्च विद्यन्ते । यदि शब्दमात्रमेव काव्यं भवेत् तदा अर्थालंकारस्य किं प्रयोजनं भवेत् । अतोऽपि सिद्ध्यति शब्दार्थोभयं काव्यमिति । यथा समाजसंघटनार्थं विभिन्ने समाजे विभिन्नाः रीतयो भवन्ति तथैव काव्येऽपि गौड्यादयो रीतयः । यथास्माकं शरीरे नाना दोषाः गुणाश्च विद्यन्ते तथैव काव्यशरीरेऽपि दोषाः गुणाश्च भवन्ति । यथैवास्माकं ज्ञानेन्द्रियद्वारा तत्तद्विषयाणां प्रत्यक्षं जायते तथैव संयोगादिद्वारा काव्येऽपि अर्थोपस्थितिः भवति ।

यथैवास्माकं शरीरे निराकारः सच्चिदानन्दस्वरूपः व्यापकः अतीन्द्रियः आत्मा विद्यते तथैव काव्यशरीरेऽपि आत्मा अस्ति । स च रस एव युक्तियुक्तः । अलंकाराः न आत्मपदव्यपदेश्याः भवितुमर्हन्ति तेषां व्यापकत्वाभावात् साकारत्वाच्च । रीतयोऽपि संघटनाविशेषरूपाः साकाराः अव्यापकाश्च सन्ति नात्मपदव्यपदेशयोग्याः । गुणा अपि तथैव क्वाचित्काः भवन्ति, अतएव

नात्मपदव्यपदेश्याः। वक्रोक्तिस्तु अलंकारविशेषरूपा नात्मपदव्यपदेश्याः। तथैव ध्वनिरपि।

यथा दर्शनशास्त्रेषु "अधिकारिभेदात्"[1] ज्ञानस्य सोपानपरम्परावगम्यते। तथाहि – न्यायवैशेषिकयोः प्रत्यक्षस्थूलविषयाणां प्रथमं निरूपणम् ततः सूक्ष्मविषयस्य सांख्ये निरूपणम्, ततोन्ते ब्रह्मोपदेशः विद्यते। तथैव काव्येऽपि काव्यात्मनः प्रसङ्गे अधिकारिभेदात् शनैःसोपानपरम्परा परिलक्ष्यते। अलंकारादिस्थूलविषयानारभ्य अन्ते सूक्ष्मतममानन्दस्वरूपं रसमेव आत्मपदव्यपदेश्यं कथयन्ति। उपर्युक्तलौकिकव्यवहारतः युक्ततरं प्रतिभाति। अतएव "रसो वै सः" इति संगच्छते। एवं सूक्ष्मेक्षिकया वैमत्यमपि अधिकारिभेदानेव प्रतिपादयति न तु वास्तविकं वैमत्यम्। सर्वेषामाचार्याणां रस एव काव्यस्यात्मा इत्यत्रैव तात्पर्यम्। गुणालंकारादयः रसाभिव्यञ्जकाः रससमीपस्थाः विद्यन्ते। यथाः बुद्ध्यादयः आत्मप्रकाशिकाः तथैव। एवं च बुद्ध्यादितः आत्मा भिन्नः पदार्थः। यथा एव गीतायां भगवान् श्रीकृष्णः अर्जुनं प्रति कथयति :—

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥

अर्थात् तथैव गुणालंकारादितो भिन्नः रस एव काव्यस्यात्मा।

# रोग-शान्तिक हेतु किछु परीक्षित उपचार

**श्री गङ्गानाथ झा**, दीप, मधुबनी

१. **खूनी बबासीर**—रवि दिन प्रातः चिरचिड़ी (अपामार्ग) उपाड़ि ओकर जड़िक छालकें भगवान सूर्यक ध्यान कए पवित्र स्थानमे सिलौट पर पीसि एक छिम्मड़ि पाकल केराकें सोहि पाँच-छओ ठाम ओ पिसलाहा औषध गहि अभुक्तमे खाए ली। एक घंटाक बाद भोजन कए सकैत छी। फेर एहिना दोसरो रविकें ई औषध खाइ। खूनी बबासीरमे अत्यन्त लाभ होइत छैक। दूसँ तीन रविमे छूटि जाइत छैक।

२. बबासीर (बादी), भगन्दर, कुष्ठ—सबा बीत उजरा कपड़ा (खूब पातर) कें उजरा आकक दूधमे मंगल दिन हनुमान जीक ध्यान करैत भिजाबी एवं ओकरा सुखाकए बाती बनाबी। एक-डेढ़ कनमा गायक घी चिराकमे ढारि बाती नेसि ढकनासँ झाँपि काजर बनाबी। ओहि काजरकें ओहि चिराकक बचलाहा घी ओ जरलाहा बातीक संग नीक जकाँ मिलाय मलहम बनाबी। एहि मलहमक लगओलासँ पुरान-सँ-पुरान घाओ, कुष्ठ, बबासीर (शूली) ओ भगन्दर छूटि जाइत छैक। एक सप्ताह साँझ-प्रात लगाबी वा आवश्यकतानुसार अधिको दिन लगाबी। बबासीर ओ भगन्दरमे मलहम लगओलाक बाद घाओमे धूमनक धूँआ लगाबी आ सप्ताह भरि केवल खिच्चड़ि भोजन करी।

३. गलफुल्ली—उजरा करवीरक सीरक छाल, सोंठि, बजौंड़ीक कन्द तमाकूक पात ओ मसब्बरकें पीसि हींग मिलाए गरम कए लगओलासँ भयानको गलफुल्ली छूटि जाइत छैक। तीनि घंटा पर पुनः लगाबी। बजौंड़ी जँ नहि भेटय तथापि औषध बनाबी, लाभ होयत।

४. प्रदर—तिलकें भिजाए खोंइचा साफ कए सुखा ली। मिसरीक संग एक भरि ओ तिल फाँकि गायक दूध वा जलक संग खा जाइ। साँझ-प्रात सेबन कएलासँ प्रदर (रक्त वा श्वेत) छूटि जाइत छैक। ई एक अपूर्व पौष्टिक औषध थिक। दाड़िमक फूल वा पात चीनीक संग खएलासँ सेहो प्रदर छूटैत छैक।

५. रद्द—नारिकेरक फूल (१०टा)कें डाहि (करछु, तव आदिमें) मधुक संग बाटि जाइ। १ घंटापर तीन खेप सेवन कएलासँ रद्द (वमन) छूटि जाइत छैक, विशेषतः बच्चाक रोगमे।

६. पेटमे वायुक रुकावट—चूनक पानिकें गर्म कए कनेक चीनी ओ नोन दए पिउलासँ मलावरोध, वायुक अवरोध ओ मूत्रक अवरोध (रुकब) छूटि जाइत छैक। मात्रा—बच्चाक हेतु एक चम्मच कए १० मिनट पर। चेतनक हेतु चारि चम्मच।

७. कानक टनकब—भाँटिक एकटा पातकें मोड़ि कामिसँ पूड़ा बनाए ओकर बिचला खाली जगहमे नामानामी ओकरे पात सभकें सजाबी। एवं क्रमें ओ एक गसल कमलक फूल सन भए जाएत। ओहिपर गोइठाक कहकह आगि दए दियैक। तखन ओहिसँ नीचा बाटें शीतल रस चूबए लागत जे सोझे कानमे खसय। कन-टनकी छूटि जाएत। सजमनिक पातक डाँटकें मे करी, जखन ओ मौलाए जाए तँ मलिकें रस बहार करी। एहि रससँ तुरत कनटनकी छूटि जाएत। ई रस बहुत दिन धरि स्वच्छ रहि सकैत अछि।

८. माथक दर्द—दनूफ (द्रोणपुष्प वा गूमा)क फूल मलिकें सूँघी। माथक दर्द छूटि जाएत।

९. दस्त—अपामार्ग (चिरचिड़ी)क सीरकें १ टा मरीचक संग पीसि पीबि जाइ। १सँ २ चोटमे दस्त रुकि जाएत।

१०. अमानसए—सिमरक पातकें १ गिलास जलमे मथि छानिकें साँझ-ागन पीबी। ७ खोराकमे अमानसए छूटि जाएत।

११. अरुचि—दनूफक साग खएलासँ रुचि अबैत छैक।

●

## जीवन-संगीत

श्री लोकपति सिंह

बीति रहल जीवन क्षण प्रतिक्षण
एक स्वप्नमय मानवँ जीवन
संत समागम शास्त्रक चर्चा
चिन्तन मनन अध्ययन अर्चा
बहु विधि ताकल किन्तु न भेटल
लक्ष्य कतौ की सत्य चिरतन
एक स्वप्नमय मानल जीवन

जन्म जरा ओ मरण नियत अछि
माया ममता प्रेम कपट अछि
मन अतृप्त उन्मद आकाक्षा
सुख-दुख मधुरिम आशा क्रन्दन
एक स्वप्नमय मानव जीवन

शैशव अरुणिम मधुरिम क्रीड़ा
दु ख दैन्य नहि किंचित व्रीडा
जीवन भरि झमार लगलोपर
विस्मृत नहि हरियर ओ प्रतिक्षण
एक स्वप्नमय मानक जीवन

बालसखा औ गाछ बृक्ष सभ
खत्ता खुत्ती बोन झार सभ
खेल धूप ओ खान पान रत
संन्ध्या प्रात गति सदच्छम
एक स्वप्नमय मानव जीवन

शैशव सन सुख नहि जीवन भरि
झड़लहुँ जखन तखन बुझलहुँ धरि
नव नव आशा नव आकाक्षा
अर्जित ऊर्मिल प्रतिक्षण कण कण
एक स्वप्नमय मानव जीवन

जन मानस यदि शुद्ध रहय तऽ
माया ममता क्रोध हटय जँ
स्वर्ग बनत क्षणमे ई धरती
मानव धर्मक हो यदि चिंतन
बीति रहल जीवन क्षण प्रतिक्षण

## महावैयाकरणक किछु काव्यकृति

### गीत

१

लेल सतत तुअ जे जन नाम। पाओल भगवति! से मनकाम॥
चरन कमल तुअ करु परनाम। जीतल भगवति! सुरवरधाम॥
पाप हरनि तुअ मन्त्रक जाप। जे कर भगवति! से हर ताप॥
चित लगाय तुअ जे कर ध्यान। पाओल भगवति से सुख खान॥
करिअ उधार अगति मोहि जानि। मन दय भगवति! दिनबन्धु मानि॥

२

शङ्कर! त्रिभुवननाथ! आसे एक तोहर
भेलहुँ अगति कय पाप, शरन नहिं दोसर॥
तोहें शिव अभरन जाल, भसम लगाओल॥
तेजि अमृत तत्काल, विषहि बढाओल॥
भावय वास मसान, रुच न रतन घर।
भूत प्रेत तुअ दास, अनुखन अनुचर॥
हमरहु केओ नहि राख, जानि दुरित घर।
शरन देहु 'दिनबन्धु', देहु अभय वर।

३

जयसि भगवति! भक्ततारिणि! वैरिवारिणि हे॥ ध्रु०॥
पादलम्बित-चिकुरधारिणि! कोटि-दिनकर-भासिनी।
अभय-वर-करवाल-मानुषमुण्ड-धारिणि हे॥ १॥
करमयाङ्कुतकाञ्चिशालिनि! वेदबाहुविराजिनी।
भाषणं ललदुग्ररसना-घोरहासिनि हे॥ २॥
शयितशवगत-पद-सरोजिनि! घनघनाघनरोचिनी।
योगिनी-गण-सङ्ग-रुचिर-स्वैरचारिणि हे॥ ३॥
कामिके! 'ललितेश'-पालिनि! देवि! किल्विषनाशिनी।
'दीनबन्धु' जनानुकम्पिनि! भवसुधारिणि हे॥ ४॥

४

जयति दारुणवेषधारिणि ! खड्गपाशिनि हे ॥ ध्रु० ॥

भुवनभीषण-सिंह-नादा दनुधैर्यविलोपिनी ।
त्वमसि रक्तनिमग्ननयना, दैत्यगञ्जिनि हे ॥ १ ॥

शुष्कमांसभयानकाकृतिरसुरसमुदयपेषिणी ।
द्वीपचर्मपरं वसाना चण्डधाविनि हे ॥ २ ॥

मनुजमालाकलितदेहा त्वमसि दानवराविणी ।
अतिकराल-सुरारिभीकरघोरवक्त्रिणि हे ॥३ ॥

नादपूरितसकलदिङ्मुखमट्टहासविधायिनी ॥
सिद्धमुनिबहुविस्मयप्रद-कर्मकारिणि हे ॥ ४ ॥

अतुलखर्वावयवहस्ता लोलरसनाशालिनी ।
हस्तनीतसुरारिरथगजवाजिचर्विणि हे ॥ ५ ॥

भक्त-'ललितेशानु'मोदिनि, चण्डमुण्डविनाशिनी ।
'दीनबन्धु' जनैकपालिनि, चित्ररूपिणि हे ॥ ६ ॥

## अभिज्ञानशाकुन्तलक अनुवादक एक अंश

पाँड़रि फूल सुगन्धि समीर । जासु मुदित मन गरिब-अमीर ।।
जल अवगाह करय सुखलीन । छायादेश सुलभ अछि नीन ।।
एहन समय देखि हरखीय । ग्रीषम दिवस अन्त रमणीय ।।

नटी— (ई कहि गबैत अछि)—

सिरिस कुसुम प्रमदा जन लय-लय करइछ अभरन कान ।
क्षणभरि भमर जासु अतिकोमल केसर रस कर पान ।।
यदपि कमल सन कोमल करतल तदपि परस अगुताय ।
'दीनबन्धु' भन जेहन अङ्ग मृदु ता सम भूषण पाय ।।

सूत्र०— वाह ! बहुत उत्तम गाओल । देखू, अहाँक गीतरागसँ सभक चित्तवृत्ति एहन आकृष्ट भेल जाहिसँ सभ दिश रङ्गभूमि लिखल जकाँ स्थिर भय गेल अछि । तेँ सम्प्रति आब कोन नाटक देखाय एहि सभाकेँ प्रसन्न करी ?

नटी— अहाँ तँ पूर्वहि आज्ञा देल जे अभिज्ञानशाकुन्तल नाम अपूर्व नाटक देखाओल जाय ।

सूत्र०— हे आर्ये ! अहाँ नीक स्मरण कराओल । एखन से हम बिसरि गेल छलहुँ । हेतु जे —

गीतरागसँ हम अहिंक, अपहृत भेलहुँ तुरन्त ।
दौड़इत मृगसँ ई जेना, महाराज दुष्यन्त ।।
(ई कहि सभ बाहर भय गेल)
।। प्रस्तावना समाप्त† ।।

जय दरभङ्गापरिवृढगङ्गाधरकृतसङ्गावरणमते
विलसदनङ्गाधिकलसदङ्गाधिकबुधसङ्गादधिकमते ।
नरदरभङ्गाभ्युदितपतङ्गायितगुणतुङ्गातुलितमते
कलय शुभङ्गामहितविभङ्गामबगुणसङ्गाम्नवनिपते ।।

---

† एतबहि उपलब्ध भेल । —सम्पादक ।

# महावैयाकरण स्व० दीनबन्धु झा : एक संस्करण-स्वरूप श्रद्धाञ्जलि

डा० काञ्चीनाथ झा 'किरण'
अध्यक्ष, दीनबन्धु-शताब्दी-समारोह-समिति

१९२३ ई० क बात थिक। काशी-हिन्दू विश्वविद्यालयस्थ मै० मा० समिति द्वारा चन्द्रग्रहण प्रकाशित भेल आ लगले गीतक संग्रह। दुनू पोथी पातरे-छीतर, मुदा बाझिक बेटा जकाँ लोकक ध्यान आकर्षित कय लेलक। मैथिलीक पहिले सस्था अपन जीवन्त स्थितिक परिचय देने छल। समितिक सदस्य थोड़े छल, सेहो विशेष रूपें छात्रे। परंच से मिथिला-व्यापी। अत एकर ख्याति अनायास भय गेल रहय।

गरमीक छुट्टीमे गाम आयल रही। एक दिन स्व० पं० श्रीवल्लभ झा अपन कृतिक प्रसंग कहलनि, जकर प्रकाशन चाहैत रहथि। संगमे दोसर छलथिन—स्व० पं० कविबन्धु जीवनाथ झा। जीवनाथ बाबू महावैयाकरणजीक लिखल 'मिथिलाभाषाविद्योतन'क पहिल भाग, जे १९२५ ई० मे छपल छल दैत एकर शेष भाग छपयबाक विषयमे कहने छलाह।

ओ लोकनि मैथिली-साहित्य-समितिकें काशीस्थ महारानी द्वारा पोषित मानि लेने छलाह, मुदा जखन एकरा उपार्जनहीन छात्रक संस्था बुझलनि तँ विस्मित भय सहयोगक शुभकामनाक आश्वासन दय चल गेलाह।

श्रीवल्लभ बाबू तँ शीघ्रे स्वर्गीय भय गेलाह तञ निकटताक अवसरे नहि आबि सकल।

जीवनाथ बाबूक निश्छल-निर्मल स्वभाव ओ विमल वैदुष्यक संग कवि-हृदय हमर हृदयमे आसन जमा लेलक। प्रायः हमर स्वावलम्बी उत्साह हुनको पसिन्न पड़लनि। समवयस्कता स्नेह कें गाढ़ बना देलक। आह दु:ख एतबे जे ओ चल गेलाह आ हमरा संग नहि कयलनि, अस्तु।

जीवनाथ बाबूक द्वारा देल मिथिला भाषा-विद्योतनक छपल पहिल भाग देखिते एक असाधारण श्रद्धा उमड़ि आयल एकर रचयिता स्व० महावैयाकरणजीक प्रति। १९२५ ई० में नें कैओ मैथिलीक संस्था स्थापितो करबाक

प्रयत्न नीक जकाँ कयने छल, ने कोनो धनवान पुरस्कारक घोषणा कयने छलाह।

मैथिल समाजक भावना जेना बाँझ भय गेल रहैक। बहेड़ाक एक स्व० उदित नारायण दास बी० ए०, बी० एल०, काव्यतीर्थ कें अपन ओकालति सँ अर्जित धनकें "श्रीमैथिली"क प्रकाशन मे लगबैत पौलहुँ आ अपन चिन्तन-शक्ति तथा समय कें लगबैत ई महावैयाकरणजी भेटलाह।

ओ श्रद्धा पुष्ट होइत असीम भय गेल १९४७ ई० क बाद, तीन-चारि घटनाक कारणें। १९४७ ई० मे मैथिली-साहित्य-परिषदक प्रधान मन्त्री निर्वाचित भेलहुँ। से बात स्व० रमानाथ बाबू कें नहि पसिन्न भेलनि। नहि पसिन्न होयबाक कारण की छल से आइ धरि हम नहि जानि सकलहुँ। यदि स्पष्ट रूपें बूझल होइत तँ हम हुनका सन्तुष्ट करबाक यत्न स्वयं करितहुँ। ओ हमर निकटतम पड़ोसी छलाह। सम्बन्धो बड़ दूरक नहि छल आ सम्बन्धमे श्रेष्ठ छलाह। विद्वान छलाह। हुनका सँ हम अङरेजी पढ़ने छलहुँ। समवयस्क रहबाक करणें बाल्यावस्था सँ बादो धरि सतरंज आदि खेलमे आनन्द लैत छलहुँ। हुनक मायक वात्सल्य-सरितामे कैक दिन समान रूपें अवगाहन करबाक अवसर भेल छल! परंच ओ विमुख भय गेलाह मैथिली साहित्य परिषदक क्षेत्रमे। सोझे विमुख नहि, सक्रिय विरोधी।

हमर वैयक्तिक हानि टा जँ करैत रहि जैतथि तँ मैथिलीक हानि नहि होइत, मुदा ततबे नहि कय हमर द्वारा मैथिली-साहित्य-परिषदक कोनो काज नहि होबय पाबय तेहन प्रयत्न होबय लागल।

हमर कार्यक्षेत्रक एक प्रमुख क्षेत्र अपन इलाका अर्थात् सोतिपुरा छल। अत: एक मौखिक बुलेटिन सँ प्रसारित भेल जे किरणजी सोतिकें गारि पढ़ैत छथिन, ताहि सँ रमानाथ बाबूक संग विरोध छनि। ई बात महावैयाकरणजीक कानमे पहुँचौल गेल।

महावैयाकरणजी सोझे-सोझ हमरा पुछलनि, "अहाँ सोतिकें गारि पढ़ैत छिऐक? हम सुनल अछि!" हमहू चकित होइत प्रश्ने कय देलिअनि, की अपने इहो सुनल अछि जे काञ्चीनाथ भाङ, गाँजा वा ताड़ी-दारू पिबैत छथि?

ओ—नहि।

हम—की अपने हमरा बताह बुझैत छी?"

ओ—नहि!

हम —की अपने हमरा बेकूफ मानैत छी ?

ओ —नहि !

हम —तखन हम सोतिकें गारि पढ़बैक आ ओ तदर्थ क्रुद्ध भय उठनाह तकर आधार ? सासुरेटामे अन्तर अछि किने ?

आन रहैत तँ सोझे क्रुद्ध भय उठैत । परंच महावैयाकरण जी निष्ठावान् तथा पैघ सोति रहैत सत्यताक अन्वेषण कयलनि । सेहो वक्र बाट सँ नहि, सोझे हमरा पूछि कय आ हमर तर्कसंगत उत्तरेपर ओहि बुलेटिन कें फूसि मानि लेलनि; पुनः प्रसन्न मुद्रामे पुछलनि, "अहाँ कें हुनक संग समझौता नहि भय सकैछ ?"

"मैथिलीक क्षेत्र मे हुनका हम गुरु अथवा नेता टा नहि मानि सकैत छिअनि। एहिसँ भिन्न सभ सर्त हमरा स्वीकार अछि।" हमर उत्तर छल ! ओ हास्यमुखमुद्रामे मनसँ काज करबाक लेल कहि देलनि ओ हमर सहयोगार्थ परीक्षामन्त्रीक भार लेब सकारि लेलनि, अन्यथा हुनका विभागीय मन्त्री बनयबाक धृष्टतापूर्ण पाप हम कोना करितहुँ ।

हम अपन इष्ट-मित्रक सहयोगें केन्द्र स्थापित करैत गेलहुँ से दूरसँ दूर चम्पारन, मुंगेर, पुर्ढ़ैनिया सँ अलीगढ़ धरि । छात्रक संख्या हजार के लगिच देलक । परीक्षा-विभागक काज बहुत बढि गेलैक । अथच परिषदकें धन नहि जे हम वेतन-भोगी कर्मचारी देबनि । मुदा महावैयाकरण जी परीक्षाके तेना तन-मनसँ चलबय लगलथिन जे हृदय श्रद्धासँ उमटाम भय गेल तहिआक कोनो परीक्षा संस्था एतेक दक्षतासँ नहि चलैत छल । हुनक व्यक्तित्व परीक्षाक गरिमाकें अनायास बढा देलकैक ।

एक बेर, ओहि समयमे सरिसवमे मैथिली-साहित्य-परिषदक विशेष अधिवेशनक प्रयत्न कयल । स्वागत समिति गठित भेल । स्वागताध्यक्ष भेला स्व० पं० बदरीनाथ झा आ स्वागतमन्त्री कथाकार श्री मनमोहन झा स्वागत-समितिक रसीद छपा गेल । से समाचार प्रकाश मे आयल ।

चन्दा करब आरम्भ होयत कि कोनो मन्त्र कविशेखर जी तक कें मौन बना देलक । श्री मनमोहन बाबू तँ तगेदो कयला पर स्वागत समितिक बैसक नहि बजौलनि, परंच किछु दिनक बाद सरिसव संस्कृत पाठशाला पर एक सभाक आयोजन भेल । इलाकाक बहुत व्यक्ति बजौल गेल रहथि ।

एक विशाल साहित्यिक समारोह आयोजित करबाक प्रस्ताव राखल गेल ओ निर्णय भेल । खर्चक बजेट बनल जे मैथिलीक समारोहक लेल अभूतपूर्व छल ।

हम बिस्मित अवश्य भय गेल रही । माथ सतर्क छल । प्रश्न कयलिअनि, ई समारोह कोन उपलक्ष मे होयत ? एकर उद्देश्य की रहत ? आ' आयोजन के करत ?

ओहि सभाक आयोजक लोकनि मे प्रमुख वक्ता श्री मनमोहन बाबू छलाह । हमर कथा के अनसुनल जकाँ कय आमन्त्रणीय व्यक्तिक उल्लेख आरम्भ भेल ।

महावैयाकरण जी सबल स्वर मे कहलथिन, "पहिने काञ्चीनाथ बाबूक प्रश्नक उत्तर पर विचार करू । प्रश्न बड़ संगत छनि । उद्देश्यहीन समारोह असगत बात थिक । बिनु उद्देश्य बुझने केओ चन्दे कोना देत ? ओहि सभाक आयोजक लोकनि विचित्र परिस्थिति मे पड़ि गेलाह । कहलथिन— "उद्देश्य तँ मैथिलीक उत्थाने रहत ।"

महावैयाकरण जी—एक दिनक समारोह कतेक उत्थान कय सकत ?

मनमोहन बाबू—तँ कोनो सस्थाए बना देल जाय !

हम—मैथिली साहित्यक उत्थानक लेल एक नव सस्थाक गठन उद्देश्य रहन से संगत हयत ?

मैथिली साहित्यक उत्थानक लेल नवीन एक सस्थाक स्थापनाक नाम सुनिने स्व० भवनाथ झा (प्रधानाध्यापक, सरिसव हाइ स्कूल) उत्तेजित भय गेलाह । कहलथिन, "मैथिली-साहित्य-परिषद हमरो सभक संस्था थिक । एकर अधिकारी अक्षम सिद्ध होयताह तँ बदलि देबनि । मुदा ओकर समानान्तर दोसर संस्थाक हम घोर विरोध करब ।"

महावैयाकरण जी विस्मित सन स्वर मे कहलथिन, ओऽऽऽ ! आब बुझबामे आयल !

उठि बिदा भय गेलथिन । सभा विसर्जित भय गेल ।

हुनक महत्ताक परिचयसँ हृदय भरल अछि । एक पोथीक आकार भय लेत । तञ एक-दू प्रसंग मात्रक उल्लेख कय श्रद्धाञ्जलिक इति करब ।

मैथिलीक कोष लग मे छलनि । हम उठा कय देखय लगलहुँ । संयोगवश "उनाह" शब्द पर आँखि पड़ल । अर्थ छलैक "जव-गहूम आदिकेँ बाग कय दोसर वा तेसर दिन पुनः जोतब ।"

हम कहलिअनि—उनाहक अर्थ स्वेदनो होइत छैक । गोबरक उनाह, कुम्भीक उनाह कहबैत छैक ।

महावैयाकरण जी कागज पर ओकरा टीपैत कहलनि, "अओ ! शब्द-कोष करहु, एक-एकटेक वृत्ति लिखल जा सकैछ !- अहाँ हमर व्याकरणकें भवन नहि, भवनक नीव कहैत छी सेहो हम ठीक मानैत छी। पहिने शब्दक स्वरूपक सग्रह तखन ओकर व्याकरण। हम जतबे शब्दक सग्रह कयने छी तकरे ने ओ व्याकरण बनौलहुँ।"

हुनक सदृश प्रकाण्ड वैयाकरण कतेक व्यक्ति मिथिला मे छल ! हुनक पुत्रक समवयस्क हम तथापि हमर कथनकें ग्रहण कय लेलनि — अपन व्याकरणकें अपूर्ण स्वीकार कय लेलनि ! ई महत्ता छल हुनक। बालादपि सुभाषितम् एहने महान् विद्वानक कथन थिक।

स्व० रमानाथ बाबूक 'मिथिला भाषा प्रकाश' मे (जकर आधार महा वैयाकरण जी क व्याकरणे थिक) सन्धिक लक्षणमे हम अव्याप्ति दोष देखा देलिअनि, आ' हमर कथन सगत अछि तथापि ओ ओकर संशोधन नहि कयलनि। फलत ओ दोष छनिहे।

एक बेर शारदीय नवरात्रिक विसर्जन विवादास्पद भय गेल छलैक। लोहना पाठशाला पर निर्णयार्थ सभाक आयोजन भेल। सभाक अध्यक्ष छलाह महावैयाकरण जी।

निबन्धकारो लोकनि मे एकवाक्यता नहि भेटल। परिणाम भेल विद्वान मे दू मतक उपस्थिति। मत लेबाक पप्प होबय लागल। स्व०बन्धु जीवनाथ बाबू अल्पमत मे छलाह। हमर मत हुनक विरोध मे छल। अतः ओहि अप्रिय स्थितिकें टारबाक लेल हम निबन्धकारे मे मत लेबाक प्रस्ताव राखलहुँ। सभ एकरा सहर्ष मानि लेलनि परन्तु एहसँ स्व० जीवनाथ बाबूक मत अमान्य होइत छलनि। अतः ओ कहलनि, "निबन्धकारो तँ विद्वाने छलाह। हमहु लोकनि विद्वान छी। निबन्धकें छोड़ि विचार करू!" "यदि पहिनेक विद्वानकें हम सब मोजर नहि देबनि तँ हमरो सबक बातकें नवका काटि देत। विद्वाने तँ ओहो रहत ! तखन धार्मिक कृत्यक स्थिरता रहि सकत ?"— हमर उत्तर छल।

स्व० जीवनाथ बाबू चुप भय गेलाह। एहिपर महावैयाकरण जी कहलनि, "किरण जी, अहाँ तँ स्वयं आदिएमे वैद्य ओ कवि कहि अपनाकें धर्मशास्त्रक क्षेत्रमे अनधिकारी कहने छलिऐक। तखन विचारे मे भाग कियैक लैत छिऐक ?"

हमर हृदय पर चोट लागि गेल। हम कहलिअनि, "हम अनाहूत नहि आयल छी। अपने अध्यक्ष छी। हमरा चुप भय जाय कहब तँ हम चुप भय जायब। हमरा चल जाय कहब तँ हम चल जायब। मुदा हम तावत काल धरि अधिकारी यावत काल धरि हम पातीक अर्थ ठीक-ठीक लगबैत छी। महावैयाकरण जी चुप भय गेलाह। निबन्ध-कारक बहुमतक आधार पर निर्णय भेल।

राति जखन सूतय गेलहुँ तँ सभाक घटना मनमे परिताप उत्पन्न कय देलक। महावैयाकरणजीक प्रति असीम श्रद्धा हृदयमे राखैत ओहन उत्तर कियैक देलिअनि ? मन अपनाकेँ अपराधी जकाँ मानय लागल।

प्रात हम स्कूल सँ बिदा भेलहुँ तँ महावैयाकरण जी पर नजरि पड़ल। अपराधी जकाँ हुनक दृष्टि बचबैत अस्पताल दिसि घुमि गेलहुँ। परंच हुनक शब्द कानमे पड़ल, "काञ्चीनाथ बाबू ! एमहर आयब।"

अपराधी जकाँ धरती दिस ताकैत हुनक लग जा' कय ठाढ़ भय गेलहुँ। मनमे होइत छल जे हमरा उद्दण्ड कहि गञ्जन करताह। से एतय चुपचाप नहि लेबनि। परंच चकित भय गेलहुँ अपन पीठ पर हुनक हाथक स्पर्शसँ ! मग-मग गंगाजलमे बनौन मिसरीक सरबत सन वाणी, "हम बड़ प्रसन्न छी अहाँपर ! अहाँकेँ हम वैद्य ओ मैथिलीक कवि टा मानैत छलहुँ। अहाँक संस्कृतक व्यवसाय तकर संग अवसरक अनुकूल प्रस्तुत भय उपस्थित होयबाक कौशल बड़ प्रसन्न कयलक हमरा। ताहूसँ अधिक प्रसन्न छी अहाँक निर्भीकता पर। एहने अध्ययनशील ओ निर्भीक विद्वानक आवश्यकता छैक। अहाँ जीवनाथ केँ चुप कय देलिअनि ताहि पर हमहीँ पक्षपातवश अहाँ केँ अनधिकारी कहि देने छलहुँ !" हम चरणस्पर्श कय आशीर्वाद लऽ लेलहुँ।

एहन निर्मल-हृदयक विद्वान जे अपन अपराधकेँ अपन पुत्रक समवयस्क व्यक्तिक लग स्वीकार करत, अप्रियो सत्य बाजनिहार केँ आशीर्वाद देत, हमरा तँ दोसर नहि भेटलाह अछि।

एष श्रद्धाञ्जलिः ते मया दीयते

तृप्यताम ।।

# महावैयाकरण पण्डितमुख्य दीनबन्धु बाबू

**डाक्टर श्री जयकान्त मिश्र**

अध्यक्ष, अंग्रेजी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय

कोनो भाषा ओ साहित्यक हेतु कोनो-कोनो तेहन महानुभावक जन्म महत्त्व रखैत छैक जे ओहि बिना ओ भाषा ओ साहित्य बढ़बे असम्भव बूझि पड़ैछ। एहने महानुभाव मिथिलाभाषाक हेतु छलाह ज्योतिरीश्वर, विद्यापति, चन्दाझा, ग्रिअर्सन, महामहोपाध्याय मुरलीधर झा ओ महावैयाकरण दीनबन्धु बाबू। आधुनिको काल मे एहन युगान्तरकारी व्यक्ति भेल छथि—सीताराम झा, महामहोपाध्याय डाक्टर उमेश मिश्र, "गुरुदेव" रमानाथ बाबू, श्री हरिमोहन झा, श्री यात्री जी, राजकमल, डाक्टर श्री सुभद्र झा प्रभृति महानुभाव। ई लोकनि तँ मैथिली भाषा ओ साहित्यक ने केवल स्वरूप स्थिर कएलन्हि अपि तु ओकरा माँजि-माँजि कए चमकओलनि। हिनका लोकनि केवल स्रष्टा नहि छलाह—मार्गदर्शक छलाह, मैथिली साहित्य मे गति अननिहार छलाह, युगप्रवर्तक छलाह, अपन-अपन धार छोड़ि मैथिलीक गंगाकेँ गति देनिहार छलाह। आइ जे मैथिली भाषाक स्वरूप भेल अछि तकरा बनएबाक बेस देखनगर श्रेय महावैयाकरणकेँ छन्हि ताहिमे हमरा सन्देह नहि अछि।

संस्कृतक पण्डित, संस्कृतक विद्वान, विशेष कए वैयाकरणकेँ मातृभाषाक प्रति अनुराग होएब स्वाभाविक छल, किन्तु ओहिमे आस्था होएब, ओकरा अध्येतव्य मानब, ओकरा शास्त्र बूझि मान्यता देब कठिन काज छल। गीत संगीत वा साहित्यमे मनोरञ्जन करबाक तँ परम्परा मिथिलामे प्राचीने कालसँ अछि किन्तु भाषा साहित्य कठोर शास्त्रहुक विषय भए सकैछ से पहिने नहि बुझाइत छल। हमरा दृष्टिएँ ई परम्परा अङरेजी शिक्षाक प्रचार भेनेँ मिथिलामे आएल। एहिसँ पूर्व विद्यापतिकेँ घोषणा करैत देखैत छिअन्हि किन्तु शास्त्रक रूपमे नहि—काव्यक रूपमे, मनोरञ्जनक रूपमे "सब जन मिट्ठा" क रूपमे। महावैयाकरणजीक महत्त्व एही लए कँ बेसी अछि जे संस्कृतक पण्डित भए ओ मातृभाषाकेँ, देहातक भाषाकेँ शास्त्र बनाओल। प्राचीनो कालमे प्राकृतकेँ जखन शास्त्र मानल गेल होएत तखन एहने आस्था छल होएत से बूझि पड़ैत अछि।

तें १९२९ई०क लगभग महावैयाकरणजी मिथिलाभाषाविद्योतनक प्रणयन कएलन्हि आ ओकर एक भाग प्रकाशितो कएलन्हि। पछाति ओ पूर्ण रूपसँ छपबो कएल। छन्दशास्त्र, अलङ्कारशास्त्र व्याकरणक दृष्टियें भिन्न-भिन्न मैथिलीक समस्याक निर्धारण, एवं अन्तमे मिथिलाभाषाशब्दकोशक सेहो निर्माण कए-लन्हि। ईसभ समष्टिमे एकटा तेहन काज भेल अछि जे कोनो भाषाक स्वरूप स्थिर करबामे अमरत्व प्रदान करैत अछि। मिथिलाभाषाक आजुक स्वरूप महावैयाकरणक कृतित्वसँ भेल अछि ताहिमे हमरा कोनो सन्देह नहि अछि।

मिथिलाभाषापर संस्कृतक प्रभाव प्रदर्शन करबामे सूत्रप्रणालीमे संस्कृतक अनुरूप स्वतन्त्र भारतीय भाषाक व्याकरण लीखि महावैयाकरण एकटा आदर्श दए गेलाह जकर महत्त्व चमत्कारिको अछि—विलक्षण प्रतिभाक सग विलक्षण कारयित्री प्रतिभाक उपयोग भेल अछि। आब कोनो भारतीय भाषाकें ई सौभाग्य नहि प्राप्त छैक।

हँ, कोशक सम्बन्धमे ई कहब अनुचित नहि होएत जे ओ कार्य ओतेक वैज्ञानिक ओ विस्तृत नहि भेलन्हि। शब्दक संग्रह आर होइत तँ नीक छल। ततबे नहि, शब्दमबहिक व्युत्पत्ति वा व्याख्या अपूर्ण अछि—व्युत्पत्ति देले नहि अछि। हम एहि प्रसङ्ग एकटा निबन्ध मिहिरमे लिखने रही। हमर आग्रह छल जे जतबा शब्द सहजहि संगृहीत भए सकैछ—विद्यापतिपदावली, मनबोध, क्रेस्टोमेथी, "बिहार पेजेण्ट लाइफ", आदिसँ सगृहीतो शब्द ल लेब आवश्यक छल, कहबीसग्रहसभकें सेहो लए लेब आवश्यक छल। महावैयाकरणजी मधु-बनी मैथिली साहित्य परिषद अधिवेशन १९४७ मे जाइत काल ट्रेनमे हमरासँ कहलन्हि जे संग्रहे करबाक विचार हुनका मान्य नहि छलन्हि। से ओ कोश अपना ढगक अद्भुत होइतो अपूर्ण रहल—ओहि कोशसँ मैथिली साहित्यक कोनो ग्रन्थ लगएबामे सहायता भेटब असम्भव छैक। एहन कोशक कतक धरि सार्थकता होइ छैक से हमरा नहि बुझि पड़ैछ।

अस्तु ई तँ भिन्न विषय भेल। महावैयाकरणक हमरा पर हमरा परिवार पर असीम अनुकम्पा छलन्हि। हमर बाबूजी (महामहोपाध्याय) हुनका कतेक मानैत छलथिन्ह स एहीसं स्पष्ट छल जे हुनका मिथिला विद्यापीठक विशिष्ट विद्वानमे स्थान देलथिन्ह। हम हुनका सस्कृतक विद्वान् सँ बहुत अधिक पैघ मैथिलीक विद्वान् बुझैत छियन्हि जे युग-युग स्मरणीय रहतन्हि। दोसर केओ निकट भविष्यमे हुनक क्षतिकें पूर्ति नहि कए सकैत अछि से हमर निश्चित धारणा अछि।

# नमो गुरुभ्यः शास्त्रकृद्भ्यः

डा० किशोरनाथ झा,
व्याख्याता,
गङ्गानाथझाकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठम्, प्रयाग: ।

स्वनामधन्या महावैयाकरणा दीनबन्धुझामहाभागाः सौभाग्येनास्माकमपि गुरुचरणा वस्तुतः पितृगुरवः शास्त्रे लौकिके च व्यवहारे युगप्रवर्तका अभूवन्। अद्य तेषां जन्मशतवर्षपूर्त्यवसरे संस्मरणात्मकं समर्चनं सर्वथा समुचितं लोकाचारानुरूपं स्वाभाविकं च ।

**प्रतिबध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः**

इति शिष्टानुशासनेनात्मनां कल्याणायैवास्माकमयं सपर्याव्यापारो भवेदिति मदीया धारणा ।

मदीयपितृचरणस्याध्ययनकाले (१९१८-१९२७, ख्रिष्टाब्देषु) शास्त्रार्थस्यायोजनं मनोविनोदाय विहितमासीत् विद्वन्मण्डलेषु। अतएवैकदा तदानीम् अस्माकं परमगुरवः सरिसवग्रामवास्तव्याः पण्डितपुण्डरीकमार्तण्डाः मार्कण्डेयमिश्रचरणा न्यायशास्त्राध्ययनेन विना व्यापकताघटितं प्रातिपदिकार्थस्य प्रसिद्धतमं परिष्कारमवबोधयितुं न समर्था भवेयुर्महावैयाकरणा इति मनसिकृत्य कतिपयैः शिष्यैः साकं तदीयावासमागत्य तांस्तदपृच्छन् । ते चैतेषामाशयमवगत्य प्रसन्नचेतसः निर्भीकं प्रत्यपादयन् समाधानं समुचितं प्रामाणिकं च यथासमयमनायासम् । पश्चादुभौ च निर्व्याजहृदयौ सरलस्वभावौ धीधनौ परमां प्रीतिमवाप्नुतामिति पण्डितानां मुखेभ्यः प्रसङ्गतः श्रुतं समधिगतं च लेखकेन ।

लक्ष्मीवती - संस्कृत - विद्यालय (सरिसवग्राम)तः मिथिला-संस्कृत-शोध संस्थाने दरभंगानगरे सम्मानिताध्यापकरूपेण सादरमामन्त्रितास्तत्र गमनावसरे स्थानीयविद्वत्समाजैः कविशेखर बदरीनाथझा प्रभृतिभिः तान् सभाजयितुं समायोजितायामेतेषां सौप्रास्थानिकाभिनन्दनपरिषदि स्वकीयभाषणावसरे एते मार्मिकमेकं रोचकं च स्वकीयं विद्याभ्याससम्बन्धि रहस्य मुदघोषयन् यद् विद्या मातृकुलादेतेषु समागतेति। एतेषां मातृकुलं चिरादेव सारस्वती धारा

प्रभावहति स्वस्मिन् । अतएव पुरा महामहोपाध्याय सचलमिश्रैः 'राधानयन-द्विमनी'कारैर्मोहनमिश्रैश्च विद्योतितं तत्कुलं यथाकालमिदानीं कीर्तिकरैः केशीमिश्रैरेतेषां महावैयाकरणानां मातुलैरथ च देवीनाथ मिश्र तेजनाथ मिश्र मदन मिश्र प्रभृतिभिश्च विद्यार्जनदानाभ्यां प्रशासनादिभिश्चोज्ज्वलीकृतं विराजते । एतस्मादेव मातृकुलादेषु संक्रान्ता सारस्वत्या उपासनायाः प्रबलतमा सदिच्छा या च पितृपक्षतः सत्यपि दृढतमे प्रतिरोधे एतान् प्रैषयत् वाराणसीमध्ययनाय । पैतृककुले कदाचित् पूर्वजस्य पितृव्यादेः कस्य-चिदध्ययनावसरे वाराणस्यां प्राणवियोगः सञ्जातस्तदाप्रभृति वाराणसी-गमनमध्ययनं चामङ्गलं मन्वते स्म पितृचरणादय एतेषाम् । किन्तु विद्या-प्राप्तये कृतसंकल्पा एते नाभूवन् विरताः सत्यपि गुरुजनकृतप्रतिबन्धके, भाग्यानुसारं जीवन मृत्युं चावगत्य पितृकुलस्य भ्रान्तधारणां प्रति नैवास्थां प्राकाशयन् । एतेषां पितृचरणास्तु एतेषां वाराणसीवाससमये सदा सशङ्का-श्चिन्ताकुला एवातिष्ठन् । परमेते तत्र काश्यां प्रसन्नचेतसः पुण्यश्लोकेभ्यः तपः-स्वाध्यायमात्ररतेभ्यः शिवकुमार मिश्रवर्येभ्यः सकलां शब्दविद्यामधिगतवन्तः ।

न्यायमीमांसाशास्त्रयोः काव्ये च मिथिला यथा प्रसिद्धा न तथा व्याकरणशास्त्र इति जानन्त्येव तद्विदः । तथा चोक्तं 'प्रसन्नराघवे' पक्षधरा-परनाम्ना जयदेवेन—

> येषां कोमलकाव्यकौशलकलालीलावती भारती
> तेषां कर्कशतर्कवक्रवचनोद्गारेऽपि किं हीयते ।

तत्रैव मिथिलायां शाब्दिकेषु वराः महामहोपाध्यायजयदेवमिश्र-महामहो-पाध्यायगणिनाथझा-पण्डित लालजीझा-पण्डित सत्यदेव मिश्र-पण्डित निरसन मिश्र-पण्डित गुलाब झा प्रभृतयो महावैयाकरणानां दीनबन्धु झा महा-भागाना समसामयिकाः स्वकीयं वैदुष्यं प्राख्यापयन् यशांसि चोपार्जयन् कृतवन्त-श्चानुरूपांश्छात्रान् । पण्डित राधाकृष्ण झा-यदुपति मिश्र-हरिनाथ मिश्र-कृष्णमाधव झा प्रभृतयो महावैयाकरणानां मुख्यतमाः शिष्याः विद्वत्सु सन्ति समादृताः ।

आस्तिक्यमेतेषां दृष्टमस्माभिः वरहगोरियाग्रामे श्रीमद्भिः मतीनन्दन सिंह महाशयैः समायोजितायां मैथिली-साहित्य-परिषदि परिहासकथां पठता हास्यरसावतारेण प्रो० श्री हरिमोहन झा महोदयेन यदा सीतां प्रति प्रसङ्गतो-ऽधिक्षेपवाचकं किमपि पदमुच्चारितं तदानीन्तनी मुखमुद्रा व्यवहारश्च महा-वैयाकरणानामेतेषां सभां विहाय ततः सद्यो निर्गच्छताम् ।

कुलधर्मपालने नितरां कठोरा अपि विचारे समयानुसारं मर्यादानुकूलं परिवर्तनमप्यपेक्षन्ते स्म। अतएव बहुव्ययसाध्यां विवाहरीतिं निर्धनस्य समाजस्य कृते भारस्वरूपां वीक्ष्य तत्र नवीनां तामल्पव्ययसाध्यां प्रावर्तयन्निति जानन्त्येव समाजस्याः श्रोत्रियाः। नवीनाया रीतेः कार्यान्वयने तैः कीदृश काठिन्यमनुभूतं तदानीमिति तेषां समसामयिका एव जानन्ति। श्रोत्रियसभायाः साचिव्यं कुर्वद्भिरेभिस्तदानीं श्रोत्रियाणां समस्याः सुरुचिपूर्णया जनप्रियया च प्रणाल्या समाहिता इत्यपि समवगन्तव्यम्। चतुरङ्गक्रीडाया प्रिया एते तदर्थं दूरमपि गतायातं कृतवन्त आसन्। कालक्षेपस्तु जीवन एतेषां केनापि न दृष्टः। शास्त्रार्थव्यसनिन एते ततः परिश्रान्ताः काव्यनिर्माणे व्यापृता भवन्तिस्म। चतुरङ्गक्रीडायां रसालाखेटाय धनुषो गुलिका-निर्माणे चीकनिर्माणे च शास्त्रश्रान्त्यपनोदाय संलग्ना एते अभूवन्। यदि निमन्त्रिता सन्तः सामाजिकेषु कार्येषु केषांचन गृहान् गच्छन्ति स्म तदा तत्र दुग्धपेयार्थं पत्रपुटकनिर्माणे एतान् संलग्नान् कोऽपि द्रष्टुं शक्नोतिस्म।

एते महावैयाकरणाः शास्त्रार्थे ग्रन्थव्याख्याने ग्रन्थानां निर्माणे शिष्याध्यापने च सर्वदा सलग्ना अपि नित्यकृत्यमिव मैथिलीभाषाया अपि लोकोत्तरा सेवां कृतवन्तः। मिथिलाभाषाविद्योतनं पाणिनीयसूत्रानुरूपं विधाय मैथिलीशब्दकोषञ्च विरचितवन्तः। बालानां मध्यबुद्धिशालिनां प्रौढानां च कृते पृथक-पृथक् कक्षानिर्माणं कृत्वा कक्षात्रये प्रारम्भतः शिखरतुल्यं विचारं विदधन्त एते अलङ्कारसागराभिध ग्रन्थरत्न विरचयामासुरिति मैथिलीभाषाविन्सु प्रथितमेव।

वस्तुतो धन्या वयं येषामनेकजन्मार्जितपुण्यप्रभावेण गुरुचरणा एतादृशविशेषगुणशालिनः स्पृहणीयानुकरणीयचरिताः आसन्।

> वेदशास्त्राविरोधेन तर्केण व्याहरन् वचः।
> स गुरुः सर्वदर्शी स्यात् न सामान्यगुणैर्युतः॥

इति तथाविधा एवासन्नस्माकं गुरुचरणाः। पुत्रे यशसि तोये च नराणां पुण्यलक्षणम् इति पौराणिकी सूक्तिर्यदि विचार्यते सौभाग्यलभ्येषु गुरुचरणेष्वस्माकं सर्वं सफलमेव दृश्यते। त्रयः पुत्राः स्वकीये विद्याक्षेत्रे प्रसिद्धतमाः पौत्रदौहित्रादयोऽपि सर्वे कृतविद्याः सन्ति। इत्थं सर्वथा सर्वत्र यदि दृष्टिर्दीयते शुभ्रमक्षुण्णं च यशः दिक्षु प्रसरत् राजते महावैयाकरणानामिति वयं तदीया एव तेभ्य एवाशीर्वादान् कामयमानास्तेषां जन्मशतवार्षिकसमारोहपर्वणि तेभ्यः श्रद्धाभक्तिभ्यां शतशः प्रणामाञ्जलीन् समर्पयामि।

—इति—

# श्रद्धाञ्जलिः

पं० अच्युतानन्द झा, बिट्ठो

विद्वत्सु मूर्द्धन्य करोमि नित्यं
पादारविन्दस्मरणं विनम्रः ।
वाग्देवता ऽसीद्रसनाऽनुगाऽत्र
शिष्याः प्रमाणं ननु दीनबन्धो ॥

विद्यालयेऽध्यापनलग्नचित्तो
गूढार्थसम्बोधनतत्परः सन् ।
दत्तावधानान्समवेतछात्रा-
नध्यापयामास भवानखिन्नः ॥

शास्त्रीयसाधुत्वविधानदक्षं
'विद्योतनं' मातृगिरो विलिख्य ।
भाषाप्रचारेऽखिलमैथिलेभ्यः
शक्तिः प्रदत्ताऽहितशोधिकेव ॥

बाल्येऽध्यगच्छन्तव पादपद्म-
स्पर्शप्रसङ्गं बहुशो यतोऽहम् ।
अद्यास्मि जीवन्नत एव देव
वृत्तिं समासाद्य हि शिक्षकस्य ॥

दृष्टा वयं श्रोत्रियवंशमुख्यं
विख्यातकीर्त्या भुवि वर्तमानम् ।
सम्पूज्य शब्दप्रसवैर्भवन्तं
श्रद्धाञ्जलिं भो विनिवेदयामः ॥

# विज्ञानमहिमा

प्रसिद्धबुधनिर्मितः कृतविभूतिसन्दर्शन-
स्तपोवनसमुत्थितोऽनल इवातिभीतिप्रदः।
अशेषसुखसाधनं समुपलभ्य गर्वोद्धतान्-
करोत्यहह मोहितानणुकणोऽद्य लोके जनान् ॥

लोहे बद्धं इति स्वकीयमखिलं विस्मृत्य शौर्यं क्षणाद्-
विज्ञानेन हि भूतलेऽनिबलवान्दासायते स्पर्शनः।
अङ्गुल्या वशवर्तिनी प्रतिगृहं सौदामनी वर्तते
बन्दी दारुपुटेषु कालवशतो वैश्वानरः सीदति ॥

नियम्य धारां सरिताम्प्रयत्नै-
र्विनाशशीला तटवासिनां या।
जनस्य शस्यस्य च भूरूहस्य
समृद्धिमद्धा वितनोति लोकः ॥

—तस्यैव

# सांख्यतत्त्वकौमुदीमे संदेह

म० म० डा० उमेश मिश्र, एम० ए०, डी० लिट्

[ प्रस्तुत लेख महामहोपाध्याय डाक्टर श्रीउमेश मिश्रक एक गोट अंग्रेजी निबन्धक अविकल अनुवाद थीक। ई निबन्ध किछु वर्ष पूर्व डाक्टर साहेब अखिल-भारतवर्षीय-ओरिएण्टल कन्फरेन्सक अवसर पर पढ़ने छलाह। विषय रुचिकर बुझना गेल तें महामहोपाध्यायजीक अनुमति लए एकर अनुवाद कएल ओ से अनुवाद पुनः हुनकासँ देखाए प्रकाशित कराए रहलहुँ अछि। एहि निबन्धमे यद्यपि मूल-लेखकक भाव सर्वतोभावेन आबि गेल छैन्हि तथापि खूब स्पष्ट नहि अछि ई जानि महामहोपाध्यायजी एहि मूल निबन्धक स्पष्टीकरणार्थ एक गोट नवीन लेख लीखि पठओने छथि, सेहो एहि संग प्रकाशित होएत। बड़ सुन्दर होइत जँ मूल-लेखानुवाद ओ ओकर स्पष्टीकरण निबन्ध एकहि अङ्कमे प्रकाशित होइत परञ्च स्थानाभावें से नहि भए सकल। आशे नहि, पूर्ण विश्वास अछि जे मिथिलाक पण्डित समाजमे ई लेख उचित आदरसँ पढ़ल जाएत ओ एहि कथा पर गम्भीर रूपसँ विचार होएत। यदि एहि लेखमालासँ किछुओ विचार-धारा बढ़ि सकल, विद्वन्मण्डलसँ यदि ई रुचिपूर्वक पढ़ल गेल, अथवा सर्वतन्त्रस्वतन्त्र वाचस्पतिमिश्रक चिरादृत ग्रन्थ-रत्नमे कएल गेल सन्देह सबहिक यदि उचित निराकरण भए सकल, हम अपन श्रम ओ उद्योग तखनहि सफल बुझब इति। —निवेदक श्रीरमानाथझा, राज-लाइब्रेरी ]

× × ×

समस्त उपलब्ध टीकाक संग-संग साङ्ख्यकारिका पढ़बाक तपक्रममे हमरा वृद्धवाचस्पतिक तत्त्वकौमदीमे कतोक सन्देह रहि गेल जे हम विद्वन्मण्डलीक समक्ष विचारार्थ उपस्थित करैत छी।

दोसर कारिकाक व्याख्यामे वाचस्पतिमिश्र कहैत छथि जे व्यक्त, अव्यक्त ओ ज्ञ एकरे विज्ञानसँ त्रिविध दुःखक समूलघात नाश होएत। व्यक्तक प्रसङ्ग एहिठाम हुनक उक्ति छैन्हि "व्यक्तक ज्ञानपूर्वक अव्यक्त जे ओकर कारण तकर ज्ञान।"

छठम कारिकाक अवतरणमे पुनः वाचस्पतिमिश्र कहैत छथि—"एवं व्यक्ताव्यक्तज्ञ-लक्षण-प्रमेय-सिद्धयर्थं प्रमाणक लक्षण कएल। एहिमे व्यक्त-पृथिव्यादि—क तँ स्वरूपतः प्रत्यक्ष पांसुलपादक हालिकहुकेँ होइतहिं छैक अतएव एकर व्युत्पादनक हेतु शास्त्रक प्रयोजन मन्द। शास्त्रक प्रयोजन तं दुरधिगमक व्युत्पादन होएबाक चाही।"

अतएव एहठाम वाचस्पतिमिश्र "व्यक्त" सँ पृथिवी-प्रभृति स्थूल पदार्थ बुझैत छथि कारण "पृथिव्यादि" मे "आदि" शब्दसँ एही स्थूल पदार्थ सबहिक परामर्श अछि किएक तँ पांसुलपादक हालिकके तँ एही सबहिक प्रत्यक्षत ज्ञान होइत छैक। तत्त्वकौमुदीक सबसँ सुन्दर टीकाकार बलरामोदासीन एहि अर्थके स्पष्ट कएने छथि। अतः साङ्ख्यशास्त्र कोनहु व्यक्त पदार्थक विचार नहि करए किएक तं ताहिसँ एकर महत्त्व कम भए जएतैक। वस्तुस्थितिओ सएह छैक। वाचस्पतिमिश्रक मतसँ एहि हेतुएँ एहि शास्त्रमे व्यक्त अर्थात् पृथिव्यादिक विचार नहि अछि।

किछु आगाँ जाए जे वाचस्पतिमिश्र कहैत छथि ताहूसँ एहि धारणाक पुष्टि होइत अछि। एही कारिकाक व्याख्यामे अछि जे "अतीन्द्रिय जे प्रधान पुरुषादि तकर प्रतीति सामान्यतः दृष्ट अनुमानसँ होइत अछि।" एहि ठाम आब ई बुझब आवश्यक जे एहि समस्त पद "प्रधानपुरुषादीनां" मे "आदीनां" सँ की अर्थ अभिप्रेत ? प्रधान ओ पुरुष दुहु अतीन्द्रिय थीक ओ तेँ ओकर प्रतीति अनुमानसँ किन्तु बहुवचनक प्रयोग ककरा अभिप्रायमे राखि कएल गेल अछि ? प्रधान ओ पुरुष, एही दुहुक हेतु द्विवचन होइतैक न तु बहुवचन। बुझना जाइत अछि जे कारिकाक एहि बहुवचनक समर्थनमे वाचस्पतिमिश्र "महत्" प्रभृतिअहुँ केँ अतीन्द्रियहिक श्रेणीमे राखि देलैन्हि। फलतः हुनक आशय एहन सन बुझना जाइत अछि—

पृथिव्यादि व्यक्त प्रत्यक्षगोचर तेँ ओकर विचार एहि शास्त्रमे नहि, प्रधान पुरुष ओ ताहिपर सँ महत्तत्त्व प्रभृति अतीन्द्रिय, साधारण मनुष्यक प्रत्यक्षगोचर नहि ओ तेँ एहि शास्त्रक प्रयोजन।

बलरामोदासीन कहैत छथि—आदिना महत्तत्त्वादयो ग्राह्याः। अतएव वाचस्पतिमिश्रक मतेँ दुरधिगम जे तत्त्वसभ अछि यथा प्रधान, पुरुष, महत्तत्त्व, प्रायः पञ्च तन्मात्रा प्रभृति—जे सभ अनुमान-गम्य अछि तनबहिक एहि शास्त्रमे

विचार। शेष जे पृथिव्यादि स्थूल पदार्थ साधारण मनुष्यक बाह्येन्द्रियक प्रत्यक्ष-गोचर तकर एहि शास्त्रमे विचार नहि।

हमरा ई कहबाक साहस नहि होइत अछि जे वाचस्पतिमिश्र महत्तत्त्वकें व्यक्त नहि मानैत छथि। दशम ओ एगारहम कारिकाक व्याख्यामे अनेक ठाम भेटैत अछि जे पृथिव्यादिवत् महत् सेहो व्यक्त थीक ओ तें अव्यक्त जे प्रधान ताहिसँ भिन्न थीक। किन्तु बलराम महत्कें व्यक्त नहि मानैत छथि। एहि सबहिक विचार कएलासँ जिज्ञासुकें बुझि पड़ैत अछि जे प्रायः वाचस्पतिमिश्र दू प्रकारक तें ने व्यक्त बुझैत छथि—एक वाह्येन्द्रिय-प्रत्यक्ष पृथिव्यादि, दोसर महत् इत्यादि जे अनुमानहिक गम्य थीक। किएक तँ इहो सब प्रधान ओ पुरुष जकाँ अतीन्द्रिय कहल जाइत अछि।

जिज्ञासुक ई धारणा वाचस्पतिमिश्रक अपनहु शब्दें पुष्ट होइत अछि। आठम कारिकाक अवतरणमे ओ कहैत छथि—"कतमत्पुनरेतेषु कारणं प्रधानादीनानुपलब्धाविति" प्रधानादिकक अनुपलब्धिमे एहि सबमे सँ कोन कारण? एतहु प्रधानादीना" सएह अछि। बहुवचनक की आशय? निश्चय, वाचस्पतिमिश्रक मनमे ओएह छठम-कारिका-बाला पुरना पद एहुखन धरि घूमि रहल अछि ओ तकर आशय प्रधान, पुरुष, महत्।

प्रत्यक्षक लक्षणक जे अर्थ तत्त्वकौमुदीमे भेटैत अछि ताहूसँ एहि धारणाक पुष्टि होइत अछि। हुनका मतें अर्थ-सन्निकृष्ट इन्द्रिय प्रत्यक्ष भेल अर्थात् हमरा लोकनिक प्रमेय जे भेल स्थूल पृथिव्यादि ओ सुखादि तथा पञ्चतन्मात्रा से अपन भिन्न-भिन्न इन्द्रिय द्वारा बुद्धिमे तमोगुणकें अभिभूत कए सत्त्वक समुद्रेक कर्त्त अछि सएह प्रत्यक्ष भेल। एतहु प्रत्यक्षक विषय दू प्रकारक अछि। एक तँ साधारण मनुष्यक प्रत्यक्षक योग्य बाह्य विषय यथा पृथिव्यादि; आभ्यन्तरीण विषय यथा सुखादि। दोसर, ऊर्ध्वस्रोता ओ योगी लोकनिक प्रत्यक्षक विषय, यथा पञ्चतन्मात्रा।

न्यायवैशेषिकक जे प्रत्यक्षक प्रसङ्ग मत छैन्हि ई शुद्ध सएह थीक। हुनकहु लोकनिकें इन्द्रिय ओ अर्थक सन्निकर्ष आवश्यक होइत छैन्हि तथा हुनकहु लोकनिकें विषय-भान एहिना होइत छैन्हि; की तँ स्थूल, यथा पृथिव्यादि तथा सुखादि ओ सूक्ष्मतर यथा परमाणु जकर प्रत्यक्ष केवल योगिअहिकें होइत छैन्हि। एहना स्थितिमे वाचस्पतिमिश्रक ई कहब कथमपि अयुक्त नहि जे

पृथिव्यादि हमरा लोकनिक प्रत्यक्षक गोचर थीक; महत् नहि, किएक तँ एहिमे हमरा लोकनिक बाह्येन्द्रियक सन्निकर्ष नहि भए सकैत अछि।

पुनः—जेँ पृथिवी आदि प्रत्यक्षक विषय थीक तेँ एहि शास्त्रमे वाचस्पति-मिश्र ओकर विचार आवश्यक नहि बुझैत छथि ओ जेँ प्रत्यक्षक विषये नहि किछु, तेँ छठम कारिकामे जाहि ठाम सांख्यशास्त्रमे स्वीकृत प्रमाण सबहिक विचार छैक ताहिठाम प्रत्यक्ष प्रमाण अथवा एहि प्रमाणक विषयक कोनो चर्चा नहि अछि। एहि प्रसंग वाचस्पतिमिश्रक उक्ति छैन्हि जे, "अतीन्द्रिय तत्त्वसबहिक प्रतीति सामान्यतोदृष्ट अनुमानसँ होइत अछि।" एहि अतीन्द्रिय सभमे "प्रधानाद्यः"—कहल गेल अछि जाहिमे प्रधान, पुरुष, इत्यादि अन्तर्भूत अछि तथा जाहिमे आदि शब्देँ बलराम महत्तत्त्व बुझैत छथि। एहुसँ जकर प्रतीति नहि हो तकर सिद्धि आप्तागमसँ होइत अछि।

वाचस्पतिमिश्रिक विचार-धाराक एतबा विश्लेषण कए आब सांख्यकारिका तथा सांख्यशास्त्रक जे सिद्धान्त छैक ताहि दिशि देखू। ईश्वरकृष्ण कहैत छथि जे प्रमेय तीन प्रकारक अछि, व्यक्त, अव्यक्त ओ ज्ञ, जकर विज्ञानमे त्रिविध दुःखक एकान्त ओ अत्यन्त विनाश होइत अछि। एहि सब विषयकेँ बुझबाक हेतु तीनि गोट प्रमाण अछि, प्रत्यक्ष, अनुमान ओ आप्तागम। तत्त्वहिक ज्ञानटा नहि, तत्त्वज्ञानक प्रमाणक सेहो ममाने प्रयोजन पड़ैत छैक तथा शास्त्र-ज्ञानक हेतु प्रमाणहुक ज्ञान ओतबए आवश्यक जतबा प्रमेयक, नहि तँ शास्त्रमे ओकर चर्चे किएक रहितैक। अतएव कारिकाकार ईश्वरकृष्ण भिन्न-भिन्न प्रमाणक प्रसक्तिक व्याख्या करैत कहैत छथि जे "सामान्य जे साधारण विषय अर्थात् व्यक्त यथा बुद्धि, अहंकार, पञ्चतन्मात्रा, एकादश इन्द्रिय, पञ्चभूत—एहि सबहिक प्रतीति दृष्ट अथात् प्रत्यक्षसँ होइत अछि। अतीन्द्रिय विषय जे प्रधान ओ भिन्न-भिन्न पुरुष तकर प्रतीति अनुमानसँ होइत अछि। तथा एहि दुहूसँ जकर प्रतीति नहि भए सकए तकर सिद्धिक उपाय थीक आप्तागम।" एहि कारिका सभमे अथवा एहि शास्त्रक आने कोना प्रामाणिक ग्रन्थमे व्यक्तक दू प्रकार नहि देखना जाइत अछि जे कथा वाचस्पतिमिश्रक लेखक स्वारस्यसँ बुझना जाइत अछि। जे व्यक्त अछि से सभ ठाम व्यक्ते रहत ओ ओकर प्रतीति एकहि प्रमाणसँ होएत ओ से प्रमाण थीक प्रत्यक्ष।

सांख्यदर्शनमे जे प्रत्यक्षक प्रकार कहल गेल अछि ताहूसँ इएह कथा सिद्ध होइत अछि जे व्यक्त मात्रक प्रतीति समानरूपेण प्रत्यक्षसँ होइत अछि। एहि ज्ञानक प्रकार ई अछि। बुद्धि-वृत्ति अथवा चित्त जखन अपन द्वार बाह्येन्द्रियमे

बहार भए विषयसँ सन्निकृष्ट होइत अछि तखन ओ तद्रूप भए जाइत अछि, जेना जलाशयक जल बाह्य द्वारा बहार भए बाही खेतमे जाइत अछि तदाकारके भए जाइत अछि। यदि बुद्धिवृत्तिकें कोनो रूप गोचर करबाक होएतैक तँ ओ चक्षुरिन्द्रिय-द्वारें बहार भए ओहि रूपक सदृश भए जाएत। स्वरूपक ई प्रतीति प्रत्यक्ष प्रमाण कहबैत अछि। तें बाह्य ज्ञानेन्द्रिय तँ वृत्तिक द्वार मात्र थीक वृत्तिकें निश्चय बाह्य ज्ञानेन्द्रियसँ सन्निकर्ष होइत छैक।

पुनश्च, सब शास्त्रमे देखल जाइत अछि जे "प्रत्यक्षेण योऽर्थो नोपलभ्येत स सर्वथा नास्तीति मतम्" एहि न्यायक चरितार्थता दूर करबाक निमित्त अतीन्द्रिय जे कोनो तत्त्व अछि तकर अस्तित्व सिद्ध कएल जाइत अछि। एहु शास्त्रमे प्रधान ओ पुरुष जे निश्चय अतीन्द्रिय थिकाह एहु रूपें सिद्ध कएल गेल अछि किन्तु महत्तत्त्वसँ लए पञ्चतन्मात्रा पर्य्यन्त जे तत्त्व सभ अछि तकर अस्तित्वक साधन एहि शास्त्रहिमे नहि अछि। एहुसँ बुझना जाइत अछि जे साख्यशास्त्रमे महदादि पञ्चतन्मात्रान्त अठारहो तत्त्व प्रत्यक्षसँ उपलभ्य थीक।

तथा यदि दृष्ट अर्थात् प्रत्यक्ष प्रमाणक प्रयोजने नहि छलैन्हि तँ "त्रिविध-प्रमाणमिष्टम्" ई किएक कहल गेल? कम स कम अनुमान ओ आप्तहिक सदृश स्थान एकरा नहि देल जइतैक। छठम कारिकाक सार्थकता एहीमे अछि।

एहि रूपें विरुद्ध ओ पक्षमे सब कथाक विचार कएला उत्तर कहुखनके सन्देह होइत अछि जे प्राय वाचस्पतिमिश्रके नहि बुझना गेलैन्हि जे साख्य-शास्त्रक तत्त्वसभ न्याय ओ वैशेषिकक तत्त्व सभसँ नितान्त भिन्न अछि। किन्तु वस्तुस्थिति की अछि? की साख्य ओ न्यायवैशेषिकक तत्त्वसभमे महान् भेद नाह छैक? की साख्यक तत्व न्यायवैशेषिकक तत्त्व सभसँ सूक्ष्मतर नहि अछि? न्यायवैशेषिकक मतें द्रव्यक चरमावस्था थीक सगुण परमाणु। किन्तु साख्यमे की? पञ्चभूत जे अविशेष तन्मात्राक प्रथमे स्थूल परिणाम होइत अछि कहुखन न्यायवैशेषिकक परमाणुक सदृश बाध होइत अछि किएक तँ साख्यहुक भूत नैयायिकक शब्दमे सविशेष द्रव्य थीक ओ एतदुत्तरकालीन परिणाम सभ क्रमशः स्थूलतरे होइत जाएत। तराहि एकहि बेरि कूदब असम्भव। सूक्ष्महु दिशि एहिना क्रमशः तत्वसबहिक लय होइत अन्तमे अन्तिम व्यक्त महत् अछि जे यद्यपि अछि बड़ सूक्ष्म तथापि न्यायवैशेषिकक आत्मासँ बहुत अशमे मिलैत अछि। एहिसँ बूझि पड़ैत अछि

जे सांख्यक सभटा तत्व न्यायवैशेषिकक तत्व सभसँ सूक्ष्म अछि ओ तेँ जेना न्यायवैशेषिकमे बाह्यज्ञानेन्द्रिय-प्रत्यक्ष अछि तेना नहि अछि। पामुलपादक हालिक तँ सांख्यक जे स्थूलतम पदार्थ तकरहु प्रत्यक्ष नहि कए सकैत अछि। तेँ एतए तत्वक दू प्रकार करबाक काज नहि—लौकिक ओ अलौकिक—अथवा प्रत्यक्षहिक दू प्रकार लौकिक ओ आर्ष करबाक काज नहि। वाचस्पतिमिश्र प्रायः सएह कएलैन्हि अछि।

जिज्ञासुक ई धारणा यदि सत्य तँ ई कहहि पड़त जे शिष्यपरम्परागत कपिलक सांख्यक सिद्धान्त ओ वाचस्पतिमिश्र जाहि सिद्धान्तक समर्थन करै छथि वस्तुतः भिन्न थीक।

विद्वन्मण्डलीक समक्ष हमरा इएह निवेदनीय—इति।

# सांख्य-तत्त्वकौमुदी-सन्देह-विध्वंसन

**पण्डितप्रवर श्रीयुत दीनबन्धु झा, सरिसव**

ता० २४-७-४३ कें "सांख्यतत्त्व-कौमुदीमे सन्देह" एहि शीर्षक लेख जे 'मिथिलामिहिर' मे प्रकाशित भेल अछि ताहिपर सन्देह निराकरणार्थ लेख देब अत्यावश्यक, कारण जे अशेषदर्शननिष्णात एक अतिमहान व्यक्तिक उपर एहि प्रकारक आक्षेप असह्य नहि भ्रममूलक ओ साहसिक बूझि सहसा विचार व्यक्त करबाक हेतु प्रवृत्त भेलहुँ अछि।

सांख्यदर्शनमे सिद्धान्त अछि जे जगन्मूलकारणीभूत प्रकृतिप्रधानमायादि-शब्दवाच्य तत्त्व ओ आत्मतत्त्व एहि दूहू तत्त्वक विवेकज्ञानसँ अपवर्ग (अत्यन्त दुःखनिवृत्ति) होइत अछि। ओ दूहू तत्त्व अतिसूक्ष्म अछि, तेँ एकाएक प्रकृति-पार्थक्येन आत्माक वा आत्मपार्थक्येन प्रकृतिक ज्ञान कठिन। तस्मात् स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम, अतिसूक्ष्मतम ज्ञानक्रमे प्रकृति-पुरुषक ज्ञान भय सकैत अछि—यथा स्थूल पृथिव्यादि, सूक्ष्म तन्मात्रादि, सूक्ष्मतर अहङ्कार, सूक्ष्मतम महान्, अतिसूक्ष्मतम प्रकृति ओ पुरुष एहि सबहिक क्रमशः ज्ञान भय सकैत अछि, इएह अर्थ "व्यक्ताऽव्यक्तज्ञविज्ञानात्" एहिसँ कहल गेल अछि। ताहिमे मूलप्रकृतिमे क्रमशः अभिव्यक्त महत्तत्त्वादि भूतपर्यन्त व्यक्त थीक, मूलप्रकृति अव्यक्त, आत्मा ज्ञ, ज्ञानक्रमे व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात् ई कहल गेल, जे वाचस्पति मिश्रक व्याख्यासँ तत्त्वकौमुदीमे स्पष्ट अछि। ताहिमे प्रकृति-पुरुष तँ सूक्ष्मत्वात् अतीन्द्रिय थिकाहे किन्तु व्यक्तहुमे आपामर-दृश्य पृथिव्यादि भूतसँ अन्य महत्तत्त्व अहकार आदि अतीन्द्रिय थीक। ओहि सबहिक अतीन्द्रियता निर्विवाद अछि यथा न्यायमतमे आकाशादिक। ताहिमे इन्द्रियवेद्य भूतरूप व्यक्ततत्त्वक परिज्ञानार्थ शास्त्रमे प्रमाणक उपादान आवश्यक नहि किन्तु अतीन्द्रिय जे प्रकृतिपुरुषमहदादि तकर अवगमार्थ। एही तात्पर्यें सांख्यतत्त्वकौमुदीमे वाचस्पति मिश्र लिखैत छथि जे—

"एवं तावद्व्यक्ताऽव्यक्तज्ञलक्षणप्रमेयसिद्ध्यर्थं प्रमाणानि लक्षितानि। तत्र व्यक्तं पृथिव्यादि, स्वरूपतो घटपटोपललोष्ट्राद्यात्मना पांशुलपादको हालिकोपि प्रत्यक्षतः प्रतिपद्यते, पूर्ववता चानुमानेन धूमादिदर्शनाद्वह्न्यादीति तद्व्युत्पादनाय मन्दप्रयोजनं शास्त्रमिति दुरधिगममनेन व्युत्पादनीयम्। तत्र यत् प्रमाणं यत्र समर्थं

तत् उक्तलक्षणेभ्यः प्रमाणेभ्यो निष्कृष्य दर्शयति—सामान्यतस्तु दृष्टादतीन्द्रियाणां प्रतीतिरनुमानात् तस्मादपि चासिद्धं परोक्षमाप्तागमात्सिद्धम् ।"

एहिमे "व्यक्तं पृथिव्यादि" एकर अर्थ ई नहि थीक जे "पृथिव्यादि जे आपामर प्रत्यक्ष विषय अछि सैह व्यक्त थीक" किन्तु जे व्यक्त पृथिव्यादि रूप अछि से हालिक पर्यन्तक प्रत्यक्षगोचर अछि तें ओकर ज्ञानार्थ प्रमाण कहब आवश्यक नहि किन्तु अतीन्द्रिय तत्त्वेक ज्ञानार्थ । अतएव पृथिव्यादिघटक प्रकारार्थक आदि पदें इन्द्रियग्राह्यत्व धर्मसँ सदृशक ग्रहण थीक, ताहिसँ महत्तत्त्वादि रूप व्यक्तक व्युदास भेल ।

आओर उक्त कारिकाक व्याख्यामे वाचस्पति मिश्र लिखैत छथि जे "सामान्यतो दृष्टादनुमानात् अतीन्द्रियाणां प्रधानपुरुषादीनां प्रतीतिः" एहि ठाम आदि पदें व्यक्तहुमे जे महदादि सूक्ष्म तत्त्व अछि तकर ग्रहण थीक ।

अतएव बलरामोदासीन कहैत छथि—"आदिना महत्तत्त्वादयो ग्राह्या:" । एतावता बलराम महत्के व्यक्त नहि मानैत छथि से कोना बुझल गेल ? मूलप्रकृति तथा पुरुष एहि दूहुसँ भिन्न महदादि भूतपर्यन्त अभिव्यक्तावस्थापन्न सभ व्यक्तपदवाच्य थीक किन्तु ओ सभ अतीन्द्रिये नहि थीक, इएह सकल संमत अछि ।

महामहोपाध्याय प० उमेशमिश्रकृत निबन्धक अनुवादमे लिखल गेल अछि जे "एहि सबहिक विचार कएलासँ जिज्ञासुकें बूझि पड़ैत अछि जे वाचस्पति-मिश्र दू प्रकारक तँ ने व्यक्त बुझैत छथि ? एक बाह्येन्द्रियप्रत्यक्ष पृथिव्यादि, दोसर महत् इत्यादि ।"

एहि लेखक ध्वनि जे "वाचस्पतिमिश्र बुझैत छथि परञ्च से हुनका भ्रम थिकन्हि" एकरहि दोहराय-तेहराय अग्रिम लेखमे म० म० उमेश मिश्र कहलन्हि अछि । किन्तु ई कहब भ्रमविलसित थीक ।

आसमुद्रासमस्तविद्वत्प्रवर-प्रशस्यमानानुपमपाण्डित्यशाली निखिलदर्शनतत्त्वोद्घाटक माननीयतम वाचस्पतिमिश्रक लेखपर अस्मदादिकें कटाक्षपात करब नितान्त अशोभन थीक ।

प्रकृतमनुसरामः असंशय अस्मदादिप्रत्यक्षगम्य ओ तदगम्य भेदसँ व्यक्त दू प्रकारक अछिए, जकर उपादान पूर्व हम कइए चुकल छी ।

पुनश्च अनुवादक तत्तदंशक उल्लेख कय हम अपन विचार लिखैत छी—

अनुवाद—जे व्यक्त अछि से सभ ठाम व्यक्ते रहत ओ ओकर प्रतीति एकहि प्रमाणसँ होएत ओ से प्रमाण थीक प्रत्यक्ष।

विचार—व्यक्त कोनहु ठाम व्यक्त नहि से के कहैत अछि जकर खण्डनार्थ "व्यक्त सब ठाम व्यक्ते रहत" ई लेख प्रस्तुत भेल अछि। व्यक्त पदक प्रत्यक्ष अर्थ नहि थीक किन्तु अभिव्यक्तावस्थापन्न। प्रकृतिक वा पुरुषक कथूसँ अभिव्यक्ति नहि होइछ, तेँ ओ दूहू व्यक्त नहि कहाबय; तदुभयभिन्न महदादि भूतपर्यन्तक अभिव्यक्त होइत अछि तेँ ओ सभ व्यक्त कहबैत अछि। "व्यक्तक प्रतीति एकहि प्रमाणसँ होएत से थीक प्रत्यक्ष।" ईहो कथा बाधित ओ शास्त्रकारक असंमत तथा अनुभव-वाह्य थीक।

यदि महत्तत्त्वादि पृथिव्यादिवत् दृष्ट सिद्ध रहैत तँ ओकर स्वरूप पृथिव्यादिवत् हमरा लोकनिकाँ देखि पड़ैत वा कान आदिसँ बुझि पड़ैत।

पृथिव्यादि नओ द्रव्य थीक से न्यायमे कहल अछि। सेहो कोनो एकहि प्रमाणमेँ ग्राह्य किएक नहि होएत? ओहिमे आकाश किएक पृथिव्यादिवत् प्रत्यक्षमेँ ग्राह्य नहि होइत अछि? पृथिविअहुमे परमाणु किएक नहि देखि पड़ैत अछि? यदि सूक्ष्मताक कारणेँ अप्रत्यक्ष तँ महत्तत्त्वादिक अप्रत्यक्षमे ओ युक्ति किएक नहि? तस्मात् व्यक्त कहओलासँ एकहि प्रत्यक्ष प्रमाणसँ ग्राह्य हो ई कथन नितान्त असार।

अनुवाद—साङ्ख्य-दर्शनमे जे प्रत्यक्षक प्रकार कहल गेल अछि। ताहूसँ इएह सिद्ध होइत अछि जे व्यक्तमात्रक प्रतीति समानरूपेण प्रत्यक्षसँ होइत अछि।

विचार—महदादि जे सूक्ष्म व्यक्त तत्त्व अछि तकरो प्रतीति यदि प्रत्यक्षसँ हो तँ प्रकृतिक तथा पुरुषक प्रतीति प्रत्यक्षसँ किएक नहि। यदि इष्टापत्ति करी तँ साङ्ख्यमे प्रमाणक उपन्यासे व्यर्थ। यदि सूक्ष्मताक कारणेँ प्रकृति वा पुरुष प्रत्यक्षागोचर तँ ओहि कारणेँ महत्तत्त्वादिअहुमेँ सेएह युक्त, अन्यथा पृथिव्यादि महाभूतवत् अस्मदादिक प्रत्यक्षविषय होइत। ओ सांख्यमे अतिदूरत्वादि प्रत्यक्षक प्रतिबन्धक कहल अछि जाहिमे सूक्ष्मत्त्वहुक उपादान अछि। तेँ केवल प्रत्यक्षक प्रकार देखि प्रतिबन्धकक अनुसन्धान नहि कए व्यक्तमात्रक प्रतीति प्रत्यक्षसँ ई कहब साहसमात्र।

अनुवाद—कारिकाकार ईश्वरकृष्ण भिन्न-भिन्न प्रमाणक प्रसक्तिक व्याख्या करैत कहैत छथि जे "सामान्य विषय अर्थात् व्यक्त तथा बुद्धि अहंकार पञ्चतन्मात्रा एकादश इन्द्रिय पञ्चभूत एहि सबहिक प्रतीति दृष्ट अर्थात् प्रत्यक्षसँ होइत अछि।"

विचार—ई विषय ईश्वरकृष्ण नहि कहने छथि तें "सामान्य विषय अर्थात् व्यक्त, पूर्व अर्थात् प्रत्यक्ष इत्यादि अर्थ केवल पूर्वोक्त निबन्धकर्ताक कल्पित थीक। उक्त कारिकाकार तँ—

"सामान्यतस्तु दृष्टादतीन्द्रियाणां प्रतीतिरनुमानात्।
तस्मादपि चासिद्धं परोक्षमाप्तागमात्सिद्धम्॥"

एतावन्मात्र कहलैन्हि। एकर अभिप्राय जे प्रमेय दू प्रकारक अछि इन्द्रिय ग्राह्य ओ अतीन्द्रिय। ओ अतीन्द्रियो दू प्रकारक अछि अनुमानगम्य तदन्यत्व, ताहिमे अनुमानज्ञेय अतीन्द्रियक ज्ञान अनुमानसँ ओ तदज्ञेय जे अतीन्द्रिय सृष्टिक्रमादि तकर ज्ञान आप्तागमसँ होइत अछि। परिशेषात् अतीन्द्रियसँ भिन्न (इन्द्रियग्रहणयोग्य)क ज्ञान प्रत्यक्षसँ ई स्वतः लब्ध भेल। किन्तु निखिल व्यक्त ज्ञान प्रत्यक्षसँ ई अर्थ नहि लब्ध होइत अछि।

अनुवाद—महत्तत्त्वसँ लय पञ्चतन्मात्रापर्यन्त जे तत्त्व सभ अछि तकर अस्तित्वसाधन एहि शास्त्रमे नहि अछि। एहूसँ बुझना जाइत अछि जे साङ्ख्य-शास्त्रमे महदादि पञ्चतन्मात्रा अठारहो तत्त्व प्रत्यक्षसँ उपलब्ध थीक।

विचार—अनुमानसँ ओहि सबहिक साधन असम्भव जानि ओकर साधन ईश्वरकृष्ण नहि कएलैन्हि, ओ सभ आप्तागमसँ सिद्ध थीक। किन्तु प्रत्यक्ष-सिद्ध थीक तेँ ओकर साधन नहि एहन भ्रम नहि कर्त्तव्य। से वाचस्पति मिश्र छठम कारिकाक "यत्र तन्नास्ति महदाद्यारम्भक्रमे स्वर्गापूर्वदेवतादौ च तेषाम-भावः प्राप्त इत्यत आह—"तस्मादपीति" एहि अवतरणग्रन्थसँ सूचित कएने छथि। एहि ठाम ईहो विचारबाक चाही जे प्रकृति-पुरुषसँ भिन्न समस्त जगत् व्यक्त थीक जाहिमे स्वर्गापूर्वदेवतादि तथा आकाशादि सभ प्रविष्ट अछि। ताहि सबहिक अवगम प्रत्यक्षसँ कोना होएत, अन्यथा 'आकाश स्वर्गादिकं च पश्यामि' एतादृश अनुव्यवसाय अस्मादादिकेँ होइत, तेँ महदादिक असाधनसँ प्रत्यक्ष-विषयताक अनुमानमे बाध प्रतिबन्धक अछि एकर पूर्वहुँ उपपादन कय चुकल छी।

अनुवाद—एहि रूपेँ विरुद्ध कथा सभक विचार कयला उत्तर कखनहु सन्देश होइत अछि जे प्रायः वाचस्पति मिश्रके नहि बुझना गेलैन्हि जे साङ्ख्य-शास्त्रक तत्त्व सभ न्याय ओ वैशेषिकक तत्त्व सभसँ नितान्त भिन्न अछि।

विचार—मूल लेखक महामहोपाध्यायजी "सन्देह होइत अछि" ई लेख शङ्कित भय कयने छथि अछि। हुनका वक्तव्य छैन्हि जे निश्चय होइत अछि जे

वाचस्पति मिश्रके सांख्यन्यायपदार्थमे विभेद नहि बुझना गेलैन्हि—जाहि निश्चयके महामहोपाध्याय द्वारा स्पष्ट कयलैन्हि अछि। यथार्थ अतिस्थूल-बुद्धित्वक कारणे ओ तत्तद्दर्शनक अपरिशीलनसँ वाचस्पति मिश्रकाँ कोना बुझना जाइन्हि जे बुद्धिक अतिसूक्ष्मताक कारण आधुनिक पण्डितके बुझि पड़ैत छैन्हि।

समस्त पृथ्वीमे जनिक दार्शनिक प्रज्ञा सर्वोपरि सूक्ष्म बुझल जाइत अछि ताहि वाचस्पति मिश्रक लेखमे कतहु विरुद्ध विषय रहबाक सम्भव नहि, किन्तु विपरीत अर्थ मानि लेबाक कारणे ककरहु विरुद्ध बुझना जाय से अवश्य सम्भव।

जगद्गुरुवर म० म० प० शिवकुमार शास्त्री, अशेषविद्वज्जनप्रशस्यमान-बुद्धिवैभव प० बच्चा झा हिनकहु लोकनि वाचष्पति मिश्रक भूरि-भूरि प्रशंसा करैत छलाह, तथा हमहु भामती प्रभृति ग्रन्थ देखि जनिक अलौकिक पाण्डित्यक स्वयं अनुभव कयने छी, तनिका प्रसंग "नहि बूझि पड़लैन्हि" ई लेख करब पृथ्वी मण्डलमे ककरहु उचित नहि।

तस्मात् हुनका लेखमे यदि ककरहु विरोध बुझना जाय तँ बुझबाक चाही जे अर्थ-सङ्गति नहि भए रहल अछि, तथा अमुक ग्रन्थक अंश हमरा सुश्लिष्ट नहि होइत अछि एवं रूपे लेखादि व्यवहार करबाक चाही। अस्तु आद्योपान्त अनुवादसँ केवल व्यक्त पदार्थहिक विपरीत अर्थ लगबाक कारण हुनका ग्रन्थमे विरोध ओ हुनक अनभिज्ञता बुझाओल गेल अछि, तकर सुश्लिष्टता हम देखाइए आयल छी। तथापि पुनः स्पष्ट करैत छी। जे केओ अव्यक्तक अर्थ अप्रत्यक्ष ओ व्यक्तक अर्थ प्रत्यक्ष मानैत छथि से भोतिआइत छथि हेतु जे से अर्थ मानने पुरुषो अव्यक्तपदबोध्य भय जयताह, तस्मात् अव्यक्तक अर्थ थीक अनभिव्यक्त, जकरा अस्मदादि अनुत्पन्न कहि सकैत छी, कारण जे सांख्यशास्त्रमे उत्पत्तिक स्थान अभिव्यक्ति मानल जाइत अछि; अतएव "सत्कार्यम्" ई सिद्धान्त अछि। आओर अव्यक्तपदक अनभिव्यक्त मात्रे टा अर्थ नहि किन्तु "नञिवयुक्तमन्य-सदृशाधिकरणे" एहि न्यायबले अभिव्यक्तभिन्न, त्रिगुणात्मत्वेन अभिव्यक्त सदृश अर्थ थीक। तस्मात् पुरुषमे अभिव्यक्तभिन्नत्व रहलहु पर त्रिगुणात्मकत्वक अभावसँ अव्यक्तपदबोध्यता नहि होइत अछि।

अनुवाद—यदि इष्टम् अर्थात् प्रत्यक्ष प्रमाणक प्रयोजने नहि छलैन्हि तँ "त्रिविधं प्रमाणमिष्टम्" ई कहबाक प्रयोजने की, कम सँ कम अनुमान ओ आप्तवाक्यहिक सदृस स्थान ओकरा नहि देल अइतैक।

विचार—दृष्ट प्रमाणक प्रयोजने नहि से के कहैत अछि ? वाचस्पति मिश्र तँ "तद्व्युत्पादनाय मन्दप्रयोजनं शास्त्रम्" ई कथा कहने छथि । मन्दप्रयोजनो सप्रयोजने भेल तेँ "दृष्टमनुमानमाप्तवचनं च" ई कहल गेल, ततःपर दुरधिगम कोन प्रमाणे बुझल जाइत अछि यदर्थ शास्त्र बलवत्प्रयोजनोपेत बुझल जाय से स्पष्ट करबाक हेतु "सामान्यतस्तु दृष्टात्" इत्यादि कहलैन्हि अछि ।

द्वितीय हेतु ई जे यदि "अनुमानमाप्तवचनंचेति द्विविधं प्रमाणमिष्टं प्रमेयसिद्धिः प्रमाणाद्धि" ई कहितथि तँ हेतु-कथन असंगत होइत, कारण जे घटपटादिरूप स्थूलो वस्तु तँ प्रमेये थीक ।

तृतीय ई जे "दृष्टम्" नहि कहलासँ प्रत्यक्ष प्रमाणक अभावे बुझल जाइत प्रत्यक्ष प्रमाण सकल आस्तिक ओ निखिल नास्तिक सभसँ स्वीकृत अछि ओकर अस्वीकार कोना कयल जाय; तेँ प्रमेयसामान्यसिद्धयर्थ दृष्टसहित सकल-प्रमाण कहब अत्यावश्यके थीक ।

आओर दृष्टप्रमाण अनुमानक ओ आगमक उपजीव्य थीक तेँ ओकर अनुमानक ओ आगमक सदृशे स्थान नहि प्रत्युत ओहूसँ उच्च प्रथमे स्थान देल गेलैक से उचित । तावतापि दृष्टप्रमाणोपन्यास महदादिक अवगमार्थ कयल गेल एतादृश बाधितार्थ कल्पना असगते ।

अनुवाद—पांसुलपाद हालिक तँ सांख्यक जे स्थूलतम पदार्थ तकर प्रत्यक्ष नहि कए सकैत अछि ।

विचर—एहिसँ महामहोपाध्याय डाक्टर पं० श्री उमेश मिश्र जीक ई सिद्धान्त प्रकट होइत अछि जे अस्मदादिक दृष्टिगोचर जे पृथिवी जल तेज से सांख्यक पदार्थ नहि थीक । पंचभूत जे सांख्यमे कहल अछि से एहिसँ अतिरिक्ते थीक । बहुत उत्तम सिद्धान्त, किन्तु एहि पर प्रष्टव्य ई जे ई सभ सांख्यसिद्धान्तानुसारेँ अलीक थीक किवा सत्य, यदि अलीक तँ ओकर मिथ्यात्वसाधन आवश्यक । आओर प्रत्यक्षगोचरो घटपटादि यदि अलीक तँ अनुमानगम्य प्रकृति-पुरुषो अलीक किएक नहि । इष्टापत्ति कयने सांख्यक प्रयोजनोच्छेद ।

यदि सत्य तँ ओ सभ सांख्यक मतेँ कोन तत्त्व भेल से कहब आवश्यक ।

ओ प्रत्यक्षदृश्य घटपटादि जगदन्तर्गत थीक वा नहि ? प्रथमपक्षमे प्रकृतिजन्यता मानैक पड़त, हेतु जे जगत्कर्तृतया प्रकृतिक सिद्धि होइत अछि तखन सांख्याभ्युपगत प्रकृतिसँ उत्पन्न सांख्यक तत्त्व कोना नहि भेल ? यदि द्वितीय

पक्षक अवलम्बन तँ अस्मदादि संसारान्तर्गत नहि भेलहुँ तथा प्रत्यक्षदृश्यक उत्पादक के इत्यादि कहबाक होएत ।

तस्मात् अन्धकारसँ हटि प्रकाशमे आबि देखू । पृथिव्यादि जे न्यायशास्त्र-प्रतिपादित प्रत्यक्षभूत पदार्थ अछि से सभ सांख्यहुक मतेँ अछिए । भेद ई जे न्यायक मतेँ ईश्वरेच्छावश परमाणुरूप नित्य पृथिव्यादि बनैत अछि ओ ईश्वरेच्छाहिसँ भग्न भय परमाणुरूपहि प्रलयमे रहैत अछि । सांख्यक मतेँ पृथिव्यादि परमाणुओ जन्ये थीक इत्यादि ।

अनुवाद — वाचस्पति मिश्र काँ नहि बुझना गेलैन्हि जे सांख्यशास्त्रक तत्त्व सभ न्याय ओ वैशेषिक तत्त्व सभसँ नितान्त भिन्न अछि ।

विचार—न्यायक मतेँ जे अनन्त आत्मा सएह सांख्यहुक मतेँ । एवम् स्थूलभूत जे पृथिव्यादि सेहो उभयमतेँ एके । तखन सांख्यक सकल तत्त्व न्यायप्रतिपादित पदार्थसँ भिन्न थीक, से वाचस्पति मिश्र कोना बुझितथि ?

अनुवाद — वस्तुस्थिति की अछि ? की सांख्यक तत्त्व न्यायवैशेषिकक तत्त्वसँ नितान्त भिन्न नहि अछि ?

विचार—न्यायवैशेषिक मतक संग सांख्य मतक समीक्षा तत्त्वकौमुदीमे वाचस्पति मिश्र नहि कएलैन्हि । एतावता 'हुनका नहि बुझना गेलैन्हि' ई कहब अनुचित । सूक्ष्मत्वतारतम्यपरीक्षा काकदन्तपरीक्षावत् उपेक्षणीय थीक । वस्तुतः प्रत्यक्षदृश्य पृथिवी–पर्वतादि सूक्ष्मतर कोना भए सकत ? ई सभ सांख्यक तत्त्व नहि थीक, ई मानब नितान्त असङ्गत । की दर्शनकार लोकनि तत्त्व सभक बटबारा कएने छथि ? प्रत्यक्षभूत पृथिवीपर्वतादि सभक मतेँ मन्तव्ये । अद्वैतवादिओ प्रत्यक्षसिद्धक व्यावहारिक सत्ता मानितहि छथि । केवल अनुमानमात्रगम्य पदार्थमे स्वीकारास्वीकारक कथा प्रवर्तित भए सकैत अछि ।

अनुवाद — महत् यद्यपि अछि बड़ सूक्ष्म तथापि न्यायवैशेषिकक आत्मासँ बहुत अंशमे मिलैत अछि ।

विचार—ई सम्भव, हेतु जे चुटओ तँ हाथीसँ बहुत अंशमे मिलितहि अछि । अखन नित्य व्यापक आत्मा सांख्य न्याय उभयमे प्रतिपादिते छथि तखन महत्केँ आत्मासँ मिलान करबाक की प्रयोजन ? (अपूर्ण)

## ।। उत्तराः कुरवः ।।

सप्तद्वीपात्मिकाया वसुन्धराया जम्बूद्वीपो मध्यमणिः। तस्यापि जम्बूद्वीपस्य पद्माकारस्य कर्णिकारभूतो मेरुपर्वतः। दक्षिणतोऽस्य हिमालयो हेमकूटो निषधश्च, उत्तरतश्च नीलः श्वेतः शृङ्गी च वर्षपर्वता विराजन्ते। भारतकिम्पुरुष हरिवर्षाणि मेरोर्दक्षिणतः; उत्तरतश्च रम्यकहिरण्मयोत्तरकुरुवर्षाणि मध्यतो मेरुविधारकमिलावृतं वर्षम्। तथैव मेरोः पूर्वतो भद्राश्ववर्षम्, पश्चिमतश्च केतुमालंवर्षम् इति पौराणिकानां जम्बूद्वीपसंस्थानम्। अथात्र जम्बूद्वीपान्तर्गतयो कुरुभारतवर्षयोः प्रत्नः कश्चित संबन्धः प्रस्तूयते।

वैदिकसंहिताग्रन्थेषु कुरुदेशस्य कुरूणां वा परिचयो न दृश्यते। ऐतरेय-ब्राह्मणे 'परेण हिमवन्तम्' उत्तराः कुरवः समुद्दिष्टाः। परत्र च देवक्षेत्रत्वेनोत्तर-कुरुदेशो वर्णितः। जानन्तप्यत्यरातिरुत्तरकुरुविजयाय यतते स्मेति चोल्लिखित मिति वास्तवत्वमस्य न कल्पितत्वमित्याभाति। शतपथब्राह्मणे [१.२. ३.१५] पुनरुत्तरकुरूणां कुरुपञ्चालाना च विशुद्धो वाग्व्यवहारः प्रशंसितः। जैमिनीय-ब्राह्मणेऽपि उत्तराणा कुरुणा प्रसङ्गः समायाति।

महाभारते उत्तराः कुरव उत्तरकुरुदेशश्चासकृत्समुल्लिखिताः। आदिपर्वणि भीष्मसंरक्षिते कुरुराष्ट्रे

> उत्तरैः कुरुभिः सार्धं दक्षिणाः कुरवस्तदा।
> विस्पर्धमाना व्यचरन् [म. भा. १. १०२. १०]

इत्यत्र भारतीया दक्षिणकुरवः उत्तरकुरूणा प्रतिस्पर्द्धां कुर्वन्ति स्मेति दक्षिणकुरूणाम् उत्तरकुरुपरिज्ञानं वाढं परिज्ञायते। अनपत्येन पाण्डुना नियोगेन पुत्रप्राप्तये कुन्तीप्रबोधनविधौ

> उत्तरेषु च रम्भोरु कुरुष्वद्यापि वर्तते।
> स्त्रीणामनुग्रहकरः स हि धर्मः सनातनः।। [१. ११३. ७]

यः पुनरेकपतिव्रतो भरतखण्डे तत्कालप्रचलित आसीत् तस्य प्रवर्तनं उद्दालकस्य महर्षेस्तनुजन्मना श्वेतकेतुना विहितमिति राज्ञा पाण्डुना प्रतिपादितम्। अत्र उत्तरकुरूणां व्यवहारस्याभ्यर्हितत्वं दक्षिणकुरुपतिना स्वीकृतम्। एतेन तयोरुभयोर्ज्ञातित्वमेव पुष्टिमाटीकते। द्रौपदीस्वयंवरपर्वणि द्रुपदसविधे युधिष्ठिरेण

सर्वथा धर्मतः कृष्णा महिषी नो भविष्यतीति कथयता

**सूक्ष्मो धर्मो महाराज नास्य विद्मो वयं गतिम् ।**
**पूर्वेषामानुपूर्व्येण यातं वर्त्मानुयामहे ॥** [१. १८७. २८]

इति विवाहविधौ स्वपूर्वजानुसरणं प्रस्तुतम् । तेनात्रोत्तरकुरुदेशप्रचलितस्य आजानिकस्य व्यवहारस्य सत्त्व इति मन्ये । अनुशासनपर्वणि पुनर्यत्र स्त्रियः कामचारा भवन्ति [१३. १०२. २६] इत्युत्तरकुरुदेशवर्णनविधौ दृश्यते ।

सभापर्वणि दिग्विजयव्यपदेशेनार्जुनस्योत्तरकुरुविजयचेष्टा तत्राकृतकार्यताया जातायां महाकायेभ्यो महाबलेभ्यश्च द्वारपालेभ्यो

**युधिष्ठिराय यत्किञ्चित् करपण्यं प्रदीयताम्** [२. २८. ५०]

इति सामपूर्वकं प्रार्थनम् । अनन्तरं च

**ततो दिव्यानि वस्त्राणि दिव्यान्याभरणानि च ।**
**क्षौमाजिनानि दिव्यानि तस्य ते प्रददुः करम् ॥** [२. २८. १६]

राजसूयावसरे राजभिर्युधिष्ठिरायोपायनीकृतेषु महार्घवस्तुषु उत्तरेभ्यः कुरुभ्योऽपोढं माल्यं दुर्योधनेनोल्लिखितम्, [२. ५२.६] स्कन्दनिहतस्य महिषस्य पर्वताभेन शिरसा उत्तरकुरुदेशस्य द्वारं पिहितमभूत् [३. २३१. ९७-८] इत्यपि चोक्तम् आश्वमेधिकेऽनुगीतापर्वणि परिक्षिज्जन्मनोऽनन्तरं पाण्डवागमनावसरे विदुराज्ञया सुशोभिते राजमार्गे

**अदर्शयन्निव तदा कुरून् वै दक्षिणोत्तरान् ॥** १८।७०।२१

इति वैशम्पायनवाक्ये सहैव दक्षिणोत्तरकुरुनिवासिना समुल्लेखः समायाति ।

भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणवर्णनायाम् उत्तरकुरुविवरणं दृश्यते । नीलपर्वतस्य दक्षिणेन मेरोश्चोत्तरतः सिद्धनिषेवित उत्तरकुरुदेशः । तत्र वृक्षा मधुफला नित्यपुष्पफलोपगाः । क्षीरिणो वृक्षा अमृतोपमं षड्रसं क्षरन्ति, फलेषु वस्त्राण्याभरणानि च प्रसूयन्ते । भूमिस्तत्र मणिमयी वालुकाश्च काञ्चनभूयिष्ठाः । जना देवलोकच्युताः सुप्रियदर्शना दीर्घजीविनश्च । तत्र तीक्ष्णतुण्डा भारुण्डा नाम पक्षिणो मृतान् निर्हरन्ति दरीषु च प्रक्षिपन्ति । [७. ७. २-१२] सर्वसुखसम्पन्नश्च्यवनाश्रम उत्तरकुरुसदृशोऽमरावतीसदृशो वेति [१३.५४.१७] गृहदानस्य फलमुत्तरकुरुदेशप्राप्तिः [१३. ५७. ३३] इति च दानधर्मपर्वणि समुद्दिष्टे । स्त्रीपर्वणि पुनर्धृतराष्ट्रं भारतयुद्धहताना सद्गतिसूचकं युधिष्ठिरवाक्यं—

**ये त्वत्र निहता राजन्नन्तरायोधनं प्रति ।**
**यथाकथञ्चित् पुरुषास्ते गतास्तूत्तरान् कुरून् ॥** [११. २६. १७]

खिलहरिवंशे संज्ञाया आदित्यभार्याया बडवारूपेण उत्तरकुरुगमनम् [८.१५], उर्वशीजाने: पुरूरवसो मनोरथफलद्रुमोत्तरकुरुदेशविहारः [२१. ७], वामदेवस्योत्तरकुरुपर्यटनं [१०३. १३] च वर्णितानि ॥

आर्षे रामायणे उत्तरदिग्वर्तीनि स्थानानि वर्णयता सुग्रीवेणोत्तरकुरुदेशस्य विस्तृतं वर्णनं प्रदत्तम्

उत्तराः कुरवस्तत्र कृतपुण्यप्रतिश्रयाः ।
तत: काञ्चनपद्माभिः पद्मिनीभिः कृतोदकाः ।
नीलवैदूर्यपत्राढ्या नद्यस्तत्र महस्रशः ॥
रक्तोत्पलवनैश्चात्र मण्डिताश्च हिरण्मयैः ।
तरुणादित्यसकाशा भान्ति तत्र जलाशयाः ॥
महार्हमणिपत्रैश्च काञ्चनप्रभकेशरैः ।
नीलोत्पलवनैश्चित्रैः स देशः सर्वतो वृतः ॥
निस्तुलाभिश्च मुक्ताभिर्मणिभिश्च महाधनैः ।
उद्भूतपुलिनास्तत्र जातरूपैश्च निम्नगाः ॥
सर्वरत्नमयैश्चित्रैरवगाढा नगोत्तमैः ।
जातरूपमयैश्चापि हुताशनसमप्रभैः ॥
नित्यपुष्पफलास्तत्र नगाः पत्ररथाकुलाः ।
दिव्यगन्धरसस्पर्शाः सर्वकामान् स्रवन्ति च ॥
नानाकाराणि वासांसि फलन्त्येते नगोत्तमाः ।
मुक्तावैदूर्यचित्राणि भूषणानि तथैव च ॥
सर्वर्तुसुखसेव्यानि फलन्त्येते नगोत्तमाः ।
महार्हमणिचित्राणि फलन्त्येते नगोत्तमाः ॥
शयनानि प्रसूयन्ते चित्रास्तरणवन्ति च ।
मनः कान्तानि माल्यानि फलन्त्यत्रापरे द्रुमाः ॥
पानानि च महार्हाणि भक्ष्याणि विविधानि च ।
स्त्रियश्च गुणसम्पन्ना रूपयौवनलक्षिताः ॥

× × × ×

सर्वे सुकृतकर्माणः सर्वे रतिपरायणाः ।
सर्वे कामार्थसहिता वसन्ति सह योषितः ।
तत्र नामुदितः कश्चिन्नात्र कश्चिदसत्प्रियः ।

× × × ×

अहन्यहनि वर्धन्ते गुणास्तत्र मनोरमाः ॥
समतिक्रम्य तं देशमुत्तरः पयसां निधिः ।

[रामायण, गीताप्रेस ८. ८३. ३८-५३]

प्रागुक्तेन महाभारतनिबद्धोत्तरकुरुविवरणेन साकं रामायणगतस्य विवरणस्य सामान्यतः साम्यं दृश्यते। महाभारते पुनस्तद्देशपरिज्ञानमाधिक्येनेति मन्तव्यम् । अयमुत्तरकुरुदेशः आधुनिकसोवियेटसङ्घान्तर्गत आसीदिति संभाव्यते। तस्य दुर्गमत्वं न केवलमर्जुनेन, अपितु नोपोलियनेन हिट्लारेण चानुभूतम्। तत्रत्यानां सुदीर्घजीवित्वमधुनापि विस्मयमावहति। शवानां पक्षिभिर्निर्हरणं दरीषु च प्रक्षेपः सन्निहिते पारस्यप्रान्तेऽधुनापि दृश्यते। न केवलं कुरवः दक्षिणेन भारतं वर्षमागत्य तत्र साम्राज्यं प्रशासितवन्तः, पारस्यप्रान्तेऽपि तेषां प्रादुर्भावोऽनुमीयते। 'साइरास्' इत्याख्यः पारसीकाधिपतिः कुरुवंशीय आसीदिति भाषातत्त्वानुसारेण परिज्ञायते। उत्तराः कुरवः पारसीका भारतीयाश्च आर्या एव। तेषां परस्परसंबन्धः प्राचीनेषु ग्रन्थेषु समुद्दिष्टोभूत् क्रमशश्च स संबन्धो विस्मृतो जातः। नाममात्रविज्ञातस्य देशस्य विवरणे रूपकाश्रयः कल्पनाबाहुल्यं च पुराणादौ लब्धपदे आस्तामिति शम् ।

ठक्कुरोपनामको भारद्वाजोऽनन्तदेवशर्मा
कामेश्वरसिंहसंस्कृतविश्वविद्यालयस्थः

# स्वर्गीय नन्दन झा

**पं० श्री भवनाथ झा "दीपक", लालगंज**

एक अपूर्व व्यक्तित्व, अनुकरणीय उदारता, श्लाघ्नीय चतुरतासँ सम्पन्न वैद्यनाथ प्रसिद्ध नन्दन झा इसहपुर ग्राम निवासी श्रोत्रियकुलावतंस श्रीनाथ झाक बालक महाराज रुद्रसिंहक दौहित्र छलाह। किंवदन्ती अछि जे हिनकासँ जेठ भाय विश्वनाथ झाक देहान्त मुण्डन-संस्कारक केसक अपहरणसँ भए चुकल छल, जे किछु प्रयोग (टोना-टापर) जन्य मानल गेल। से हिनकहु मुण्डनक अवसर पर से घटना घटल; किन्तु भावी नीक छल जे एक माहात्मा अनायास ओहि दिन ओतए पहुँचि गेलाह। समस्त ग्रामीण मुण्डनक उपलक्ष मे समागत राज परिवारक स्वागत-सत्कारमे लागल छल। एक दिश हर्षक अवसरक आजन-बाजन बाजि रहल छल तँ दोसर दिश अनिष्ट घटनासँ विस्मय ओ खेदक छाया सेहो लोकविशेषक मुँह पर परिलक्षित छल। ओ महात्मा एकर अन्वेषण कएल तँ लोकक मुहँ सँ केसक अपहरण वार्त्ता ओ पूर्व घटित घटनाक वृत्तान्त ज्ञात भेलन्हि। ताहि पर ओ कहलथिन्ह जे ओ केस भेटि तँ सकैछ; किन्तु जे ओ केस लए आनत तकर मृत्यु दश दिनक भीतर भए जैतैक, बच्चा धरि सकुशल रहत। ई बात हवेली तक पहुँचल। महाराजक कन्या रहितहुँ वात्सल्यसँ विवश भए हिनक माय ओतए जाए ओ केस लए अनलन्हि। मुण्डनक दश दिनक भीतर हिनक माइक देहान्त भए गेलन्हि। दुइ कन्या एक बालक हिनकहि राखि ई स्वर्गवासिनी भए गेलीह। एहि दुइ कन्याक विवाह बटुरी ग्राम भेलन्हि। एहि दुइ बहिनिमे पाँच भागिन हिनका भेलथिन्ह। एक बहिनिक बालक महावीर मिश्र तथा दोसर बहिनिक बालक बलभद्रमिश्र, रामभद्र मिश्र, जयभद्रमिश्र, सुभद्रमिश्र। हिनका लोकनिक सन्तति सम्प्रति बटुरी ग्राममे विद्यमान छथि।

किछु दिनक बाद जखन नन्दनझा सात वर्षक भेलाह, तखन दरभंगा राज हिनका शिक्षार्थ रायपुर पठएबाक विचार कएलक, ओ तेँ गर्भाष्टमहिंमे हिनक उपनयन सेहो भए गेल। तकर बाद ई रायपुर पठाओल गेलाह तथा ओतएसँ सोलहम वर्षक अवस्थहि मे आपसो भए गेलाह। ताधरि हिनक सम्पत्तिक व्यवस्था "रिसीभर"क रूपमे राजदरभंगे कए रहल छल। एहि बीचमे नन्दन झाक पिता श्रीनाथझा अपन आचार-विचारक सम्पादनमे सहायतार्थ

द्वितीय विवाह सेहो कएल, जाहिमे तीन बालक भेलथिन्ह, जगन्नाथ झा, कुमुदनाथ झा, ओ भेषनाथझा। छिनका लोकनिक सन्तति सम्प्रति मंगौली ग्राम मध्य विद्यमान छथि। एहिमे कुमुदनाथ झाक बालक स्वर्गीय चेतनाथ झा भारतीय स्वतन्त्रता संग्रामक एक प्रमुख सेनानी मानल जाइत रहलाह। पाहीटोलक स्वर्गीय शान्तिनाथ झाके संग कए पाहीटोल ग्रामहिक भैरवस्थानमे 'कर्मवीर आश्रम" नाम राखि ई लोकनि एक संस्था खोलने छलाह; जाहिमे अंगरेज सरकारके देशसँ भगबाक क्रिया-कलापक प्रदर्शन एवं कर्त्तव्यक निर्धारण होइत छल। एतए भारतक प्रथम राष्ट्रपति स्वर्गीय डा० राजेन्द्र प्रसादजी सेहो आयल छलाह।

उक्त नन्दनझाक तीन वैमात्रेय भायमे सबसँ छोट भेषनाथझाक "व्यवहार-विज्ञान" नामक मैथिलीमे रचित पुस्तक मिथिलाचारक एक प्रामाणिक स्वरूपक दिग्दर्शन करएबामे मुख्य मानल जाइत अछि। एहि पुस्तकक पुनः संस्करण प्रकाशित करएबाक विचार रचयिताक कर्मठ बालक श्रीयुत शक्ति नन्दनझा एवं पौत्र प्रो० श्रीयुत नन्दनझाजी कए रहल छथि।

हँ, तँ नन्दनझा जे सोलहमहिँमे रायपुर छोड़ि चल अएलाह, तकर मुख्य कारण भेल अपन सम्पत्तिक रक्षाक उत्तरदायित्व राजसँ लए लेनाइ। एही हेतु ई अध्ययन पूर्ण नहिँ कए सकलाह। से जे भेल से भेल, पढ़ब समाप्त नहिँ कएनहुँ ई अपन कार्य-कुशलताक परिचय समाजमे एहि रूपेँ देल जे एखनहुँ चर्चाक विषय बनल अछि। गाम आबि ई पर्याप्त जमीन अपन ओहि दुनू सोदर बहिनिकेँ देल तथा माइक खोंइछमे आएल मौजे पैंचटोल* मात्र छोड़ि आओर सम्पत्ति चास, बास आदि सबटामे उक्त तीनू वैमात्रेयक संग-संग सतमायहुकेँ चारि अंश देलैन्ह, अपने एक अंश मात्र राखल।

महावैयाकरण पण्डित दीनबन्धुझाक पितामह रघुवरझा जे नन्दनझाक पिसियौत छलथिन्ह, हुनका गोखनपुर गाम सँ अपन गाम इसहपुर आनि इगह बसाओल। हिनका वासभूमि दए चतुःशाल बनबाए देल। तहिँ आइ एहि गामक भूमि महावैयाकरणक जन्मदात्री भए गौरवान्वित अछि।

---

*नेहरा गामक लगक ई गाम सम्प्रति 'पहिटोल' कहबैत अछि। पुरना सर्वे मे एकर नाम 'पइकटोल' भेटैछ। आइ मैथिली सँ 'पइक' शब्द लुप्त भय गेल अछि, मुदा, 'पैकार' शब्द मे विद्यमाने अछि। पइकक अर्थ भेल पशुपालक जाति। —सम्पादक।

नन्दनझाक एहन उदाराचार ओ कर्तव्यपरायणता देखि वा एकरा हिनक अहम्भावना बूझि महाराज बहादुर रमेश्वर सिंह, जे हिनक ममिऔत छलथिन्ह, हिनकासँ ईर्ष्या करए लगलाह। फलतः हिनको स्वाभिमानी हृदय मे हुनका मेँ दूर रहबाक भावना जड़ि जमबए लागल आओर ई बनि गेल विरोधक हेतु। लोकप्रियताक प्रतीक नन्दनझा स्वाभिमानक आगाँ किछु भए जाए, विचलित नहिँ होइ एहि नियमकेँ गहने तनले रहलाह। एतदर्थ हिनका स्वग्राम (डमहपुर) छोड़हु पड़ल। ताही समयमे ई नेपाल दिश सेहो भ्रमण कएलन्हि। ओतए हिनक परिचय पाबि ओ परिस्थिति बूझि हिनका राणा जंगबहादुर ओतए रहबाक सर्वथा सुविधा ओ व्यवस्था कए देबए चाहल। दरभगाक तत्कालीन प्रसिद्ध जमिन्दार दरभगी खाँ, राजा लीलानन्द सिंह, रहुआक राय बहादुर वनमाली प्रसाद आदि सर्वांगीण व्यवस्था कए देबाक हेतु उद्यत भेलाह किन्तु स्वाभिमानी नन्दनझा एकरा स्वीकार करब उचित नहिँ बूझल। ई अपन पितृकुल ओ मातृकुल दुनूकेँ एहि सँ अपमानित करब मानल। पश्चात् ई ओएह अपन माइक खोँइछक भूमि मौजे पैघटोलमे जाए आवास बनाओल। पूर्ण कष्ट सहितहुँ ई अपन ममिऔतक लग आत्मसमर्पण नहि कएल। एक दिन अनायास ओ स्वतः चल आबि रहल ई वैमनस्य दूरो भेल: किन्तु नन्दन झाक सांसारिक समयमे घटल बड कम दिनक हेतु। स्वतः वैमनस्य हटि जएबाक दिन दूनू ममिऔत-पिसिऔत गरदनिमे गरदनि मिलाए कनलाह ओ ९०० नौ सएकेँ रुपैया मासिक जे देब बन्द कए देने छलथीन्ह से महाराज देबहु लगलथिन्ह।

प्रकृत घटना घटल शारदीय नवरात्रक यात्रा दिन। ओहि दिन दरभगाक नरेश लोकनि सेहो विजय-यात्रा करैत छलाह। ताहि अवसर पर महाराज बहादुर रमेश्वर सिह आबि रहल छलाह गजरथ पर ओही रास्ता मेँ, जाहि रास्ताक कातमे दरभंगा मध्य नन्दनझाक सेहो मकान छल। अपन मकान पर सँ ठाढ़ भेल ई रास्ता दिश देखि रहल छलाह। संयोगवश दूनू ममिऔत-पिसिऔतक आँखि एकहि बेर एक भेल। आँखि नीचाँ कए महाराज एक कुटुम्बकेँ पठओलथिन्ह जे हुनका जाए कहिऔन्ह जे हमरा सग हौदापर चढ़ि आन के जाएत? तेँ आबथि। ई ताहि पर उत्तर देलथिन्ह जे ताहि योग्य हमरा कहाँ रखने छथि। ई उत्तर ओहि कुटुम्बसँ सुनि महाराज हाथी बैसाए अपनहिँ उतरि हिनका लग पहुँचलाह। तखनुके ओ उल्लिखित कानब अछि। तत्पश्चात् ईहो हुनक सङ्ग भए ओहि शोभा-यात्रामे सम्मिलित भेलाह; किन्तु ई सम्मिलत छबे मास रहल। नन्दनझा छओ मास बादे स्वर्गीय भए गेलाह।

हिनका तीन बालक भेलथिन्ह, व्रजनन्दन प्रसिद्ध गणेशझा, लोकनाथ झा ओ शम्भुनाथ झा। गणेशझाके दू बालक ओ तीन कन्या भेलथिन्ह जे दूनू भाइ श्रीयुत लक्ष्मीनन्दन प्रसिद्ध बाबूजीझा ओ श्री रमेश झा सम्प्रति विद्यमान छथि। ई लोकनि सम्प्रति पैघटोल तथा इसहपुर दूनू गामक समयानुसार उपयोग तथा उपभोग करैत अपन पूर्वजक कीर्तिक यथासंभव रक्षामे सचेष्ट भेल समाज ओ सस्कृतिक उन्नयनमे लीन छथि। अपन पितामह स्व० नन्दन झाक नाम पर इएह इसहपुरमे महावैयाकरणक पञ्चतत्वमे मिलबाक स्थलक एक भागहिमे, एक संस्कृतोच्चविद्यालय १९५६ ई० मे एवं एक संस्कृत-महाविद्यालय १९६५ ई० मे स्थापित कए चुकल छथि। एहिमे सुयोग्य अध्यापक लोकनिकें राखि ई यशक भागी बनल छथि। हम स्वयं एहि विद्यालयक एक अध्यापक छी जे एहि लेखक लेखक भए लेखाधार रूप ओहि कीर्तिस्तम्भक आत्माक चिरातिचिर शान्तिक कामना करैत महावैयाकरणक स्मारक-मालामे ई एक पुष्पोपहार अर्पण करैत छी।

✦✦

# मातः सरस्वति !

पं० श्यामानन्द झा

कथमुज्ज्वलसि महिमानं देवि न जाने

जीवति भरतभुवः सन्ताने प्रकृतेरपि वरदाने । देवि···

एकमिदं भूमण्डलमासीत्
पशुरिव जनता मोहमयासीत्
ज्ञानरविस्तंपति स्म तदा ते भारतगगनविताने । देवि···

परःशते वैदिकशाखायाम्
उपनिषदामगणितगाथायाम्
नृत्यति ते शैशवममिताभ विहरति रहसि निदाने । देवि···

सिञ्चसि या मधुनाऽपि रसौघैः
पोषयितासि वचोभिरमोघैः
मैव सततमपभाषा सीदति तव गौरवगुणगाने । देवि···

पाणिनिना गमिता संस्कारम्
व्यासेनाऽऽकलिता द्युतिसारम्
वाल्मीके रचिते शुचिरोचिषि दीव्यसि नवपरिधाने । देवि···

स्मृतिपुराणपरिपोषिततत्त्वे
द्वादशदर्शनरचितमहत्त्वे
अष्टादशविद्ये कविनोदिनि, विजृम्भसे विज्ञाने । देवि···

कृषिवाणिज्यसमरनीतीनाम्
पाशुपाल्यवैद्यकगीतीनाम्
जन्मभूमिरसि निखिलकलानां जयसि समृद्धिविधाने । देवि···

श्यामान्द रचितकवितायाम्
देहि वाणि, निज पाणिच्छायाम्
करुणार्णवनयने द्रुतमानय भारतमुज्ज्वलमाने । देवि···

## विक्रमार्कं प्रति

पं० [illegible] झा

विक्रमार्क, पुनरेहि पुनर्जय हर्षय भारतवर्षम्

प्रमदकुलंसम्प्रतिप्रकिकूलम्

यदसिव राष्ट्रपयोनिधिकूलम

आवन्ती सन्ततमुत्सीदति कलयसि किं नामर्षम्

यस्या जन्मभुवश्छायायाम्

विश्वमनैषीः शान्तिसुधायाम्

सैव निगृह्य परैरुपनीता पराजयैरपकर्षम्

अखिलं राज्यतन्त्रमुन्माद्यति

शान्तिकथा मूलादुत्क्राम्यति

चक्रवर्तितामेत्य नवीकुरु मालवगणनावर्षम्

उज्जयिनीयं प्रभवतु धन्या

स्वयं वृणीतां त्वा दिक्कन्या

शतधा स्फुटतु वैरिवक्षस्थलमित्वा तव संघर्षम्

कालिदाससुकविः पुनरायात्

शाकुन्तलरघुवंशौ गायात्

नवरत्नैस्तव राजसभा सा दर्शयतामुत्कर्षम्

देवः सुधारसैः परिषिञ्चतु

सस्यश्यामलभूमिश्चञ्चतु

गृहे-गृहे गोदुग्धं प्रवहतु लोको गच्छतु हर्षम्

शिक्षागुरुः समेषामासीत्

शिरसा यस्यादेशमयासीत

भारतभूर्जनयित्वा त्वादृशमाहवमुद्दर्षम्

# साहित्यशास्त्रे "गतिः"

**पं० श्री कृपाकान्त ठाकुरः, विद्यावारिधिः**

अलङ्कारशास्त्रनिर्मातृषु भामह-दण्डि-मम्मट-विश्वनाथ-पण्डितराजजगन्नाथानां नामानि न केषां सहृदयानां श्रुतिपथमागतानि, परन्तु नाद्यत्वे कोऽपि रसमंजरी-प्रभृति-विविधग्रन्थप्रणेतारं जानकीजन्म भूप्रभवंसन्मिश्रमहामहोपाध्यायभवनाथप्रपौत्रं भानुदत्तमिश्रमपि अलंकारशास्त्रकर्तृत्वेन वेत्ति, इति नितरां खेदविषयः। अतोऽत्र निबन्धे तत्कृतमलंकारतिलकाभिधं ग्रन्थमाधारीकृत्य किमपि प्रस्तूयते।

राजशेखरः स्वकाव्यमीमांसाया काव्यमदः सरस्वतीपुत्रत्वेन काव्यपुरुषमाह। मन्ये स्वं तदनुयायिनं मन्यमानो भानुदत्तमिश्रः स्वरचिते अलंकारतिलके काव्यं पुरुषरूपं मनसि निधाय तस्य शरीरं काव्यमित्यभिधाय तल्लक्षणञ्च "अभिप्रेतार्थनिर्वाहकं पदकदम्बकं शरीरम्" इत्याह। शरीरञ्च आत्मेन्द्रियप्राणमनोरहितं न किमपि कर्तुं प्रभवति, इति साहित्यदर्पणकारवत् "रसा आत्मानः इत्युक्त्वा गति-रीति - वृत्ति-दोषाभाव-गुणालङ्काराः इन्द्रियाणि, व्युत्पत्तयः प्राणाः, अभ्यासो मन" इत्युक्तवान्।

एषु इन्द्रियेषु गतिः नान्यैः सूरिभिरङ्गीकृता। रीतयस्तु वैदर्भ्यादयः प्रसिद्धाः सर्वसम्मताश्च। वृत्तिरपि शक्ति-लक्षणा-व्यञ्जनारूपा शाब्दिकाङ्गीकृता सकलैरपि साहित्यशास्त्रप्रवर्त्तकैः स्वस्वग्रन्थेषु प्रदर्शिता एव।

यद्यपि अल्पकायेऽस्मिन् ग्रन्थे गतिरिव वृत्तिरपि अन्यैव तथापि अप्रकटितलक्षणायास्तस्या अन्यत्वकल्पने मानाभावः। यदि सरस्वतीकण्ठाभरणदिशा अन्यैवेयमिति स्वीक्रियताम्, तर्हि शाब्दिक-साहित्यिक-स्वीकृतवृत्तेः भोजराजस्वीकृतवृत्तेश्च सत्त्वेन द्वैविध्यापत्त्या महद्गौरवम्।

नच अन्यैराचार्यैरनङ्गीकृताया गतेः का गतिरिति वाच्यम्; गतिर्हि स्पन्दन तच्च प्रवाहरूपम् अन्तर्भावितण्यर्थमत्र स्पन्दनम्, लाक्षणिकं वा; एवं च गतिशब्देन पुरुषत्वेन निरूपितस्य काव्यस्य नैयायिकैरङ्गीकृतानामाकुञ्चनादिपञ्चकर्मणा मध्यवर्त्तिनो गमनस्य संग्रहणात्। गमनं च प्रवेशः काव्यविषये इति फलितोऽर्थः।

अतोऽत्र गतिः का इति विचार्यते। न ह्यत्र गम्यतेऽनया इति क्तिन्नन्तो गतिशब्दः, न वा भावक्तिन्नन्तः, अपितु पारिभाषिकः; तद्यथा भोजदेवः[1]—

**गद्यं पद्यं च मिश्रं च वाक्यं यस्मा गतिः स्मृता।**
**अर्थोचित्यादिभिः सापि वागलङ्कार इष्यते॥**

अमुत्र ग्रन्थे लघु-गुरु-पुरस्कारेण या वर्त्तते सा गतिरिति।[2] इयं चाष्टादशधा विभक्ता तद्यथा—शुद्धा तावत्त्रिः, द्रुता विलम्बिता मध्या चेति। मिश्रितापि द्विविधा द्विमिश्रिता त्रिमिश्रिता च। द्विमिश्रिता षड्विधा—द्रुत विलम्बिता, द्रुतमध्या, विलम्बितद्रुता, मध्यविलम्बिता, विलम्बितमध्या, मध्यद्रुता चेति। त्रिमिश्रिताऽपि षड्विधा—द्रुतविलम्बितमध्या, द्रुतमध्यविलम्बिता, विलम्बितद्रुतमध्या, विलम्बितमध्यद्रुता, मध्यद्रुतविलम्बिता, मध्यविलम्बितद्रुता चेति। इत्थमस्या गतेरष्टादश भेदा भवन्तीति।

**सा लघूनां गुरूणांच बाहुल्याल्पत्वमिश्रणैः**
**गद्ये पद्ये च मिश्रे च षड्प्रकारोपजायते॥**[3]

सा गतिरिति शेषः। अस्मिन्नलङ्कारतिलके लघुगुरुपुरस्कारेण या वर्त्तते सा गतिः इति तल्लक्षणं कृतम्।

एवं च बहुभिर्लघुभिर्युक्ताया द्रुतानामवृत्तेरुदाहरणम्—

**जय कपटमीन तव तनुर्विलसत्कमल-पटलमिव प्रकटयति नक्षत्रनिवह विभ्रमम्**[4]।

अत्र लक्षणसमन्वयश्चैवम्—वाक्येऽस्मिन् पञ्चैव गुरवः शेषान्यक्षराणि लघून्येवेति। पद्ये ऽपि यथा—

**अयि विजहीहि दृढोपगूहनं त्यज नवसङ्गमभीरुवल्लभम्।**
**अरुणकरोद्‌गम एष वर्त्तते वरतनु सम्प्रवदन्ति कुक्कुटाः॥**[5]

अत्रापि लघ्वक्षराणि भूयांसि अल्पानि गुर्वक्षराणि, इति लक्षणसमन्वयः। 'अल्पैर्विलम्बिता' इति द्वितीयाया लक्षणे "लघु"भिरितिविशेष्याक्षेपेण अल्प-

---

१. सरस्वतीकण्ठाभरणम्।
२. अलङ्कारतिलकम्।
३. स० क०।
४. अल०; प्र० परि०।
५. सर० कण्ठा०; द्वि० परि०।

लघ्वक्षरा विलम्बिता नाम गतिर्भवतीति पर्यवस्यति । उदाहरणम्—

**लङ्कामर्त्तुं वंशोहंसं संहर्त्तुं नालिकामालिकामिव सेतुमकार्षीः**[६] ।

पद्यं यथा—

**प्रणम्य हेतुमीश्वरं मुनिं कणादमन्यतः ।**
**पदार्थधर्मसंग्रहः प्रवक्ष्यते महोदयः ॥**[७]

अत्र "स्थाने स्थाने गुर्वक्षरयोगाद् विलम्बिता गतिः" इति भोजदेवः ।[८] एतेन लघ्वक्षराणामल्पत्वं प्रतीयते । इत्थं चोभयत्र लघूनामक्षराणामल्पतया गुरूणांच भूयस्त्वात् विलम्बिता गतिरिति लक्षणसमन्वयः । "समैर्मध्या" इति ग्रन्थः अर्थस्तु यत्र गद्ये पद्ये वा लघूनां गुरूणाञ्चाक्षराणां समा संख्या भवेत् तत्र मध्या नाम गतिर्भवति । उदाहरणं यथा—

**"हरसि हलधर हललेखिन्या वीर्यं लिखितुमिव कालिन्दीकल्लोलनिकर मवीधारान्" इति ।**[९]

यद्यप्यत्र लघुगुर्वक्षराणां संख्यायां समत्वं न विद्यते तथापि चतुस्त्रिंशद-क्षरात्मकेऽस्मिन् वाक्येऽधिकगुर्वक्षरैः मध्या नाम गतिः ग्रन्थकर्त्राङ्गीकृता । एवमेव—

**आसीद्दैत्यो हयग्रीवः सुहृद्वेश्मसु यस्य ताः ।**
**वहन्ति स्म बलं बाह्वोः सितच्छत्रस्मिताः श्रियः ॥**[१०]

अत्राऽपि लघूनां गुरूणां चाक्षराणां समत्वाभावेऽपि मध्या नाम गतिरङ्गी-कृतास्ति । एवं च प्रथमा बहुलघ्वक्षरा द्रुता, द्वितीया अल्पलघ्वक्षरा विलम्बिता, तृतीया समलघुगुर्वक्षरा मध्या इति तिस्रो गतयो भानुमिश्रेणाङ्गीकृताः । प्रथमोदाहरणद्वये बहूनां लघ्वक्षराणां द्वितीयोदाहरणद्वये अल्पलघ्वक्षराणां तृतीयोदाहरणद्वये च समलघुगुर्वक्षराणां यथायथं समावेशोऽस्तीति सुधियो विभावयन्तु ।

---

६. अ० ति०, प्र० प० ।
७. स० क०, द्वि० परि० ।
८. स० क०, द्वि० परि० ।
९. अ० ति०, प्र० परि० ।
१०. स० क०, द्वि० परि० ।

# हास्यरसः

**प्रो० रामजी ठाकुरः**
**महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह महाविद्यालयः, सरिसबः।**

प्राचीना भारतीयाः साहित्यसमीक्षका रसस्य महिमानमुच्चैरघोषयन् । तथाहि आचार्यभरतः नहि रसादृते कश्चित् पदार्थः प्रतीयते इति । सकलालङ्कारिकसिद्धान्तव्यवस्थापकस्य ध्वनिकृत आनन्दवर्धनस्य मतेन त्रिविधेषु ध्वनिषु रसध्वनेरेव काव्यात्मता—काव्यस्यात्मा स एवार्थः इति । तत्र द्वित्रान् विहाय प्रायः समे ऐकमत्येन रसस्य आनन्दमयत्वं स्वीकुर्वन्ति । भारतीया दार्शनिकाः साहित्यसमीक्षकाः श्रुतिप्रामाण्यपुरस्कारेण सच्चिदानन्दाभेदं रसस्य दृढमभ्युपगच्छन्ति—रसो वै सः । रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दीभवति (तै० उ०)।

आचार्यभरतः अष्टौ रसान् पर्यगणयत्—

शृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः ।
बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृता ॥

एषु च रसेषु शृङ्गार-रौद्र-वीर-बीभत्सा मौलिका मन्यन्ते। एते च हास्य-करुणाद्भुत-भयानकानां मूलभूताः। तत्र कारणान्यभिधीयन्ते। शृङ्गाराभासात् तदनुकृतेश्च हास्यरसः, रौद्रस्य कर्मणः परिणामरूपः करुणः, वीररसकर्मस्वरूपोऽद्भुतः बीभत्सदर्शनाच्च भयानकरसः सञ्जायन्ते—

शृङ्गाराद्धि भवेद्धास्यो रौद्राच्च करुणो रसः ।
वीराच्चैवाद्भुतोत्पत्तिर्बीभत्साच्च भयानकः ॥ ६. ३९. ना. १

आचार्याभिनवगुप्तः रसानां परस्परमुत्पाद्योत्पादकतायाःस्पष्टं विवरणमभिनवभारत्यामुपातिष्ठिपत् । तदनुसारेण शृङ्गारस्य हास्यहेतुत्वं तदा सम्भवति यदा शृङ्गारस्य विभावानुभावसंचारिभावाः आभासरूपतया प्रतिपादिताः शृङ्गाराभासं समभिव्यञ्जन्ति। शृङ्गारानुकृतिः अनौचित्यप्रवर्तितः शृङ्गारः शृङ्गाराभास इत्युच्यते। अस्य शृङ्गाराभासस्य विभावोऽनुभावः सञ्चारिभावश्च सर्वे आभासन्ते। एभिर्विभावाद्याभासैः अभिव्यञ्जितस्य रसस्य चर्वणाऽपि रसाभास एवोच्यते।

शृङ्गाराभासे सति तत्र स्थायी रतिभावं नाभिव्यनक्ति। स अभिलाषरूपः शृङ्गारस्तत्र व्यभिचारितामेव प्रपद्यते। इह रतिः स्थायित्वरूपतामेव भजते।

यथा, सीतां प्रति रावणस्य प्रणयवर्णने रतेरेकनिष्ठतया अभिव्यज्यमानः शृङ्गाराभासः हास्यास्पदतामेव भजते। यतः सीता रावणं द्वेष्टि, तमुपेक्षते, तस्मात् तां प्रति तस्य प्रणयनिवेदनं न सामाजिकानां हृदयं स्पृशति। नात्र रावणनिष्ठायाः सीताविषयायाश्च रतेः साधारणीकरणं स्वीक्रियते। प्रणयस्य हृदयस्पर्शितायाम् अभिमानस्य विलय एव संभवति तदाभासत्वेन तदनुकाररूपतया हेतुत्वं शृङ्गारेण सूचितम्। यतो विभावाभासादनुभावाभासाद् व्यभिचार्य्याभासाद् रत्याभासे प्रतीते चर्वणाभाससारः शृङ्गाराभासः कामना। अभिलाषमात्ररूपा हि रतिरत्र व्यभिचारिभावः। न स्थायी·········यतो रावणस्य सीता द्विष्टा मय्युपेक्षिका वेति हृदयं नैव स्पृशतीति। तत्स्पर्शे ह्यभिमानोऽस्यां (स्य) विलीयत एव। (ना. शा. अभिभा. ६-२९५)।

अग्निपुराणकृद्भोजश्च रतिमेव सर्वभावमूलं स्वीकुरुते "तद्भेदाः काममितरे हास्याद्या अप्यनेकशः।" (अ० पु०)। हास्योत्पत्तिः अग्निपुराणे स्पष्टमभिहिता "शृङ्गाराज्जायते हासः" इति। श्रीभोजराजस्येयमुद्घोषणा साहित्यविदां समाजे नितरां प्रसिद्धैव—"आम्नासिषुर्दश रसान् सुधियो वयं शृङ्गारमेव रसनाद् रसमामनाम." इति। शृङ्गारमूलाः सर्वे भावा इति तात्पर्यम्। एवमेव भवभूतिरपि सर्वेषामेव भावानां रसानाञ्च कारुण्यमूलकतामेवाङ्गीकुरुते एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्भिन्नः पृथक्पृथगिवाश्रयते विवर्त्तान् इति। परममी दार्शनिकसिद्धान्ता आपाततो न समेषां बुद्धिविषयतामधिगच्छन्ति। यथा-सर्वं खल्विदं ब्रह्मेति वेदान्तवाक्यार्थः नहि मलिनधियां धीविषयो भवति। अतोऽत्र विचारणीयम्—कोऽयं हास्य-रसः ? किञ्चास्य मूलम् ?

हास्यं लक्षयता पण्डितराजजगन्नाथेनोच्यते—"वागङ्गादिविकारदर्शनजन्मा विकासाख्यो हासः" इति। हासस्थायिभावात्मकश्च हास्यः। विकृतवाक्, विकृताङ्गश्च व्यक्तिविशेषोऽस्यालम्बनम्। तस्य विकृता वाक्, विकृताश्च चेष्टास्तदुद्दीपनम्, दशनविकासादयोऽनुभावाः, उद्वेगादयश्च व्यभिचारिणो भवन्ति। यथा—श्रोतातपादैर्विहिते निबन्धे निरूपिता नूतनयुक्तिरेषा। अङ्गं गवां पूर्वमहो पवित्रं न वा कथं रासभधर्मपत्न्याः इति। इह अनुचितवाक् तार्किकपुत्र आलम्बनम्, तदीया निःशङ्कोक्तिरुद्दीपनम्, दशनविकासादयोऽनुभावाः, उद्वेगादयो व्यभिचारिणः हासश्च स्थायिभावः।

"शृङ्गारानुकृतिर्हास्य"मिति भरतसूत्रं व्याचक्षाणोऽभिनवगुप्तोऽपि हासाख्यस्थायिभावस्य मूलरूपेण अनौचित्यमेव स्वीचकार। औचित्यसिद्धान्तं प्रतिष्ठापयत आचार्यक्षेमेन्द्रस्यापि हास्यरसमूलजिज्ञासायामधस्तनी कारिकेयमती-

सोपयोगिनी प्रतिभाति—

> कण्ठे मेखलया नितम्बफलके तारेण हारेण वा,
> पाणौ नूपुरबन्धनेन चरणे केयूरपाशेन वा।
> शौर्येण प्रणते रिपौ करुणया नायान्ति के हास्यताम्
> औचित्येन विना रुचिं प्रकुरुते नालंकृतिर्नो गुणाः ।।

अयमौचित्यसिद्धान्तो न केवलं काव्यानन्दस्यैव रहस्यमुद्घाटयति अपितु व्यापकतया काव्यस्येव अन्यासामपि ललितकलानां सौन्दर्यमूलं निर्धारयति। स्पष्टमिदमभिधातुं शक्यते यत् समस्तलोकजीवनमृते तत्वादस्मात् निष्फल-मुपहासास्पदञ्च सञ्जायते। कटककुण्डलादयोऽलङ्कारा: शौर्यादय आत्मधर्माः नूनमुत्कर्षाधायकाः भवन्ति, परं न स्वरूपतस्तेषामुत्कर्षो लोकजीवनेऽनुभूयते। काचिद्रूपयौवनसम्पन्ना कटौ मेखलां वक्षःस्थले च मुक्ताहारं दधाना करकमलयोः केयूरे, चरणकमलयोश्च नूपुरे बधाना मनो मोहयति; सैव यदि कण्ठे मेखलां धारयेत्, नितम्बस्थले विशालं हारं च परिदध्यात्, पाणौ नूपुरं चरणे च केयूरपाशं बध्नीयात्, किं सोपहासपात्रं न भवेत्? विदूषकतां न प्रपद्येत? तां दृष्ट्वा विवेकिनोऽपि स्वपितुरपि मनसि हासो न परिस्फुरेत्? न केवलं बाह्यानामलङ्काराणामेवेयं स्थितिः, अपि त्वात्मगुणाः शौर्यकरुणादयोऽपि अनौचित्यप्रवर्तिताः हास्यालम्बनतामेव प्रपद्यन्ते, "**शौर्येण प्रणते रिपौ करुणया नायान्ति के हास्यताम्?**" तस्माद्धासमूलमनौचित्यमेव, न द्वेष इति मन्यामहे।

एतद्विपरीतं सर्वथा नूतनं विचारमुद्भावयन्ति तत्रभवन्तः डॉ० काञ्चीनाथ झा 'किरण' महोदयाः। मैथिल्यकादमी-पटनातः १९७७ खृस्तेऽब्दे प्रकाशिते निबन्धसंग्रहे 'हास्यरसालम्बन' शीर्षके निबन्धे तैरभिधीयते—"कथ्यतां हासः स्थायिभावः परमस्ति स हर्षस्याभिव्यक्तिमात्रम् ।।"

अत्र विचारणीयम् अस्य हर्षाभिव्यक्तिरूपतया हर्षानुभावत्वमापाततः सिद्धयति न स्वतन्त्रस्थायिभावत्वम्। इष्टप्राप्त्या अनिष्टनिवारणेन च सुख-विशेषात्मको हर्षः संजायते। हासश्च तस्याभिव्यक्तिमात्रम् तत्कार्यमात्रम्, तदा केनापि कारणेन विखिन्नोऽपि कश्चित् हसन्तमपरं दृष्ट्वा हसन् दृश्यते, तत्र सुखकारणं किमन्वेषणीयम्? मत्पुत्री ममाप्यनुकरणं कृत्वा स्वयमपि हसति, मामपि हासयति, किं तत्रेष्टसाधनमनिष्टबाधनं वा कल्पनीयम्? तस्मान्नास्य हर्षाभिव्यक्तिरूपतामात्रम्। करुणहासस्य वा किं समाधानम्?

पुनस्तैरुच्यते—"कस्यचित् हीनावस्था किं हर्षविषयः ? यदि कस्यचित् पिता पुत्रो वा कुब्जो भवेत्, कस्यचित् पिता पुत्रो वा मूर्खः स्यात्, तत्र किं हासः उत्पद्येत, दुखं वा जायेत ?" इति।

कुब्जो मूर्खो वा हास्यालम्बनतां प्रपद्यते अवश्यम् परं तत्रापि विचारणया स्वरूपतः कुब्जतायाः 'कुरूपतायाः मूर्खतायाश्च न हास्यालम्बनताभिमता। तत्रापि अनौचित्यदर्शनादेव हासस्फुरणं कल्पनीयम्। रसदशायान्तु स्वकीयत्व-परकीयत्वबोधोऽपि विलीयते। काव्ये नाट्ये एव हासस्थायिभावस्य रसत्वं जायते। रङ्गमञ्चे तु कुब्जतां मूर्खतां वाऽनुकुर्वतः पितुः पुत्रस्य वा हास्यरसा-लम्बनता सिद्धैव।

सामान्यतः परकीयहीनावस्था यदि हासालम्बनं तर्हि करुणायाः को विषयः ?

काव्यजगति साधारणीकरणसिद्धान्ता स्वीकारे स्वजनमरणवर्णनमेव कारुणिकं संजायताम्। अन्ततस्तदीयसिद्धान्तनिष्कर्षोऽस्ति—"अतएव योऽयं हास्यरसः कथ्यते स वस्तुतः द्वेषरसोऽस्ति। तस्य स्थायिभावोऽपि द्वेष एव। तत्र हास्यं द्वेषभावना-पूर्तिजन्यस्य हर्षस्य अभिव्यक्तिः।"

अत्र निष्पक्षं विचारणीयम्। यथा शृङ्गारानुभूतिकाले रतेः करुणरसानु-भूतिकाले शोकस्यानुभूतिर्भवति, किं तथा हास्यानुभूतिवेलायां द्वेषानुभूतिर्जायते। तत्र द्वेषानुभूतौ सहृदयहृदयप्रमाणसिद्धायामेव द्वेषस्य स्थायिभावता स्वीकर्त्तव्या। एतेषां मतेनापि हर्षस्य स्थायिभावता युक्ता, यस्याभिव्यञ्जनं हासेन भवति।

अहं तु तर्कयामि, एतेषां मान्यतायाः अधस्तनं संस्कृतपद्यं मूलमस्ति—

**गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।**
**हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥**

अत्र विभावनीयम् परं स्खलन्तं दृष्ट्वा दुर्जना हसन्ति, सत्यम्, किन्तु परस्खलनं समादधति ये सज्जनास्ते कदाऽपि जीवने हसन्ति न वा ? सम्भवतो द्वेषमुक्तहासरसस्यानुभूतिर्लेखकस्य नाभवज्जीवने। येषामन्तःकरणे हासः स्थायिभावो नास्ति, तद्वासना न वर्त्तते, ते हास्यरसवर्णने पाटवं न लभेरन्। न सर्वेषां सर्वत्रानौचित्यं प्रतीयते, विवेकिनः पुरुषाः परपतनं दृष्ट्वा न हसन्ति, न तेषां तत्रानौचित्यदर्शनं भवति, परं हासमूलं सर्वत्रानौचित्यमेव। पुनस्तैः प्रति-पाद्यते—"यो यावान् सामाजिकः स्यात् यस्य 'स्व'शब्दः यथा व्यापको भवेत् तस्य हास्यक्षेत्रं तथैव संकोचमेति।"

अत्र वक्तव्यमस्ति स्वव्यापकतायां सामाजिकत्वं न कारणम्, तदर्थं व्यक्तेः साधना अपेक्षिता। भारते तु इमां व्यापिकां दृष्टिमधिगन्तुं व्यक्तयः समाजं परित्यजन्त्यो दृष्टचराः। यज्जघन्यं कृत्यं समाजेनाचर्यते, न तद्व्यक्त्याचरितुं पार्यते। आध्यात्मिकीमुन्नतिमन्तरेण नैषा दृष्टिः प्राप्तुं शक्यते, सा च व्यक्ति-साध्या न समाजसाध्या। कश्चित् बुद्धः, कश्चित् महावीरः सर्वभूतकरुणावान् भवति। समाधानमन्तरेण तथाकथितसामाजिकानां तथाकथिता सहानुभूतिरप्या-रोपिता भवति। हृदि हालाहलेपि मुखेनामृतमिष्टवचनमुच्चार्यते।

सर्वथा नूतनो विचारः कपोलकल्पितो भवति। सत्योद्घाटने केवलस्तर्क एव न क्षमः, यदुक्तम् भगवता व्यासेन—"तर्काप्रतिष्ठानात्" इति।

●

## दीनबन्धुशर्मणोवंश-पञ्जी

**पञ्जीकारः श्री शक्तिनन्दन झा, आचार्यः (पञ्जी)**

माण्डरसं० बीजी (१) अजयसिंहोऽभूत् । तत्सुतो (२) विजयसिंहः, तत्सुतः (३) पहराजसिंहः, तत्सुतः (४) परशुरामः, परशुरामसुत (५) आदिवराहः, तत्सुतो (६) वराहः, वराहसुतो (७) दुर्य्योधनसिंहः, तत्सुताः (८) सोढ़र-जयसिंह-तर्क्काचार्य्यत्रयीविद्यापारग म० म० पा० नरसिंहाः बभूवुः । तत्र सोढ़रो बरुआलवासी । तस्य त्रयः पुत्राः बभूवुः महानिधि (९) शिवपाणि-कुलधराः । तत्र शिवपाणिः मज्जरौनीवास्तव्यः । तत्सुतो (१०) महो० विभाकरः । महो० विभाकरसुता (११) म० म० नारायण चन्द्रकर-लक्ष्मीकर-विश्वेश्वराः । महामहो० नारायणसुताः (१२) देवशर्म्म-हेलन-नरदेवाः । म० म० देवशर्म्मसुताः म० म० (१३) जगन्नाथ-देवनाथ-मिश्रनन्दी-गुने-स्थितिकराः । म० म० जगन्नाथसुताः सदु० अमतू-सदु० बीशो- म० म० पा० (१४) बटेशाः । म० म० पा० बटेशसुताः महो पशुपति-महो० रघुपति-महो० आङनि-म० म० (१५) रतिपतयः । म० म० रतिपति सुताः चन्द्रपति(१६) दुबे-कुशेकाः । दुबे सुताः भानुकर-दिवाकर (१७) विभाकर-भगीरथाः । विभाकरसुतौ (१८) वैदिक विश्वम्भर हरिदेवौ । वैदिकविश्वम्भरसुतौ महिपति (१९) हरपतिकौ खण्डवलासं ठक्कुर चन्द्रपतिसुत म० म० ठक्कुर दामोदर दौ० । हरपतिसुतौ (२०) रमापति-वैद्यनाथौ सोदरपुर सं० माधव दौ० । रमापतिसुतौ मोहन (२१) लालाकौ धोसौत सं० कण्टकोद्धारक म० म० ठक्कुरमधुसूदनसुत जगद्गुरु म० म० ठक्कुर सदानन्द दौ० । लालासुतौ भानु (२२) विष्णुपतिकौ पाली सं० शङ्कर दौ० । विष्णुपतिसुताः (२३) महो० बेचन-चानू-बगरू-बछरूकाः सोदरपुर सं० प्रभाकर दौ० । महो० बेचनसुताः कमलादत्त (२४) हिरदी प्र० हृदयदत्त-तोताइ- लतड़ीकाः खण्डवला सं० प्रेम-निधि दौ० । हिरदीसुताः (२५) रघुवर-किशोरी-यदुनन्दनाः पाली सं० हेमनाथ दौ० । रघुवरसुतौ (२६) फेकू-मन्नूकौ नरओन सं० राधानाथ दौ० । फेकूसुतो (२७) महावैयाकरण दीनबन्धुः हरिअम सं० मुरली दौ० । अपरौ फेकूसुतौ गङ्गानाथ-मुक्तिनाथौ पालीसं० हर्षी दौ० । महावैयाकरण दीनबन्धुसुताः वैयाकरण जीवनाथ-वैयाकरण गोविन्द-विद्यावारिधिमाधवाः करमहा सं० कुञ्जन सुत जयनन्दन दौ० खण्डवला सं० रघुपति दुहितृ दौ० ॥

●

# म० वै० दीनबन्धुझाक संतान द्वारा साहित्य-साधना

**डा० लक्ष्मीनाथ झा,**
**व्याख्याता,**
**स्नातकोत्तर साहित्य विभाग,**
**का० सं० वि० वि०, दरभंगा**

मिथिला आदिए कालसँ सरस्वतीक खेलएबाक भूमि रहल अछि। पैघ-पैघ विद्वान् सब मिथिलाक जोरगर प्रांगणकेँ अगाध विद्वत्तासँ सींचि शास्त्रीय विचार सबकेँ भरल-पुरल रखलन्हि। दर्शनादि शास्त्रक पोथी, पाण्डित्य प्रचार ओ तदनुकूल व्यवहार मिथिलाक समान आन ठाम नहि। एहन विभूति लोकनिक त्याग आ तपक यशोगान करैत एक बेर विस्मय होइत अछि हुनका लोकनिक प्रतिभापर, हुनका लोकनिक अगाध अध्यवसाय ओ क्षमतापर। सरस्वतीक कृपापात्र कंओ-केओ होइत छथि, ताहूमे कवित्वशक्तियुक्त। जँ सेहो प्राप्त भए जाए तँ सन्तान विद्वान ओ कवि ई दुलर्भ। से जाहि व्यक्तिकेँ छन्हि से सत्ये सरस्वतीक वरद पुत्र कहबैत छथि।

महावैयाकरण दीनबन्धु झा क वैदुष्य ओ सर्वविध साहित्यनिर्मातृत्व सर्वजनप्रसिद्ध अछि। एवं हुनक पुत्र लोकनिक निर्मल वैदुष्य आपामर विद्वन्समाजमे विख्यात अछि। महावैयाकरण स्वयं अपन पुत्रत्रयकेँ पढ़ाए विद्वान बनाओल ई एक एहन विलक्षण विषय थिक जे अन्यत्र भेटब दुर्लभ। एहि निबन्धमे महावैयाकरणक सन्तान द्वारा साहित्य साधनाक चर्चा अभिप्रेत अछि।

महावैयाकरणक प्रथम पुत्र विद्यामार्तण्ड पं० जीवनाथ झा। हिनक निर्मल वैदुष्य, निर्भ्रान्ति शास्त्रीय संस्कार, असाधारण व्युत्पत्ति, एहि सब गुणराशिक सम्मेलन बिना आत्माक वैशद्यँ, प्राक्तन संस्कारेँ, जन्मजन्मार्जित पुण्यप्रभावे सम्भव नहि। हिनकामे मात्र तर्ककर्कश वैदुष्ये नहि, अपितु रसनिर्भर भावयित्री ओकार कारयित्री प्रतिभो विकसित रूपमे छलन्हि। व्याकरणसँ वाणीकेँ विमल कए काव्यसँ चित्तचमत्कारक दिस प्रवृत्त भेलाह। ई १९३० ईस्वी सँ कविक रूपमे प्रख्यात भेलाह।

ई संस्कृत ओ मैथिलीक महान् कवि छलाह। हिनक साहित्यसाधना संस्कृत ओ मैथिली साहित्यमे विशिष्ट स्थान रखैत अछि। हिनक रचना निम्नलिखित अछि :—

काव्य—रावणवध, कल्पना, जल्पना।

नाटक—वीरनरेन्द्र, दुर्गाविजय, अयाचीशङ्कर, अहल्योद्धार, याज्ञवल्क्य-विजय।

साहित्य—दोषाकर (साहित्यदोष), गल्पगुच्छ, संस्कृतकवितावली, कामेश्वरप्रतापोदय।

निबन्ध—गोपूजानिर्णय, कीर्तनमहिमा, जनकपुरपरिचय, परिक्रमा, निबन्धावली।

व्याकरण—व्याकरणकौतुक।

महावैयाकरणक द्वितीय पुत्र पं० श्री गोविन्द झा। हिनक कवित्वशक्ति पुरातन आ नवीनतमक सीमाक आरपार छू लेने अछि। हिनक 'बसात' नाटक मिथिलाञ्चलक कोन-कोन मे अभिनीत होइत अछि। व्याकरण ओ भाषाविज्ञानक प्रामाणिक विद्वान छथि। हिनक "मैथिलीक उद्‌म ओ विकास" आ "मैथिली भाषा का विकास" अमर कृति छन्हि। मैथिली अकादमी द्वारा मैथिलीक प्राचीन ग्रन्थक सम्पादन-समीक्षणमे लागल ई मैथिली-साहित्यक भासमान सूर्य थिकाह। संस्कृतक वैदुष्य हिनक अगाध अछि। बङ्गला, नेपाली, मगही ओ भोजपुरी आदिक सेहो पूर्ण ज्ञाता छथि। हिनक साहित्यसाधना निम्नलिखित अछि :—

भाषाशास्त्र—लघुविद्योतन, मैथिली व्याकरण-रचना-विजय, मैथिलीक उद्‌गम ओ विकास, मैथिली भाषा का विकास, मैथिली का उच्चतर व्याकरण।

नाटक—बसात, राजा शिवसिंह, एकांकी संग्रह।

साहित्य—कवितावली, मैथिलीक छन्दःशास्त्र, कथासंग्रह।

सम्पादित ओ अनूदित* अनेक ग्रन्थ।

---

*(१) चित्राङ्गदा-रवीन्द्र नाथ ठाकुर—(बंगला सँ मैथिली), (२) वीराङ्गना-काव्य, मधुसूदन दत्त (बंगलासँ मैथिली), (३) मालविकाग्निमित्र (संस्कृतसँ मैथिली), (४) स्वप्नवासवदत्त नाटक (सं० सँ मै०), (५) आधुनिक भा तीय आर्यभाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण (अंग्रेजी सँ हिन्दी)।

महावैयाकरणक तृतीय पुत्र डा० माधव झा। माधव बाबू संस्कृत ओ मैथिलीक सुकवि छथि। यद्यपि अपन कविताक प्रसार कमे कयने छथि मुदा हिनक कवितावली अछि धरि बड़ पोछल।

महावैयाकरणक पौत्र—

१. पं० श्री शम्भुनाथ झा साहित्याचार्य—जीवनाथबाबूक पुत्र शम्भुनाथजी युवक कवि छथि। हिनक 'भावन' नामक मैथिली कवितासंग्रह नीक छन्हि।

२. श्री हीरानाथ झा एम० ए०--जीवनाथ बाबूक पुत्र हीरानाथजी संस्कृतक नीक विद्वान छथि। मैथिली ओ संस्कृतक नीक कविता करैत छथि। हिनका सँ हमरा लोकनिकेँ नीक आशा अछि।

३. श्री अरविन्द कुमार—गोविन्द बाबूक बालक अरबिन्दजी मैथिलीमे कथा लिखब आरम्भ कएने छथि। 'मिहिर' हिनक कथाके पसिन्न कएने छनि। ई एम० ए० अन्तिम वर्षक छात्र छथि।

दौहित्र—

१. डा० विश्वनाथ झा—हिनक बनाओल मैथिलीमे 'शङ्खचूड़वध' नाटक नीक छन्हि।

२. डा० शशिनाथ झा—ई संस्कृतक नीक विद्वान भेलाह अछि। संस्कृतक सफल नाटककार ओ कवि छथि। हिनक 'पञ्जीप्रबन्धम्', मदालसा नाटक, हरिश्चन्द्र चम्पू, ईशावास्य (कवितासंग्रह) आदि उत्तम कृति छन्हि। हिनका सँ हमरा लोकनि विशेष आशा रखैत छी। महावैयाकरण दीनबन्धुझाक व्यक्तित्व ओ कृतित्व पर ई केन्द्रीय गवेषणा वृत्ति लए शोधकार्य कएने छथि।

दौहित्र-पुत्र—

श्रीप्रमोदझा 'गोकुल'—मैथिलीक कथा ओ कविताक क्षेत्रमे हाथ झाड़ि रहल छथि। आशा जे नीक लेखक होएताह।

ई सब देखैत सत्ये महावैयाकरण दीनबन्धु झा सरस्वतीक वरदपुत्र छलाह। हिनक सन्ततिक साहित्यसाधना संस्कृत ओ मैथिली साहित्यमे विशेष स्थान रखैत अछि।

卐

# हुनका सँ भेंट भेल छल

**मणिपद्म**

सन्स्कृत भाषा में, व्याकरणक जेना स्वतन्त्र अस्तित्व होइत छैक तेना भै कँ आन भाषा में नहि। स्कूली अवस्था में सन्स्कृत व्याकरणक त्रिवचन गजे गजौ गजाः आ त्रिलिंग रटैत रटैत जी अरिया जाय तँ छगुनता लागय जे खोत्तोरी कै, सन्स्कृत में व्याकरण कँ तीर कँ एतेक कियेक नमरौल गेलइ।

हिन्दी में कुर्सी टेबुल में सेहो लिंग-भेद। इ बुझवा जोकर नँइ हुअए जे स्त्री अथवा पुरुष हेबामें आकृतिक सहारा नँइ लै कँ उच्चारणक सहारा कियैक लेल जाइत छैक। अपना ठां सीता आ राधा नामक बहुत पुरुष पात्र। हुअय जों उच्चारणें लिंग निर्णय हो तँ एहेन नामक व्यक्ति कँ की नारी सम्बोधन देल जेतइ? कमाल तँ तखन भेल जखन मधेपुर स्कूल में 'सरस्वती' पदवी वला एकटा 'क्लास-फेलो' आबि गेल। लिअ ने एकरा की कही— सरस्वती आता है कि आती है।

संक्षेप में यैह जे व्याकरण सँ हमरा अरुचि छल। तैयो पास करैक हेतु रटैत छलौं आ चिरायताक घोंट जोकां व्याकरणी सत्य कँ घोंटि जाइत छलौं।

१९३२ क लगभग में माडर्न रिव्यू (एकटा अंगरेजी मैगजीन) क एकटा चिन्तनमय लेख में पाणिनीक विराट साधनाक एकटा झांकी भेटल।

पाछू संगीत, चित्र आ नृत्य क्रमक व्याकरण सँ साक्षात भेल। तानपूरा क आंउ आंउ झंकार आ तबलाक बोल संगीतक ओ व्याकरण सूत्र भेल जे स्वरक ताल लय आ आरोह-अवरोह कँ व्याकरणी शुद्धता प्रदान करैत छैक। चित्रक व्याकरण तँ आर अकथ किन्तु रंगक रेखाक रिदम् लै तँ एकटा स्पष्ट व्याकरण छैक। तँ संगीतक व्याकरण भेल काल-व्याकरण (ग्रामर आफ टाइम) आ चित्रक व्याकरण भेल दिक्-व्याकरण (ग्रामर आफ स्पेस)।

जखन संगीत आ चित्र (काल आ दिक्) एकाकार भै जाइत छैक तै से नृत्य कहावैत छैक। काल (संगीत) श्रव्य होइत छैक आ दिक् (चित्र) भेल दृश्य। नृत्य, श्रव्य आ दृश्य दूनू होइत छैक गति आ तालक समन्वय सँ। तैं नृत्यक व्याकरण, दिक् आ कालक व्याकरणक एकात्म रूप भेल।

दिक् आ कालक व्याकरणक समन्वय सँ बहरैल "भाषाक व्याकरण"।

भाषा जखन वाजइ छी तखन ओ ध्वन्यात्मक होइत अछि आ लिखइ छी तँ चित्रात्मक। वाजब आ लेखन दूनू एक्के व्याकरण, नृत्य व्याकरण सँ नियन्त्रित होइत अछि। तँ इ स्पष्ट भै जाइत अछि जे कियैक

"नृत्यावसाने नटराज राजौ ननाद ढक्का नव पंच वारम्।"

ई चौदह टा सूत्र, दिक् आ कालक सात-सात टा आघात, सात रंग आ सात स्वर—आ, ना, पी, स, ला, नी, वैं (सुर्यक सप्ताश्व) आ सा रे ग म प ध नी सा क एकात्मकता (रिदम) क प्रतिनिधि भेल।

इ सूत्र ढक्का (डमरू) सँ बहरैल। डमरू की भेल।

डमरू बनैत अछि दू त्रिकोण सँ जइ दूनू त्रिकोणक नोक एक दोसर सँ मिलल रहैत छैक। अइ पर दूटा आघात एक्के बेर होइत छैक। एकटा स्व-दिस आ दोसर बाहर दिस। एकटा अन्तर चिन्तन आ दोसर वाह्य स्पन्दन भेल। इ मानवक प्रतीक भेल जकरा चालन केनिहार भेला नृत्यमान महा-काल।

तँ व्याकरण महाकाल (Master of the time) क नृत्यक परिणिति भेल।

कहने छथि एकटा महामनीषी— "जों अहां शरीर कैं जानय चाही तैं मन्दिर विद्या (आर्कियोलोजी) जानू, जों मन्दिर-विद्या जानय चाही तैं संगीत विद्या कैं जानू, जों संगीत विद्या जानय चाही तै गणित कैं जानू आ जों गणित जानय चाही तैं व्याकरण कैं जानू। व्याकरण भेल मानव-अभिव्यक्तिक शाश्वत विधान (एटरनल ला आफ ह्यूमैन एकसप्रेसन) तैं इ महाकाल द्वारा डमरू (मानव) क स्पन्दन भेल।

तैं इ सत्य छैक जे व्याकरणक परिणिति दर्शन आ तंत्र में होइत छैक।

हमरा बड़ लिलसा छल महावैयाकरण पंडित दीनबन्धु झा जी सँ "व्याकरण क उत्पत्ति ओ विकास" पर आलोक लेबाक। हमरा अतेक वैयाकरणी भेटल छला ओ जड़िया-व्याकरण (applied grammer) वला लोक छला आ भाषाक शुद्धाशुद्धिक कसौटी मात्र बनि कै रहि गेल छला। व्याकरण विषय पर ओ किछु दै नैं इ सकैत छला।

आर किछु जिज्ञासा छल महावैयाकरण सँ। हमर विश्वास अछि जे विभिन्न भाषाक व्याकरणक द्वारा तत तत मानववंश (रेसेज) क नृवंश विकास (एन्थ्रोपोलिजिकल डेवलपमेन्ट) कै बुझल जा सकैत अछि। वस्तुत: ध्वनि शास्त्र आ व्याकरण शास्त्रक समन्वय सँ सम्भव कि नहि से जिज्ञासा एखनहुँ अछिये।

दोसर जिज्ञासा छल पाणिनीक सम्बन्ध मे। हमर भावना दृढ भै चुकल छल जे पाणिनी, अपना व्याकरणक सृजन द्वारा, वैदिक आ औपनैषदिक सन्स्कृत भाषाक प्रति पूर्ण न्याय नहि कै सकल छला। लागइ छल जेना पाणिनी अपना कत्थ्यक पुष्टि लै ढेर रास अपवाद-सूत्रक सृजन कै नेने होथि जे समीचीन न्याय नैंइ करैत अछि प्राचीन सन्स्कृत भाषाक प्रति। तै की पाणिनीक दोष-सुधार सम्भव छल जइ सँ वैदिक आ औपनिषधिक भाषा शुद्ध रूपे यथार्थ मे बूझल जा सकय?

तेसर बात इ छल जे हमरा बुझने सन्स्कृत "देव भाषा" जइ अर्थ मे जेना हो, जन साधारणक भाषा कहियो ने भै सकल आ ने अछि। की एकरा अधिक सप्राण करैक हेतु, एहेन सरल आ सुलभ व्याकरणक सृजन नहि कैल जा सकैत छैक जइ सँ सन्स्कृत स्वरूपो ने आहत होइ आ इ अधिकाधिक सृजनात्मक (क्रियेटिवक अर्थ मे) होइत लोकक भाषा (पीपुल्स लैंग्वेज) भै सकइ?

किन्तु हुनक दर्शन जइ परिस्थिति में भेल तइ में एतेक रास बात केनाइ सम्भव नहिं भै सकल।

हुनका सँ स्वनामधन्य स्वर्गीय डाक्टर अमरनाथक समक्ष मैं भेंट भेल आ औपचारिकता में समय सठि गेल। जहां धरि स्मरण अछि ओ कनुका पाग पहिरने छला आ बेसाहु भेलहु पर हुनका मुखमंडल पर स्वाभिमानक गरिमा वर्त्तमान छलनि।

कोष नँइ तँ राजा की ? कोष (असिकोष) नँइ तँ वीर की ? आ कोष नँइ तँ विद्वान आ भाषा की ?

से महावैयाकरण मैथिली भाषा कें कोष दै कै अमर भै गेला। ओ कोष ओइ दिन में एसकरे हुनका द्वारा केहन कठिन परिस्थिति में प्रस्तुत कैल गेल हेतइ से सहजहि अनुमान कैल जा सकैत अछि। ओइ कोष कें भू-स्पर्शी हेवा मे जे कमी रहि गेल होइ ओकरा स्वंपूर्ण बनेबाक अत्यधिक प्रयास कैल गेल छैक।

आइ एहेन साधनामय मनीषीक शताब्दी उत्सवक अवसर पर आवश्यकता अइ बातक अछि जे हमरा लोकनि "दीनबन्धु स्मारक इन्स्टीटयूट" स्थापित कै "व्याकरण आ कोष" क खोज आ शोधक हेतु एकटा प्रतिष्ठानक स्थापना करी। एकरा द्वारा सन्स्कृत भाषा कें लोक जीवन में उतारैक हेतु युगक आवश्यकताक अनुसार, व्याकरणक सुलभ सीढ़ी भेटि सकत।

अइ संन्स्था द्वारा एकटा एहेन मैथिली "विश्वकोष" क सृजन सम्भव भै सकत जे मिथिलाक प्राचीनता आ अर्वाचीनता वला, विद्या सवहिक एक-एक शब्द पात-पांजि उपस्थित कै सकत।

तखनहि टा हमरा लोकनि अपना अइ महामनीषीक स्मृति कें सप्राण आ जाग्रत राखि सकब।

☙

## प्रेरणाक स्रोत

**स्व० बाबू लक्ष्मीपति सिंह**

बाल्य-कालहिसँ हमरा प्राचीन परम्पराक पण्डितजनक प्रति अपार श्रद्धा छल। कतोक मिथिलाक विभूतिक जीवन ओ कृतिक अध्ययन-अनुसन्धान हम कएलहुँ। एहि पण्डित परम्पराक जे आदर्श स्वरूप हमरा प्रत्यक्षगोचर भेल ताहिमे महावैयाकरण दीनबन्धु झा अन्यतम छलाह। प्रगाढ़ पाण्डित्य ओ मातृ-भाषाक प्रति अनन्य अनुराग एकर मणिकांचन संयोग महावैयाकरण जीमे छल। अपना ओतए चौपाड़ि स्थापित कए निर्धन छात्रक भरण-पोषणक व्यवस्था करैत निःशुल्क विद्यादान करब जे कतोक वर्ष धरि हम अपन व्रत रखने छलहुँ तकर प्रेरणा हमरा प्रत्यक्षतः एही महावैयाकरण जीसँ भेटल।

एक विचित्र संयोगक बात ई थिक जे जहिना महावैयाकरण जी निःस्वार्थ विद्यादान द्वारा समाजकेँ ओ देशकेँ शिक्षित बनएबाक दृढ़ संकल्प लए कर्मक्षेत्र-मे अवतीर्ण भेलाह तहिना हमहूँ अवतीर्ण भेलहुँ आ' जहिना आठ-दस वर्ष एहि रूपेँ निमहलाक बाद आर्थिक संकटवश हुनका ई व्रत त्यागि हृदयसँ घृणा करि-तहुँ सेवा-वृत्तिमे आबए पड़लन्हि ठीक तेहने हमरो हाल भेल। तेँ हम अपना केँ यदि हुनक चरणचिह्न पर चलनिहार मानी तँ कोनो अनुचित नहि होएत। भेद एतबे जे ओ संस्कृत पढ़बैत रहथि ओ हम संस्कृतज्ञ छात्र लोकनिकेँ अँगरेजी पढ़ाबी; हुनक कार्यकाल १९१० ई०सँ आरम्भ भेल ओ हमर १९४०सँ। हमर आचार्य गुरु छलाह म० म० श्रीकृष्णसिंह ठाकुर। हुनकहुमे प्रगाढ़ पाण्डित्य ओ मातृभाषाऽनुरागक मणिकांचनयोग छल। तहिँ हम महावैयाकरणजीक प्रति ओतबे श्रद्धालु छलहुँ जतबा अपन आचार्य गुरुक प्रति। भेद एतबे जे आचार्य-गुरुक सानिध्यक सौभाग्य हमरा प्राप्त छल किन्तु महावैयाकरणजीक नहि।

अतः शताब्दी-समारोहक अवसरपर हम अपन प्रेरणास्रोत महावैयाकरण दीनबन्धुझाक स्मृतिमे श्रद्धा-सुमन अर्पित करैत छी।

ॐ